साईं बुल्लेशाह

राधास्वामी सत्संग ब्यास

ॐ अन्नपूर्णा®
aritable Trust
A/1, Ram Nagar,
oukhandi Chowk,
New Delhi-110018

विषय-सूची

प्रकाशक की ओर से 9

लेखकों की ओर से 11

जीवन 13

रूहानी उपदेश 38

बन्धन मुक्ति का साधन 54

हमाओस्त 71

प्रियतम की खोज 83

रूहानी अभ्यास 96

कलमा या शब्द 115

सतगुरु या हादी 146

विद्या और आध्यात्मिकता 166

कर्मकाण्ड और आध्यात्मिकता 178

उपसंहार 198

भाषा एवं शैली 207

साईं बुल्लेशाह की वाणी 213

वाणी का सम्पादन 215

कुछ चुनी हुई प्रसिद्ध काफ़ियाँ 217

बारहमाह 347

सीहरफ़ी 354

गंढाँ 357

अठवारा 361

दोहे 366

वाणी अनुक्रमणिका 371

सन्दर्भ-ग्रन्थ 375

परमार्थ संबंधी पुस्तकें 381

साईं बुल्लेशाह

जीवन

साईं बुल्लेशाह, जो बुल्लेशाह क़ादिरी शतारी के नाम से प्रसिद्ध हैं*, सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के कामिल सूफ़ी फ़क़ीर हुए हैं। आपका निर्मल, पवित्र और पाक रहन-सहन था। उच्च श्रेणी की आध्यात्मिक प्राप्ति के कारण हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख आदि अलग-अलग धर्मों में आस्था रखनेवाले लोग आपसे एक जैसा प्यार करते हैं। विद्वानों एवं दरवेशों ने आपको 'शेख़-ए-हर-दो आलम' (दोनों लोकों का शेख़), 'मरदे हक़ानी' (सत्य या परमात्मा का सेवक), 'पोशीदा राज़ों का वाक़िफ़कार' (गुप्त भेदों का ज्ञाता) आदि कई सम्मान-सूचक उपाधियाँ प्रदान की हैं। आपको पंजाब का सबसे बड़ा सूफ़ी कवि कहा जाता है तथा आपकी रचना को 'सूफ़ी कलाम के शिखर' का दर्जा दिया गया है। आपके व्यक्तित्व तथा आपकी वाणी के कई पहलुओं की महान् सूफ़ी सन्तों - मौलाना रूम, शम्स तब्रेज़ आदि से तुलना की गयी है। आपके जीवन-काल से आज तक सारे उत्तरी भारत तथा उस सारे क्षेत्र में, जो अब पाकिस्तान कहलाता है, आपके व्यक्तित्व और वाणी के प्रति अगाध प्रेम और श्रद्धा प्रकट की जाती है।

साईं बुल्लेशाह का असली नाम अब्दुल्ला शाह था। अब्दुल्ला शाह से बुल्लाशाह या बुल्लेशाह हो गया। ''प्यार से आपको कोई बाबा बुल्लेशाह

---

* *A History of Sufism in India*, Saiyid Athar Abbas Rizvi, Vol. II, p. 445 (hereafter quoted as *A History of Sufism in India*)

कहता है, कोई साईं बुल्लेशाह तथा कोई केवल बुल्ला।''* आपकी 'चालीसवीं गंढ†' के अन्त में आपके असली नाम के बारे में सीधा संकेत मिलता है:

हुण इंना-लिलाह आख के तुम करो दुआईं।‡
पिया ही सब हो गया अब्दुल्ला नाहीं।

बुल्लेशाह के जीवन-काल के विषय में कई मतभेद हैं। परन्तु आपका समय अधिकतर सन् 1680 से 1757-58 तक माना जाता है। आपके जन्म-स्थान के विषय में भी इतिहासकारों और विद्वानों में दो मत हैं। कुछ विद्वान आपका जन्म रियासत बहावलपुर (पाकिस्तान) के गाँव 'उच्च गलानियाँ' में हुआ मानते हैं।§ उनका कहना है कि बुल्लेशाह के छः महीने के होने तक¶ उनके माता-पिता इसी गाँव में रहते रहे, परन्तु इसके पश्चात् किसी कारण वे गाँव मलकवाल (तहसील साहीवाल) में चले गये, जहाँ उनके वंशज पहले से ही रह रहे थे। उनको इस गाँव में आये अभी थोड़ा समय ही हुआ था कि 'पांडोके' नामक गाँव के स्वामी को अपने गाँव की मस्जिद के लिए एक मौलवी की आवश्यकता पड़ी और वह मलकवाल के लोगों की सिफ़ारिश पर बुल्लेशाह के पिता, शाह मुहम्मद दरवेश को पांडोके ले आया। पांडोके की मस्जिद के मौलवी के अतिरिक्त उन्हें गाँव के बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा देने का कार्य भी सौंप दिया गया।

इस बात से तो सभी विद्वान सहमत हैं कि बुल्लेशाह के माता-पिता का पैतृक गाँव उच्च गलानियाँ ही था। वे वहाँ से पहले मलकवाल में और बाद में पांडोके में आकर बस गये। परन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि बुल्लेशाह का जन्म उसके माता-पिता के पांडोके आने के बाद में हुआ था। यह गाँव

* डॉ. गुरदेवसिंह, *कलाम बुल्लेशाह*, पृ. 12

† **गंढ** का अर्थ गाँठ है। यह एक प्रकार का पंजाबी काव्य-रूप है।

‡ **आख के**=कहकर।

§ मौलाना बख़्श कुश्ता, डॉ. लाजवन्ती रामा कृष्णा तथा डॉ. फ़क़ीर मुहम्मद ने *ख़ज़ीना-तुल-अश्फ़ीआ* में प्राप्त सामग्री के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है।

¶ कुछ विद्वानों का मत है कि छः वर्ष होने तक।

'पांडोके भट्टियाँ' के नाम से प्रसिद्ध है। यह कसूर (पाकिस्तान) से लगभग चौदह मील दक्षिण-पूर्व में एक प्रसिद्ध क़स्बा है। क़स्बे की वर्तमान ख्याति में साईं बुल्लेशाह के नाम का भी हाथ है। कहा जाता है कि साईं बुल्लेशाह के पूर्वजों में सैयद जलालुद्दीन बुखारी तीन सौ वर्ष पहले सुर्ख बुख़ारे से मुलतान आये और हज़रत शेख़ ग़ौस बहाउद्दीन ज़करीया मुल्तानी के द्वारा बैअत होकर* उच्च गलानियाँ में आकर रहने लगे। बुल्लेशाह के दादा सैयद अब्दुर्रज़ाक उनके ही वंशज थे। इसका अर्थ यह हुआ कि एक ओर बुल्लेशाह का वंश सैयद होने के कारण हज़रत मुहम्मद के साथ जुड़ा हुआ था तथा दूसरी ओर सूफ़ी विचार-धारा और परम्परा के साथ उनका सदियों पुराना सम्बन्ध था।

बुल्लेशाह के पिता शाह मुहम्मद दरवेश को अरबी, फ़ारसी और *क़ुरान शरीफ़* का अच्छा ज्ञान था। आप आध्यात्मिक झुकाव वाले नेक दिल मनुष्य थे। कहा जाता है कि परिवार में बुल्लेशाह के साथ उसकी अपनी बहन का सबसे अधिक स्नेह था, जिसने उन्हीं की तरह कुँआरी रहकर संयम और भक्ति से जीवन व्यतीत किया। बहन और भाई दोनों पर पिता के उच्च चरित्र का प्रभाव था, जिसकी नेकी के कारण उसको दरवेश कहकर आदर दिया जाता था। आज भी बुल्लेशाह के पिता का मज़ार पांडोके भट्टियाँ में विद्यमान है। प्रति वर्ष उनके मज़ार पर उर्स लगता है और रात को बुल्लेशाह की काफ़ियाँ गायी जाती हैं। इस प्रकार पिता और पुत्र दोनों की बड़ाई एक-दूसरे में मिलजुल कर एक ऐतिहासिक याद और एक लोकप्रिय परम्परा का रूप धारण कर गयी है।

बुल्लेशाह का बचपन पांडोके में अपने पिता की देखरेख में व्यतीत हुआ। आपने प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के अन्य बच्चों की भाँति अपने पिता से ही प्राप्त की। इसके बाद उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए आपको कसूर भेजा गया, जो उन दिनों इसलामी शिक्षा का केन्द्र था।

* नामदान लेकर; सूफ़ी मत में मुर्शिद या सतगुरु से नामदान लेने को '**बैअत** होना' कहा जाता है।

कसूर में हज़रत ग़ुलाम मुर्तज़ा और मौलाना मुहीउद्दीन जैसे उच्चकोटि के उस्ताद मौजूद थे। इन शिक्षकों की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। बुल्लेशाह ने भी कसूर में रहकर हज़रत गुलाम मुर्तज़ा से उच्च शिक्षा प्राप्त की। बुल्लेशाह में ऐसी बौद्धिक और चारित्रिक विशेषताएँ मौजूद थीं, जिनके कारण उन्होंने ऐसे योग्य शिक्षकों की संगति से पूरा-पूरा लाभ उठाया।

अनेक ऐतिहासिक उद्धरणों में बुल्लेशाह को अरबी और फ़ारसी का उच्चकोटि का विद्वान माना गया है। उनकी वाणी में भी अनेक ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उनका इसलामी और सूफ़ी धर्म-ग्रन्थों का बड़ा गहन और विशाल अध्ययन था। जब बाद में उनकी परमात्मा से अन्तर में लिव लग गयी तब बाहरी ज्ञान एक नये रूप में चमकने लगा। परन्तु इस सहज ज्ञान की प्राप्ति के लिए बुल्लेशाह को एक लम्बे संघर्ष में से गुज़रना पड़ा। यह प्राप्ति कामिल मुर्शिद (पूर्ण सतगुरु) की संगति में पहुँचकर ही हुई। परन्तु धर्म-ग्रन्थों के पाठ ने बुल्लेशाह के मन में एक चिनगारी पैदा कर दी और जिस सत्य की बड़ाई के आश्चर्यजनक वर्णन बुल्लेशाह ने धर्म-ग्रन्थों में पढ़े, उसके दर्शन की तड़प उसके हृदय में भड़क उठी। यह तड़प और खोज ही बुल्लेशाह को कामिल मुर्शिद हज़रत शाह इनायत क़ादिरी के द्वार पर खींचकर ले गयी।

हज़रत इनायत शाह अपने समय के कमाईवाले क़ादिरी सूफ़ी फ़क़ीर थे। ऐतिहासिक दृष्टि से क़ादिरी सूफ़ियों का सम्बन्ध इससे पूर्व बग़दाद में हुए सूफ़ी सन्त अब्दुल क़ादिर जीलानी (1077-78 से 1166 ई.) के साथ है। हज़रत जीलानी को 'पीर दस्तगीर' या 'पीरां-पीर' कहकर भी सम्मानित किया जाता है। बुल्लेशाह ने स्वयं संकेत दिया है कि हमारा 'पीरों का पीर' बग़दाद में हुआ है परन्तु मेरा सतगुरु लाहौर शहर का है:

पीरां पीर बग़दाद असाडा, मुरशद तख़त लाहौर।
एहो तुसीं वी आखो सारे, आप गुड्डी आप डोर।

हज़रत जीलानी के कथनों पर आधारित दो पुस्तकें – *अल फ़तह-अल-रब्बानी* और *फ़तूह-अल-ग़ैब* बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें आपने बहिर्मुखी

कर्मकाण्ड के स्थान पर हृदय की सफ़ाई और ख़ुदा की बन्दगी पर ज़ोर दिया है।* आप कहते हैं कि नेकी और बदी एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ हैं। एक शाखा में कड़वा फल लगता है और दूसरी में मीठा। 'बुद्धिमत्ता कड़वा फल त्यागकर मीठा खाने में है।' आपने यह भी कहा है कि नफ़्स (मन) या ख़ुदी (अहं) के विरुद्ध लड़ा गया जिहाद (धार्मिक युद्ध) तलवार से लड़े गये जिहाद से बहुत ऊँचा स्थान रखता है। इससे ख़ुदपरस्ती (अहं) और शिर्क (रचयिता के स्थान पर रचना की पूजा) जैसी अप्रत्यक्ष बुतपरस्ती (मूर्ति-पूजा) पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है।† शेख़ जीलानी सच्चा सूफ़ी उसे मानते हैं जो संसार का त्याग करने की अपेक्षा स्वयं गृहस्थ जीवन व्यतीत करता हुआ माया से निर्लिप्त रहे ताकि दूसरे लोग भी उसके आदर्श से लाभ उठा सकें।‡

भारत में क़ादिरी सूफ़ी सम्प्रदाय का प्रभाव तीन शताब्दियों बाद 1432 ई. में मुहम्मद ग़ौस नामक सूफ़ी दरवेश द्वारा पहुँचा। हज़रत मुहम्मद ग़ौस पहले बहावलपुर में आकर ठहरे और बाद में उनका उपदेश दूर-दूर तक फैल गया।

पंजाब के सूफ़ी दरवेश हज़रत मियां मीर (1550-1635) क़ादिरी सम्प्रदाय के थे। प्रसिद्ध है कि गुरु रामदास जी ने अमृतसर में हरि-मन्दिर साहिब की नींव साईं मियां मीर जी से ही रखवायी थी। यह भी कहा जाता है कि जब मुग़ल बादशाह जहाँगीर ने पाँचवीं पातशाही श्री गुरु अर्जुन देव जी को कई प्रकार के कष्ट पहुँचाये तो हज़रत मियां मीर ने गुरु साहिब से कहा कि यदि आपका हुक्म हो तो मैं लाहौर से दिल्ली तक की ईंट से ईंट बजा दूँ। गुरु साहिब ने कहा कि यह काम तो हम भी कर सकते हैं परन्तु हर हालत में मालिक के भाणे में रहना चाहिये। इससे स्पष्ट होता है कि मियां मीर का गुरु-घर से बहुत प्यार था और गुरु-घर में भी उनका बहुत सम्मान था।

---

* *A History of Sufism in India*, Vol. I, p. 84-85
† *A History of Sufism in India*, Vol. I, p. 84-85
‡ *A History of Sufism in India*, Vol. I, p. 84-85

हज़रत मियां मीर का प्रभाव तत्कालीन मुग़ल सम्राटों पर भी था तथा औरंगज़ेब के अजातशत्रु भाई दारा शिकोह को भी क़ादिरी सम्प्रदाय का अनुयायी माना जाता है।* दारा शिकोह ने मियां मीर और क़ादिरी सम्प्रदाय की बड़ी प्रशंसा की है। वह कहता है कि हज़रत मियां मीर बाल-ब्रह्मचारी थे और सिमरन, विशेषकर अजपा-जाप के प्रेमी थे। क़ादिरी सम्प्रदाय के विषय में दारा शिकोह† लिखता है:

> क़ादिरी सन्त त्याग द्वारा आन्तरिक सोई हुई आत्मिक शक्तियों को जगाने में विश्वास रखते थे।
>
> क़ादिरी सम्प्रदाय किसी भी प्रकार के रीति-रिवाजों में उतना विश्वास भी नहीं रखता था जितना अन्य सूफ़ी सम्प्रदाय – चिश्ती, सुहरावर्दी आदि रखते थे।
>
> क़ादिरी सम्प्रदाय बहिर्मुखी मुसलमानी भेख और शरीअत आदि में विश्वास नहीं रखता।
>
> इस मत के अनुसार मनुष्य सन्त, पीर या गुरु द्वारा ही परमात्मा को मिल सकता है और परमात्मा सतगुरु के रूप में संसार में प्रकट होता है।

इससे क़ादिरी सूफ़ियों के हृदय की विशालता और विद्वानों पर उनके गहरे प्रभाव का पता लगता है। इस मत के संस्थापक पीर जीलानी ने अपनी प्रसिद्ध रचना *फ़तूह-अल-ग़ैब* में सूफ़ी सिद्धान्त के जिन अंगों की गिनती की है, उनमें मुनाजात (प्रभु की स्तुति), रज़ा, सब्र, एकान्त और फ़क्र के साथ हृदय की उदारता को भी विशेष स्थान दिया गया है। वास्तव में आरम्भ से ही क़ादिरी सूफ़ी सम्प्रदाय के दरवेश अपने उदार-हृदय, सहनशीलता और नम्रता के साथ-साथ विद्वत्ता, आचरण की पवित्रता और रूहानी पहुँच के लिए विशेष तौर से सम्मानित किये जाते थे। अपने समय में हज़रत मियां मीर और साईं इनायत शाह की महिमा और प्रसिद्धि का सिक्का भी सब ओर चलता था।

---

* डॉ. जीतसिंह सीतल, *बुल्लेशाह*, पृ. 16

† डॉ. कृपालसिंह, *पंजाबी दुनिया: बुल्लेशाह अंक*, पृ. 176

हज़रत इनायत शाह क़ादिरी (मृत्यु 1728 ई.) के जन्म की तिथि के विषय में विद्वान एक मत नहीं हैं, परन्तु आपकी एक पाण्डुलिपि से पता लगता है कि सन् 1699 ई. में आपका स्वास्थ्य अच्छा था। आप क़ादिरी सम्प्रदाय के आदरणीय और कमाईवाले फ़क़ीर तथा उच्च कोटि के विद्वान लेखक थे। आपने फ़ारसी में मार्फ़त की कई पुस्तकें लिखीं, जिनमें से *दस्तूर-उल-अमल, इस्लाह-उल-अमल, लताइफ़-ए-ग़ैबिया* और *इशारतुल-तालिबीन* विशेष तौर से प्रसिद्ध हैं। आपने *दस्तूर-उल-अमल* में सात रूहानी पड़ावों का वर्णन किया है। प्राचीन हिन्दू ऋषि-मुनि भी हंस (गुरुमुख) बनने के लिए इन पड़ावों में से गुज़रना आवश्यक समझते थे।*

हज़रत इनायत शाह का डेरा लाहौर में था। इसलिए आप इनायत लाहौरी के नाम से भी प्रसिद्ध थे। आप जाति के अराईं थे और खेतीबाड़ी तथा बाग़वानी के व्यवसाय से गुज़ारा करते थे। आप कुछ देर कसूर में भी रहे परन्तु वहाँ के शासक के विरोध के कारण आप लाहौर आ गये और जीवन के अन्तिम दिनों तक वहीं रहे। आपका मकबरा (समाधि) भी लाहौर में ही है। *बाग़े-औलिया-ए-हिंद*† में आपके विषय में यह उद्धरण मिलता है:

> बागबानां दी कौम विच्चों है, शाह इनायत भाई।
> शाह रज़ा वली अल्ला तों, अज़मत उसने पाई।
>
> कसबा इक कसूर पठानां, उसदा करन गुज़ारा।
> हुसैन खां हाकिम ओन्हां नूं, दुशमन जानी भारा।
>
> ओथों हज़रत पकड़ किनारा, शहर लाहौर विच आए।
> दक्खण पासे दो कोह पैंडा, झंडे जिस थां लाए।
>
> ओसे जगा ते इस मरद दा, रौज़ा वेखो आया।
> यारां सौ इकताली विच, दुनिया छोड़ सिधाया।‡

---

* *पंजाब*, भाषा विभाग पंजाब, पटियाला, पृ. 424

† *मौलवी मुहम्मद्दीन शाहपुरी*, पृ. 38-39, उद्धरण डॉ. जीतसिंह सीतल, *बुल्लेशाह*, पृ. 15

‡ **इकताली**=यह हिजरी सन् है जिसका ईस्वी सन् 1728 है।

कहा जाता है कि हज़रत इनायत शाह के पास पहुँचने से पहले भी बुल्लेशाह* कोई न कोई रूहानी अभ्यास किया करता था और उसे कुछ सिद्धि व शक्ति भी प्राप्त थी। जब जिज्ञासु बुल्ला, साईं इनायत की बग़ीची के निकट पहुँचा तो देखा कि सड़क के किनारे लगे वृक्ष आमों से लदे हुए थे और निकट ही साईं जी प्याज़ की पनीरी लगा रहे थे। बुल्लेशाह के मन में आया कि साईं जी को किसी तरह सूचना मिल जाये कि कोई आया है। बुल्ले ने बिस्मिल्ला (परमात्मा का नाम) कहकर आमों की ओर दृष्टि डाल दी तो आम अपने आप धड़ाधड़ नीचे गिरने शुरू हो गये। साईं जी ने पीछे मुड़कर देखा कि बिना कारण आम गिर रहे हैं। आप शीघ्र समझ गये कि यह सामने खड़े नवयुवक की शरारत है। आपने उसकी ओर देखकर कहा, "क्यों जवान, ये आम क्यों तोड़े हैं?" बुल्लेशाह यही चाहता था कि साईं जी से बातचीत का अवसर प्राप्त हो। आपके समीप जाकर कहने लगा, "साईं, न तुम्हारे पेड़ों पर चढ़े, न कोई कंकर-पत्थर फेंका, मैंने तुम्हारे फल कैसे तोड़े?" साईं जी ने एक दृष्टि बुल्ले पर डाली और बोले, "अरे, चोर भी और चतुर भी। तूने फल नहीं तोड़े तो और किसने तोड़े हैं?" दृष्टि पड़ते ही बुल्ला साईं जी के चरणों पर गिर पड़ा। साईं जी ने पूछा, "अरे, तेरा क्या नाम है और तू क्या चाहता है?" बुल्ले ने कहा, "जी, मेरा नाम बुल्ला है और मैं रब को पाना चाहता हूँ।" साईं जी ने कहा, "अरे, तू नीचे क्यों गिरता है। ऊपर उठ और मेरी ओर देख।" ज्यों ही बुल्ले ने सिर उठाकर हज़रत इनायत शाह की ओर देखा, उन्होंने उसी तरह प्यार भरी दृष्टि डाली और कहा, "बुल्लया! 'रब्ब दा की पौणा, ऐधरों पुटणा ते औदर लाणा'।" बुल्लेशाह के लिए इतना ही काफ़ी था। उसका काम हो गया।

साईं जी ने कुछ छोटे और सादा शब्दों – 'इधर से उखाड़ना और उधर लगाना' – में रूहानियत का सार समझा दिया। आपने बता दिया कि रूहानी

* बुल्लेशाह के मुर्शिद इनायत शाह से मिलाप की घटना कई ढंग से वर्णन की गयी है। यहाँ अधिक प्रामाणिक वर्णन दिया गया है।

उन्नति का राज़ मन को बाहर और संसार की ओर से मोड़कर अन्तर में परमात्मा की ओर जोड़ने में है और व्यावहारिक रूप से यह भी दिखा दिया कि यह कार्य पूर्ण सतगुरु की कृपा-दृष्टि से सम्पन्न होता है।

इस छोटी-सी परन्तु महान् घटना ने इतने सरल परन्तु भेद-भरे वचनों तथा एक तीखी दयामय दृष्टि ने बुल्ले के मन पर सतगुरु की महानता की अमिट छाप लगा दी। *बाग़े-औलिया-ए-हिन्द* में इस घटना को थोड़े अन्तर के साथ इस प्रकार वर्णन किया गया है:

विच कसूर पठानां दे एह, होया मरद हक्कानी।*
ख़वास अल रसूल अल्लाह दिओं, पोता पीर जीलानी।†

हज़रत शाह इनायत पासों, अज़मत उस ने पाई।‡
विच लाहौर जिन्हां दा रौज़ा, दक्खण पासे साई।§

बुल्ले शाह दिल विच आखे, मुरशद फड़ीए चुण के।
दिल विच क्योंकर होग तसल्ली, पाणी पीए पुण के।

कर के शौक जद ओह हज़रत, मुरशद ढूँडण भाई।
लाहौर शहर वल अव्वल हज़रत, टुर के नज़र टिकाई।

आ के विच लाहौर शहर दे, अन्दर करन गुज़ारा।
बाग़ जेहड़े विच शाह इनायत, ओथे करन उतारा।

सी अंब पक्का उस वेले, नज़र वली नूं आया।
कर बिसमिल्ला डिट्ठा अव्वल, अंब हेठां ओह धाया।

शाह इनायत करे आवाज़ां, 'सुण तूं मरदा राहिया।
अंब चुराया तुद्ध असाडा, दे दे सानूं भाइया'।

बुल्ले शाह कहे, 'न चढ़या, उप्पर अंब तुमारे।
नाल हवा दे अंब टुट के, झोली पया हमारे'।

* **हक्कानी**=हक़ अर्थात् सच या रब का बन्दा।
† **ख़वास**=हज़रत मुहम्मद के वंश में से; **पोता...जीलानी**=हज़रत जीलानी के शिष्य का शिष्य।
‡ **अज़मत**=बड़ाई, बड़प्पन।
§ **साई**=था।

बिसमिल्ला पढ़ अंब उतारया, कीती है तूं चोरी।
बुल्ले शाह वी जाण लया, है बरकत इस विच पूरी।

शाह इनायत दे कदमीं डिग्गा, उस दम मरद रूहानी।
राज़ी हो के बैत कबूली, पाया राज़ निहानी।*

सतगुरु से मिलाप और उनसे नामदान पाने की घटना तथा बुल्लेशाह पर हुए इसके गहरे प्रभाव का एक विद्वान ने इस प्रकार वर्णन किया है, "बुल्लेशाह में वे सभी गुण मौजूद थे, जो शाह साहिब अपने किसी योग्य शिष्य में ढूँढ़ना चाहते थे। आपने अपना अन्तर खोलकर बुल्ले के सामने रख दिया। ...दर्शन हुए बुल्ला बेख़ुद हो गया और उस बेख़ुदी में मंसूर की भाँति बहने लगा।"†

बुल्लेशाह का समय अद्भुत मस्ती में गुज़रने लगा। सतगुरु की संगति और उसके बताये हुए मार्ग की अमली साधना से बुल्लेशाह की रूहानी अवस्था दिन-प्रतिदिन बदलने लगी। अपनी काफ़ी 'जो रंग रंगिया गूड़ा रंगिया मुरशद वाली लाली ओ यार' में बुल्लेशाह संकेत करता है कि सतगुरु ने मुझे लाल रूहानी रंग में रँग दिया है। मेरी आन्तरिक आँख खुल गयी है, मेरे सब भ्रम दूर हो गये हैं और मुझ पर हक़ीक़त का नूर बरसने लगा है। मुर्शिद की दया से मुझे अन्तर में प्यारे प्रियतम का दीदार हो गया है और मेरे लिए रब और मुर्शिद का भेद समाप्त हो गया है।

बुल्लेशाह के मन पर गुरु के प्यार का इतना गाढ़ा रंग चढ़ गया कि उसको गुरु के अतिरिक्त किसी चीज़ की सुध-बुध ही नहीं रही। उसमें एक अनोखी प्रकार की बेपरवाही पैदा हो गयी। उसके हर कार्य में से रहस्यमय संकेत फूटने लगे। प्रो. पूर्णसिंह ने अपनी पुस्तक *स्पिरिट आफ़ ओरीएंटल पोयट्री* में बुल्लेशाह के जीवन के इस दौर की एक दिलचस्प घटना का वर्णन किया है। एक दिन एक नवयुवती को – जिसके दूल्हे ने घर आना था – सिर गुँथवाते देखकर बुल्लेशाह के मन में अजीब हलचल पैदा हो

* **बैत कबूली**=नामदान लिया; **पाया...निहानी**=गुप्त भेद प्राप्त किया।

† सुन्दरसिंह नरूला, सम्पादक: *साईं बुल्लेशाह*, 1931, पृ. 9

गयी। वह भी उस नवयुवती के समान सिर गुँथवाकर अपने गुरु के डेरे की ओर चल दिया कि मैं भी अपने पति को मिल लूँ। सांसारिक वृत्ति वाले व्यक्ति को इस प्रकार का काम हँसीवाला लगेगा, परन्तु इससे न केवल बुल्ले के प्रेम की तीव्रता और उसके मन की निश्छलता का पता लगता है, बल्कि उसकी फ़क़ीराना बेपरवाही और सतगुरु पर स्वयं को न्योछावर कर देने की स्वाभाविक इच्छा का भी अनुमान होता है। सच्चे प्रेमियों की तरह बुल्लेशाह ने अपनी पुरुषोंवाली अकड़ त्यागकर अपने आपको ऐसी निर्बल, अबला स्त्री के रूप में ढाल लिया जो अहं को त्यागकर अपने आपको पूरी तरह प्रियतम के सम्मुख समर्पित कर देती है।

गुरु की शरण लेने से पहले बुल्लेशाह के मन में जो शंका, प्रश्न या भ्रम थे, वे सब आन्तरिक प्रकाश में डूब गये। जब बुल्ले ने साईं इनायत शाह के पास आने का निश्चय किया था तो लोगों ने समझाया था कि तू इतना विद्वान, गुणवान, ज्ञानवान, सिद्धियों-शक्तियों का मालिक और हज़रत मुहम्मद के वंश का सैयद होकर एक साधारण माली और जाति के अराईं का शिष्य बनने जाये, क्या लज्जा की बात नहीं? परन्तु मुर्शिद अपने नाम का पूरा निकला।* उसने बुल्लेशाह पर वह इनायत (दया) की कि एक ही दृष्टि से उसको रूहानी प्रकाश से भरपूर कर दिया। कहा जाता है कि बुल्ला ख़ुशी और कृतज्ञता के मिले-जुले रंग में पुकार उठा:

जे तूं लोड़ें बाग़ बहारां, चाकर रहो अराइयां दा।

बुल्लेशाह ने शाह इनायत का ऐसा पल्ला पकड़ा कि फिर कभी नहीं छोड़ा। बुल्लेशाह की वाणी में मुर्शिद के प्रेम और महिमा के जो भाव-पूर्ण वर्णन मिलते हैं, उनमें मस्ती भी है और रंगीनी भी, ख़ुमारी भी है और कृतज्ञता भी। इस उपमा में उसने सतगुरु और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं किया। उसने इनायत शाह को हिदायत करनेवाला हादी† और परमात्मा को

* **इनायत** का शाब्दिक अर्थ 'दया-मेहर' है।

† मेरे दुख दी सुणे हकायत,
आ इनाइत करे हदायत, तां मैं तारियां। (अठवारा)

मिलानेवाला कामिल मुर्शिद कहा है* तथा उसको पति, शौह, साईं, सज्जन, यार† आदि कहकर उसके प्रति अपनी सच्ची प्रीति प्रकट की है। वह अपने सतगुरु को सच्चा आरिफ़ (ब्रह्मज्ञानी), रूह का मालिक और लोहे को सोना बनानेवाला पारस कहता है:

बुल्ला शौह 'इनाइत' आरफ़ है,
ओह दिल मेरे दा वारस है।
मैं लोहा ते ओह पारस है, ...।

गुरु एक निर्बल बेसहारा और फूहड़ को पार उतारनेवाला होशियार तैराक‡ है। वह रूह को रूहानियत के रंग-बिरंगे आँचल पहनाकर दुहागिन से सुहागिन बनानेवाला और ऊँची उड़ान की विधि सिखाकर परमात्मा से मिलानेवाला मध्यस्थ है:

बुल्ला शौह ने आंदा मैनूं इनाइत दे बूहे।
जिस ने मैनूं पवाए चोले सावे ते सूहे।

---

* (क) शाह इनायत मुरशद मेरा, जिसने कीता मैं वल फेरा।
चुक गया सब झगड़ा झेड़ा, हुण मैंनूं भरमावे कौण। (सीहरफ़ी)

(ख) बुल्ला शौह संग प्रीत लगाई, जीअ जामे दी दित्ती साईं।
मुरशद शाह इनायत साईं, जिस दिल मेरा भरमायो।

(ग) हर हर दे विच आप समाया,
शाह इनायत आप लखाया, तां मैं लखया। (बारहमाह)

† (क) इनायत सेज ते आवसी हुण मैं वल फुल के। (गंढाँ)

(ख) सईंआं देण मुबारक आइयां,
शाह इनायत आखां साईंयां, आसां पुनीआं। (बारहमाह)

(ग) मापे छोड़ लग्गी लड़ तेरे, शाह इनाइत साईं मेरे।
लाइयां दी लज्ज पाल वे, वेहड़े आ वड़ मेरे।

(घ) आ सज्जण गल लग असाडे, केहा झेड़ा लायो ई।
बुल्ला शौह घर वस्या आके, शाह इनायत पायो ई।

(ङ) बुल्ला शौह दी ज़ात न काई, मैं शौह इनाइत पाया ए।

‡ बुल्ला शौह दे लायक नाहीं, शाह अनायत तारी।

जां मैं मारी है अड्डी मिल पया है वहीआ।
तेरे इश्क़ नचाइआं कर थइआ थइआ।

बुल्ला गुरु को ही दीन-ईमान और दुनिया कहता है:

शाह इनायत दीन असाडा, दीन दुनी मकबूल असाडा।

यही नहीं, उसको सतगुरु, परमात्मा से अभेद दिखायी देने लगा और उसको परमात्मा की भाँति सतगुरु भी सर्वव्यापक दिखायी देने लगा:

सावण सोहे मेघला घट सोहे करतार।
ठौर ठौर इनायत बस्से पपीहा करे पुकार।

हज़रत मुहम्मद के वंश के एक विद्वान सैयद द्वारा एक साधारण अराईं को अपना गुरु मान लेना, उस समय के समाज के लिए कोई मामूली घटना न थी। यह ऐसा ज़बरदस्त धमाका था जिसने चारों ओर हलचल मचा दी। बुल्ले को अपने धर्म, जाति और परिवार के लोगों का विरोध तथा अनेक प्रकार के ताने व व्यंग्य सहन करने पड़े। वह कहता है:

1. इश्क़ असां नाल केही कीती, लोक मरेंदे ताअने।
2. मित्र प्यारे दे कारन नी मैं लोक उल्हामें सहनी हां।
3. बुल्ले नूं समझावण आइयां भैणां ते भरजाइयां।
   मन लै बुल्लया कैह्णा साडा, छड्ड दे पल्ला राइयां।
   आल नबी औलाद अली नूं, तूं क्यों लीकां लाइयां।

बुल्लेशाह ने बड़ी निडरता से इस बात का प्रचार किया कि पूर्ण सतगुरु चाहे कितनी छोटी से छोटी जाति में क्यों न आये हों, उनका पल्ला पकड़ने से ही जीव का पार उतरना सम्भव है। वे बेधड़क होकर कहते हैं कि सैयदपन का मान और गर्व करनेवाले नरकों की अग्नि में जलेंगे परन्तु साईं इनायत शाह जैसे अराईं का पल्ला पकड़नेवाले रूहानी दौलत से मालामाल हो जायेंगे:

जेहड़ा सानूं सैयद सद्दे, दोज़ख़ मिलण सज़ाइयां।*
जो कोई सानूं राईं आखे, भिश्ती पींघां पाइयां।†
जे तूं लोड़ें बाग़ बहारां, चाकर हो जा राइयां।

बुल्लेशाह के जीवन के इन्हीं दिनों की एक घटना उसकी मस्ती, बेपरवाही और उदारता का सुन्दर चित्र खींचती है। कहा जाता है कि संसार के तंग करने पर बुल्लेशाह ने गधियाँ ले लीं ताकि संसार उससे घृणा करने लगे। बुल्लेशाह को लोग 'गधियाँ वाला' कहने लगे। कहते हैं‡ कि किसी ग़रीब की पत्नी को एक मुसलमान हाकिम ज़बरदस्ती अपने घर ले गया। जब उसकी पुकार किसी ने नहीं सुनी तो किसी ने कहा कि बुल्लेशाह कामिल फ़क़ीर है। तू जाकर उसकी ख़ुशामद कर। जब उसके पास गया, उसने कहा, "जा, शहर में जाकर देख कहीं तबला और सारंगी बजते हैं?" एक जगह हिजड़े गा रहे थे। उसने देखा और आकर बुल्लेशाह को उसकी सूचना दी। बुल्लेशाह उनमें जा मिले और नाचने लगे। जब वज्द (मस्ती) में आये तो उससे पूछा कि वह हाकिम कहाँ रहता है? वह कहने लगा कि शहर के अमुक ओर खजूर वाले बाग़ और आमों वाली बग़ीची में रहता है। तब बुल्लेशाह ने ध्यान देते हुए कहा:

अंबांवाली बगीची सुनींदी, खज्जियाँ वाला बाग।
खोतियाँ वाले सद्द बुलाई, सुत्ती ऐं ते जाग।
चीना ईं छड़ींदा यार! चीना ईं छड़ींदा।

---

* **दोज़ख़**=नरक।
तुलसी साहिब कहते हैं:

नीच नीच सब तरि गये, संत चरन लौलीन।
जातहिं के अभिमान से, डूबे बहुत कुलीन॥

(*संतबानी संग्रह*, भाग 1, पृ. 235)

कबीर साहिब कहते हैं:

जाति न पूछो साध की, पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥

(*कबीर साखी-संग्रह*, पृ. 120)

† **भिश्ती**=स्वर्ग में।

‡ *परमार्थी साखियाँ:* राधास्वामी सत्संग ब्यास, संस्करण 2005, पृ. 61-62

बुल्लेशाह के कहने की देर थी कि वह स्त्री बरबस खिंची चली आयी। बुल्लेशाह ने कहा, "हे मनुष्य! जा ले जा।" उधर बुल्लेशाह के पिता को लोगों ने बता दिया कि पहले तो तुम्हारे पुत्र ने गधियाँ रखी थीं, अब हिजड़ों के साथ नाचने लगा है, सैयदों की इज़्ज़त मिट्टी में मिला रहा है। बुल्लेशाह का पिता एक हाथ में लाठी पकड़े और दूसरे में माला लिये, वहाँ जा पहुँचा। जब बुल्लेशाह ने अपने पिता को आते देखा तो दिल में आया कि आज यह भी ख़ाली न जाये। ध्यान देकर गाने लगा:

लोकां दे हत्थ मालीयां ते बाबे दे हत्थ माल।
सारी उमर पिट पिट मर गया खुस न सकया वाल।
चीना ईं छड़ींदा यार! चीना ईं छड़ींदा।

पिता भी साथ में नाचने लगा और अन्दर परदा खुल गया। हाथ से माला फेंककर कह उठा:

पुत्तर जिन्हां दे रंग रंगीले मापे वी लैंदे तार।
चीना ईं छड़ींदा यार! चीना ईं छड़ींदा।

प्रेम का आरम्भ बहुत चित्ताकर्षक होता है, परन्तु इसका मार्ग विषम और मंज़िल दूर है। प्रेमी की छोटी-सी बेसमझी या भूल प्रेमिका की नाराज़गी का कारण बन जाती है और प्रेमी के लिए मुसीबतों के पहाड़ खड़े कर देती है। यही दशा बुल्लेशाह की हुई, जब उसकी भूल के कारण मुर्शिद उससे नाराज़ हो गये।

कुछ लेखकों ने मुर्शिद की नाराज़गी का यह कारण बताया है कि बुल्लेशाह ने खुलेआम शरीअत की आलोचना करनी शुरू कर दी और यह बात गुरु को पसन्द न आयी। परन्तु यह बात जँचती नहीं क्योंकि शरीअत की आलोचना सब सूफ़ी अपने-अपने ढंग से सदा करते आये हैं और क़ादिरी सम्प्रदाय के सूफ़ी भी शरीअत के पुजारी नहीं थे।

नाराज़गी का कारण बतानेवाला दूसरा वर्णन बिल्कुल भिन्न है। कहा जाता है* कि एक बार बुल्लेशाह ने अपने मुर्शिद साईं इनायत शाह को अपने किसी

---

* *परमार्थी साखियाँ:* राधास्वामी सत्संग ब्यास, संस्करण 2005, पृ. 78

रिश्तेदार की शादी में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण दिया। साईं जी ने अपने स्थान पर अपना एक शिष्य भेज दिया। वह शिष्य अराईं जाति का था और फ़क़ीरों के वेश में था। एक ओर बुल्लेशाह के क़बीले को सैयद होने का गर्व था और दूसरी ओर उसके साधारण पहरावे के कारण उन्होंने उसका कोई मान-सम्मान नहीं किया। बुल्ला भी चूक गया। उसे चाहिये था कि गुरु के प्रतिनिधि का पूरा मान व सम्मान करता परन्तु उसने भी लोक-लाज में आकर उसकी ओर ध्यान न दिया। जब शिष्य विवाह से लौटा तो साईं जी ने पूछा कि किस तरह रहे? उसने सारी बात सुना दी और नाराज़गी प्रकट की कि मेरी जाति के कारण बुल्लेशाह और उसके घरवालों ने मेरे साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। साईं जी कहने लगे, "बुल्ले की यह मजाल!" फिर बोले, "हमें उस निकम्मे से क्या लेना है! चलो हम उसकी क्यारियों से पानी मोड़कर तुम्हारी ओर कर देते हैं।" बस इतना कहना था कि बुल्लेशाह के लिए प्रलय आ गयी। जैसे ही मुर्शिद ने दया का पानी मोड़ लिया उसकी बहार पतझड़ में बदल गयी। अन्दर का परदा बन्द हो गया। आन्तरिक दृश्य अलोप हो गये। प्रकाश अन्धकार में और आनन्द शोक में बदल गया। बुल्ला शून्य के समान हो गया।

जिसको आरम्भ से ही आन्तरिक दैवी आनन्द की झलक न मिली हो और जिसने अन्तर में सतगुरु के व्यक्तित्व का दिव्य प्रकाश न देखा हो, उसकी बात अलग है परन्तु जो साधक एक बार आन्तरिक अमूल्य धन से मालामाल हो चुका हो, उसके पास से अचानक यह दौलत छीन ली जाये तो उस पर क्या बीतती है, यह वही जानता है। वास्तव में रूहानी दौलत का मालिक पूर्ण सतगुरु होता है और शिष्य के वश में कुछ नहीं होता। देखने में लगता है कि शिष्य स्वयं गुरु को ढूँढ़ता है और अपनी हिम्मत से उसके बताये हुए मार्ग पर चलकर उन्नति करता है। परन्तु वास्तव में न वह मन-बुद्धि की सहायता से पूरे गुरु की खोज या पहचान कर सकता है, न अपने बल या चतुराई से उससे सच्चा मार्ग प्राप्त कर सकता है और न ही अपने प्रयत्न से आन्तरिक मंज़िलों में पहुँचने के योग्य बन सकता है। सच्चे मार्ग का मिलना, रूहानी उन्नति का होना और क़ायम रहना, सबकुछ सतगुरु की दया व मेहर पर निर्भर करता है। बुल्लेशाह ने स्वयं लिखा है, 'गुरु जो चाहे सो करदा है।'

परन्तु इस सत्य तक पहुँचने के लिए उसको गुरु की नाराज़गी और विरह की आग के भयानक समुद्र को पार करना पड़ा।

परदा बन्द होते ही बुल्लेशाह गुरु के पास दौड़ा आया परन्तु उन्होंने मुख मोड़ लिया और अपना डेरा छोड़कर चले जाने का हुक्म दिया। एक गुरु की नाराज़गी और दूसरे मुँह न देखने की आज्ञा। किसी शिष्य के लिए इससे बड़ा सन्ताप क्या हो सकता है! बुल्लेशाह की जान पर बन आयी। वह पश्चात्ताप और विरह की आग में मछली की भाँति तड़पने लगा।

बुल्लेशाह की वाणी में इस दुःख भरी अवस्था के बड़े दर्द-भरे वर्णन मिलते हैं। उसकी कई काफ़ियों में आत्म-कथा जैसा पुट मिलता है। इन काफ़ियों के रचना-काल के विषय में कोई पक्का दावा कर पाना कठिन है। परन्तु ये बुल्लेशाह की इस समय की मानसिक अवस्था की ओर ही संकेत करती हुई प्रतीत होती हैं। इनमें विरह की नदी उछलती दिखायी देती है। भाव की "तीव्रता, वास्तविकता, सोज़ और तड़प में ये काफ़ियाँ बेजोड़ हैं।"*

नीचे लिखी काफ़ी से पता लगता है कि प्रियतम के मिलाप से मिले आनन्द की याद और प्रियतम के वियोग की तड़प एक गुप्त आग की तरह बुल्ले को जलाकर राख करती चली जा रही थी। वह प्रीति को त्याग नहीं सकता, परन्तु प्रियतम के वियोग के कारण उसे न दिन में आराम है, न रात को चैन है। प्रियतम का दर्शन नसीब नहीं होता, परन्तु उसके बिना छाती फटती है और कलेजा जलता है। इस वेदना को सहन करना कठिन है परन्तु प्रीति का त्याग कर सकना भी असम्भव है। इसलिए वह जीवन और मौत के बीच लटक रहा है:

अब लगन लग्गी किह करीए?
न जी सकीए ते न मरीए।
तुम सुणो हमारे बैना, मोहे रात दिने नहीं चैना।†
हुण पी बिन पलक न सरीए।‡
अब लगन...

---

* *पंजाबी साहित्य का इतिहास*, भाषा विभाग, पटियाला, सूफ़ी कविता (मध्यकाल), पृ. 60

† **बैना**=बातें।

‡ अब प्रियतम के बिना पल भर भी चैन नहीं पड़ता।

एह अगन बिरहों दी जारी, कोई हमारी प्रीत निवारी।
बिन दर्शन कैसे तरीए।
अब लगन...

बुल्ले पई मुसीबत भारी, कोई करो हमारी कारी।*
एह अजेहे दुख कैसे जरीए।†
अब लगन...

एक अन्य काफ़ी में इस तड़प को इस प्रकार व्यक्त किया गया है:

मैनूं छड गए आप लद गए, मैं विच की तक़सीर।‡
रातीं नींद न दिने भुक्ख, अक्खीं पलटया नीर।
छवीआं ते तलवारां कोलों, इश्क दे तिक्खे तीर।
इश्क जेड न ज़ालम कोई, एह ज़हमत बेपीर।§
इक पल साइत आराम न आवे, बुरी बिरहों दी पीर।¶
बुल्ला शौह जे करे इनायत, दुख होवण तग़ईर।**
मैनूं छड गए आप लद गए, मैं विच की तकसीर।

ज्यों-ज्यों वियोग का समय लम्बा होता है त्यों-त्यों बुल्लेशाह का कलेजा मुँह को आता है। एक ओर वियोग का दु:ख और दूसरी ओर जग-हँसाई, बुल्लेशाह को हर पल घायल करते हैं। वह मुर्शिद की याद के सजदे करता है और उसके आगे बार-बार विनती और प्रार्थना करता है कि मेरे साईं इनायत शाह, मुझे शीघ्र से शीघ्र दर्शन दो:

* **कारी**=इलाज, चारा।
† इस प्रकार ये दु:ख कैसे सहन करें?
‡ **लद गए**=चल दिये; **तक़सीर**=ग़लती।
§ **ज़हमत**=मुसीबत; **बेपीर**=ला-इलाज।
¶ **साइत**=घड़ी।
** यदि प्रियतम दया करे तो दु:ख दूर हो जायें।

मेरे माही क्यों चिर लाया ए।
कौह बुल्ला हुण प्रेम कहाणी, जिस तन लग्गे सो तन जाणे।
अंदर झिड़कां बाहर ताहने, नेहों ला एह सुख पाया ए।

नैनां कार रोवन दी पकड़ी, इक मरना दूजे जग दी फकड़ी।*
बिरहों जिंद अवल्ली जकड़ी, नी मैं रो रो हाल वंजाया ए।

बुल्ले शौह घर लपट लगाई, रसते में सभ बण तण जाई।
मैं वेखां इनायत साईं, जिस मैनूं शौह मिलाया ए।

बुल्लेशाह अपनी ग़लती और नादानी पर परेशान है, जो उसके लिए जान-लेवा बन गयी है। वह अपनी भूल बख़्शवाना चाहता है। वह मन ही मन गुरु के आगे ख़ुशामदें करता है कि अब वियोग का घाव भर दो और दर्शन देकर तपते हुए हृदय को शीतल कर दो:

मैनूं दरद अवलड़े दी पीड़।
आ मियां रांझा दे दे नज़ारा, मुआफ करीं तकसीर।
तख़त हज़ारयों रांझा तुरया, हीर निमाणी दा पीर।
होरनां दे नौशौह आवे जावे, की बुल्ले विच तक़सीर।†

बुल्लेशाह केवल अपने दु:ख का ही वर्णन नहीं करता, अपने गुरु से गिले-शिकवे भी करता है। एक ओर वह अपनी अपरिपक्व बुद्धि से परेशान है और दूसरी ओर गुरु को उलाहने देता है जिसने प्रेम का तीर कलेजे में मारकर फिर मुँह छिपा लिया है और कभी बात भी नहीं पूछता:

घायल कर के मुख छुपाया, चोरियां एह किन दस्सीआं वे।
नेहों लगा के मन हर लीता, फेर न अपणा दर्शन दीता।
ज़हर प्याला मैं आपे पीता, अकलों सी मैं कच्चीआं वे।

* **कार**=काम, आदत; **फकड़ी**=हँसी।
† **नौशौह**=पति, स्वामी।

वह इनायत शाह को 'लाहौर का ठग' कहकर ताने देता है, जिसने प्यार की ऐसी मीठी मार मारी है कि उसको कहीं का नहीं छोड़ा:

इस दा मूल न खाणा धोखा, जंगल बसती मिले न ठौर।
दे दीदार होया जद राही, अचनचेत पई गल फाही।
डाढी कीती बेपरवाही, मैनूं मिलया ठग्ग लहौर।

"मुर्शिद के वियोग में रात भर ज़ार-ज़ार रोना, बुल्ले का नित्य का व्यवहार हो चुका था। बुल्ले का यह वियोग पागलपन की सीमा तक पहुँच चुका था और वह दीवानों की भाँति गली-गली भटकने लगा। उसे मुर्शिद के मिलाप की तड़प ने बेहाल और बेसुध कर दिया तो वह इस आग को शान्त करने की युक्ति सोचने लगा।"* उसे पता था कि उसका गुरु (मुर्शिद) संगीत का प्रेमी है। कहते हैं† कि बुल्लेशाह ने स्त्री का वेश धारण किया, सारंगी पकड़ ली और किसी गानेवाली के पास जाकर रहने लगा। उससे नाचना सीखा और गाने में दक्षता प्राप्त की। जब बुल्लेशाह इस काम में निपुण हो गया तो पखावज और अन्य वाद्य बजानेवालों को साथ लेकर उस मज़ार पर मुजरा करने के लिए पहुँच गया जहाँ वार्षिक उर्स पर हज़रत इनायत शाह भी आये हुए थे। सब नाचने और गानेवाले तो थककर बैठ गये परन्तु बुल्लेशाह भक्ति व प्रेम में लगातार नाचता रहा। उसकी आवाज़ में असीम पीड़ा थी और वह हृदय को छेद देनेवाले स्वर में पुकार रहा था। कहते हैं कि बुल्लेशाह ने उस समय विरह की कई काफ़ियाँ गायीं। अन्त में उसकी पीड़ा को देखकर गुरु का दिल पसीज गया। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा, "अरे, तू बुल्ला है?" बुल्ला दौड़कर गुरु के चरणों में गिर पड़ा और अश्रुओं से छलकती आँखों से कहने लगा, "हुज़ूर, बुल्ला नहीं! भुल्ला हाँ।"

गुरु कभी भी शिष्य के विषय में अनजान नहीं होता। जब देखा कि पश्चात्ताप और वियोग की आग ने बुल्ले को तपाकर शुद्ध कुन्दन बना

* डॉ. जीतसिंह सीतल: *बुल्लेशाह*, पृ. 26

† मौला बख़्श कुश्ता: *पंजाबी शायरां दा तज़करा*, पृ. 104

दिया है तो उसकी ग़लती क्षमा कर दी और उसे छाती से लगा लिया।* हुज़ूर महाराज बाबा सावन सिंह जी फ़रमाया करते थे कि कामिल मुर्शिद ने बुल्लेशाह के विरह की अग्नि-परीक्षा इसलिए ली कि वे चाहते थे कि जिस हृदय में कुल-मालिक के सच्चे प्रेम और उसके कलमे अर्थात् शब्द की अमूल्य दौलत का भण्डार रखना है, वह हृदय भी पककर उसे सँभालने के योग्य बन जाये।

फिर क्या था, दया और प्रेम के बन्द झरने दोबारा फूटने लगे। बुल्लेशाह की सूखी क्यारी को पानी मिल गया। उसकी बग़ीची फिर महक उठी। उसमें रस और आनन्द की सुगन्ध के फ़व्वारे फूट पड़े। *क़ानूने इश्क़* का लेखक लिखता है कि मुर्शिद बुल्लेशाह को छाती से लगाकर अपने साथ ले गये और उसे दिन-रात मिलाप के प्याले पिलाने लगे। बुल्लेशाह की आत्मा सतगुरु की आत्मा के रंग में रँग गयी और दोनों में कोई भेद न रहा। बुल्लेशाह की एक काफ़ी में उसके प्रियतम से अभेद होने की अवस्था का सुन्दर वर्णन है:

रांझा रांझा करदी नी मैं आपे रांझा होई।
सद्दो नी मैनूं धीदो रांझा हीर न आखे कोई।

रांझा मैं विच मैं रांझे विच होर ख़याल न कोई।
मैं नहीं ओह आप है अपणी आप करे दिलजोई।

हत्थ खूंडी मेरे अग्गे मंगू मोढे भूरा लोई।
बुल्ला हीर सलेटी वेखो कित्थे जा खलोई।

मुर्शिद परमात्मा से अभेद होता है। इसलिए मुर्शिद के साथ की अभेदता ही परमात्मा से अभेदता में बदल जाती है। इस अवस्था को बुल्लेशाह ने 'तूहियों हैं मैं नाहीं वे सज्जणां, तूहियों हैं मैं नाही' और 'पिया पिया करते हमीं पिया होए, अब पिया किस नूं कहीए' कहकर वर्णन किया है। इस अवस्था में पहुँचकर द्वैत का भ्रम दूर हो जाता है और हर ओर एक ही क़ादिर का जलवा और नूर दिखायी देता है। बुल्लेशाह कहता है कि मैं

* अनवर अली रोहतकी: *क़ानूने-इश्क़*, लाहौर, काफ़ियाँ, पृ. 54-55

कुल-मालिक के प्रेम के रंग में इस प्रकार रँग गया हूँ कि आपाभाव या अहं बिलकुल समाप्त हो गया है। मुझे शरीर के परदे के पीछे छिपे अपने वास्तविक अपनत्व का ज्ञान हो गया है। मुझे सारे संसार में अब एक ही प्रियतम का प्रकाश दिखायी देता है। मेरे लिए सारे अपने हो गये हैं, कोई भी पराया नहीं रहा:

अब हम गुम हुए, प्रेम नगर के शहर।
अपने आप को सोध रहा हूँ, न सिर हाथ न पैर।
ख़ुदी खोई अपना पद चीता, तब होई गल ख़ैर।
लत्थे धगड़े पहले घर थीं, कौण करे निरवैर।
बुल्ला शौह है दोहीं जहानीं, कोई न दिसदा ग़ैर।*

इस अद्वैत में हिन्दू-मुसलमान और भले-बुरे के सब झगड़े समाप्त हो गये और बुल्लेशाह को सब साधु ही साधु दिखायी देने लगे; उसके लिए कोई भी चोर या पराया न रहा:

सब साध कहो कोई चोर नहीं,
हर घट विच आप समाया ए।
टुक बूझ कौण छप आया ए।

इस अवस्था को पाकर बुल्लेशाह प्रेम, क्षमा और दया की मूर्ति बन गया। वह समदर्शी बन गया और मित्र-शत्रु, भले-बुरे और हिन्दू-मुसलमान सबसे एक जैसा प्रेम करने लगा। उसके जीवन की एक घटना इस अवस्था को बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करती है।

कहते हैं†, "एक बार बुल्लेशाह अपने हुजरे (कोठड़ी) में बैठे बन्दगी कर रहे थे। रमज़ान‡ का महीना था। उनके कुछ शिष्य बाहर बैठे गाजरें

* **कोई...ग़ैर**=कोई पराया दिखायी नहीं देता।

† *पंजाबी साहित्य का इतिहास*, मध्यकाल, भाषा विभाग, पटियाला, 1963, सूफ़ी मत, पृ. 64

‡ मुसलमान वर्ष में एक महीना व्रत रखते हैं। उस महीने को रमज़ान का महीना कहते हैं।

खा रहे थे। पास से कुछ रोज़ादार* मुसलमान गुज़रे। एक फ़क़ीर के डेरे पर मोमिनों† को रोज़ा भंग करते देखकर ग़ुस्से से बोले, "तुम्हें शर्म नहीं आती, रमज़ान के महीने में चर रहे हो और वह भी एक फ़क़ीर के डेरे पर।" शिष्यों ने कहा, "भाई मोमिनों, अपनी राह पकड़ो, हमें भूख लगी है, तभी तो खा रहे हैं।"

मोमिनों को शंका हुई कि शायद ये मुसलमान नहीं हैं। उन्होंने पूछा, "अरे तुम कौन हो?" उन्होंने कहा, "मुसलमान हैं! क्या मुसलमान को भूख नहीं लगती?" मोमिनों ने फिर मना किया। शिष्य फिर भी न माने। मोमिन, जो घोड़ों पर सवार थे, नीचे उतरे। उन्होंने शिष्यों के हाथ से गाजरें छीनकर दूर फेंकीं तथा एक-दो थप्पड़ भी जड़ दिये। वापस जाते समय उन्हें ख़याल आया कि इनका पीर (गुरु) भी ऐसा ही होगा, 'जिहो जिहे कुज्जे, ओहो जिहे आले।' पर चलो, उसे तो पूछ आयें कि शिष्यों को कैसी शिक्षा दी है? हुजरे में जाकर बोले, "अरे, तू कौन है?" बुल्लेशाह जो आँखें बन्द किये बैठा था, उसने बाज़ू ऊँचे करके हाथ हिला दिये। उन्होंने फिर पूछा, "अरे, बोलता नहीं, कौन होता है?" बुल्लेशाह ने फिर बाज़ू ऊँचे करके हिला दिये। मोमिन उसको पागल समझकर चले गये। उनके जाने की देर थी कि शिष्य दुहाई देते हुए हुजरे में आ गये और पुकार करने लगे कि उन्होंने हमें मारा है।

बुल्लेशाह: तुमने ज़रूर कुछ किया होगा?
शिष्य: नहीं हुज़ूर। हमने कुछ नहीं किया।
बुल्लेशाह: उन्होंने तुमसे क्या पूछा था?
शिष्य: तुम कौन हो? हमने कहा कि हम मुसलमान हैं।
बुल्लेशाह: बस बेटा! कुछ बने हो तभी तो मार खायी है। हम कुछ भी नहीं बने, इसलिए हमें किसी ने कुछ नहीं कहा।

* जिन्होंने रोज़ा (व्रत) रखा हो।

† मुसलमान, गुरुमुख।

अपने आपको कुछ वही समझता है, जो मन-माया के दायरे में है और जिसको हक़ (सत्य) का दीदार नहीं हुआ। जिसको सत्य के दर्शन हो जाते हैं, वह आत्म-दर्शी हो जाता है और धर्मों, देशों व जातियों की क़ैद से मुक्त हो जाता है। बुल्लेशाह की वाणी में अनेक स्थानों पर इस बात की ओर संकेत किया गया है कि परमात्मा की तरह आत्मा का न कोई धर्म है, न देश और न जाति-पाँति। सब धर्म समय व स्थान के क़ैदी हैं, परन्तु आत्मा अजन्मा और अनादि है। इसका न कोई आदि या अन्त है, न धर्म या जाति। बुल्लेशाह कहते हैं कि मैं केवल आत्मा का परमात्मा से आदि का रिश्ता पहचानता हूँ, संसार में प्रचलित कोई दूसरा बँटवारा स्वीकार नहीं करता:

अव्वल आखर आप नूं जाणा, न कोई दूजा होर पछाणा।
मैथों होर न कोई स्याणा, बुल्ला शौह खड़ा है कौण।
बुल्ला की जाणा मैं कौण?

अन्तर में सत्य को प्राप्त करके बुल्लेशाह न केवल स्वयं सत्य का रूप हो गये, बल्कि उन्होंने अपना शेष जीवन इस सत्य के प्रचार में ही लगा दिया। इस नाशवान संसार से प्रस्थान करने तक वे स्वयं परमात्मा की भक्ति में लीन रहे और अपनी संगति में आनेवाले जीवों को भी परमात्मा के प्रेम का पाठ पढ़ाते रहे। उनके पुरनूर व्यक्तित्व, निर्मल रहनी और दैवी वाणी ने हर ओर उनकी प्रसिद्धि फैला दी। सत्य के अनेक जिज्ञासु उनके व्यक्तित्व से लाभान्वित हुए। जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने अपना डेरा कसूर में लगा लिया और वहाँ ही सन् 1758-59 ई. में उन्होंने नश्वर शरीर का त्याग किया। कसूर में उनका मज़ार आज भी मौजूद है। *बाग़े-औलिआ-ए-हिन्द* में आता है:

यारां सौ इकत्तर हिजरी जिस दम सी आया।
विच कसूर मज़ार उन्हां दा वेखो खूब बणाया।

साईं बुल्लेशाह ऐसा पहुँचा हुआ दरवेश, कामिल फ़क़ीर और सच्चा आशिक़ था, जिसने मुर्शिद के इश्क़ द्वारा अल्लाह के इश्क़ की मंज़िल तय

की। उसके इश्क़ में तीव्रता, सोज़ और तड़प के साथ सिद्क़, क़ुर्बानी और त्याग था। उसने इश्क़ की वेदी पर जाति और विद्वत्ता का चढ़ावा चढ़ाया और विरह की आग में जलते हुए भी गुरु में अपनी निष्ठा और विश्वास को पल भर के लिए भी डोलने नहीं दिया। उसके जीवन की तरह उसकी वाणी इश्क़े-मजाज़ी (सतगुरु-रूपी साकार प्रभु के प्रेम) की अँगुली पकड़कर इश्क़े-हक़ीक़ी (निराकार प्रभु के प्रेम) तक पहुँचने का मार्ग दिखाती है जो संसार के सब सच्चे प्रभु-भक्तों का साँझा मार्ग है। इसमें धर्म, देश, रंग, रूप या नस्ल का कोई भिन्न-भेद नहीं। यह मार्ग समय और स्थान की सीमा से आज़ाद है। जिस किसी ने, जब कभी सत्य या परमात्मा से साक्षात् किया है, इस मार्ग पर चलकर ही किया है और जो कोई उससे साक्षात् करेगा, इस प्रेम-मार्ग का पथिक बनकर ही करेगा। साईं बुल्लेशाह की जीवनी और वाणी इस मार्ग के अनेक सूक्ष्म रहस्यों से भरी पड़ी है। यह परम सत्य के प्रेमी को बल देती है और उसे सत्य की प्राप्ति के मार्ग पर चलने के लिए बड़े से बड़ा बलिदान देने के लिए उत्साहित भी करती है। साईं बुल्लेशाह का व्यक्तित्व और वाणी दोनों कई शताब्दियों तक सच्चे प्रेमियों के लिए ज्ञान और प्रेम का प्रकाश फैलानेवाले ज्योति-स्तम्भ का काम करते रहेंगे।

रूहानी उपदेश

मनुष्य-जीवन का उद्देश्य

तसव्वुफ़ अर्थात् सूफ़ी मत उस अमली रूहानी साधना का नाम है जिसके द्वारा परमात्मा के प्रेमी और भक्त अपने मन, ख़ुदी या नफ़्स (अहं) का नाश करके परमात्मा से मिलाप की बका (अमर) अवस्था में पहुँच जाते हैं। सूफ़ी*, वली-अल्ला, दरवेश और फ़क़ीर उन मुसलमान भक्तों को कहा जाता है जिन्होंने अहं के त्याग और रूहानी अभ्यास द्वारा अपने अन्दर सहज ज्ञान प्राप्त कर लिया हो।

इन भक्तों का संसार, मनुष्य-जीवन और उसकी समस्याओं के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण होता है। वे इस बात पर ज़ोर देते हैं कि मनुष्य मन, इन्द्रियों और बुद्धि के परे ऐसी निर्मल रूहानी अवस्था प्राप्त कर सकता है, जिसमें उसको संसार में दिखायी दे रही क्षणभंगुर अनेकता के पीछे छिपी एक अमर सर्वव्यापक एकता का ज्ञान हो जाता है। इस अद्भुत अनुभव द्वारा जीवात्मा समय और स्थान के बन्धनों और इनके कारण पैदा हुए अनेक प्रकार के दु:खों से मुक्त हो सकती है। जीव को स्थूलता से ऊपर उठकर सूक्ष्मता में दाख़िल होने में सहायता देना, अनेकता से एकता, परिवर्तन से अडोलता, अपूर्णता से पूर्णता और स्थायी दु:खों से अमर आनन्द की निश्चल अवस्था में पहुँचाना, सच्ची रूहानियत, तसव्वुफ़ या सूफ़ी विचार-धारा का मूल उद्देश्य है। साईं बुल्लेशाह की वाणी मनुष्य के इसी निरन्तर प्रयत्न की एक शक्तिशाली कड़ी है।

---

* *A History of Sufism in India*, Vol. I, p. 1

सच्ची रूहानियत की दूसरी आवश्यक मान्यता यह है कि मन और इन्द्रियाँ आत्मा के कार्यशील होने के यन्त्र हैं। इनके द्वारा कार्यशील होनेवाली आत्मा स्वयं इनसे भिन्न और स्वतन्त्र है। आत्मा का अस्तित्व न तो शरीर और मन-इन्द्रियों पर आधारित है, न ही ये आत्मा की मूल प्रकृति को बदल सकते हैं। *क़ुरान मजीद* (17:85) में आता है, 'अलरूह मिन अमरे रब्बी' अर्थात् आत्मा परमात्मा की अंश है। इसमें परमात्मा वाली सभी विशेषताएँ मौजूद हैं। मन-माया का साथ लेने के कारण आत्मा के ये गुण दब चुके हैं। मन-माया के परदे दूर करके आत्मा अपने दिव्य गुण दोबारा प्रकट कर सकती है। साईं बुल्लेशाह मातलोक में उतरकर अपने आपको माद्दा समझनेवाली और शरीर तथा इन्द्रियों का साथ लेने के कारण अपने आपको शरीर तथा इन्द्रियाँ समझनेवाली आत्मा को उसके निर्मल दैवी स्रोत की याद कराते हैं। आप समझाते हैं कि हे आत्मा, तू परमात्मा की भाँति अनन्त, प्रकाशमय, अखण्ड, चेतन और आनन्द-स्वरूप है। तू मन, इन्द्रियों का साथ छोड़कर अपने मूल को पहचान:

1. बुल्ला शाह संभाल तूं आप ताईं,
   तूं तां अनंत लग देह में कहां सोवें।
2. बुल्ला शाह संभाल जब आप देखा,
   सदा सोहंग प्रकाश होए झुलदा एं।*
3. सुख रूप अखंड चेतन हैं तूं,
   बुल्ला शाह पुकारदे वेद चारे।
4. बुल्ला शाह संभाल तूं आप ताईं,
   तूं तां सदा अनंद हैं चानना एं।

---

* **सोहंग**=मैं वही हूँ, अर्थात् आत्मा और परमात्मा का मूल एक है। मंसूर द्वारा प्रयोग किये गये पद 'अनल हक़' (मैं ख़ुदा हूँ, मैं सत्य हूँ) और सोहं का एक ही अर्थ है। शरीर और मन-माया से मुक्त हो चुकी निर्मल आत्मा की ओर ये संकेत करते हैं, शरीर में क़ैद जीवात्मा की ओर नहीं।

साईं बुल्लेशाह ने मनुष्य के सामने अपने आपे अर्थात् अपने मूल की पहचान का प्रश्न खड़ा किया है। वे कहते हैं कि हे प्राणी, तू ध्यानपूर्वक सोच कि तू कहाँ से आया है और तुझे कहाँ जाना है:

तूं किधरों आया, किधर जाणा, आपणा दस्स टिकाणा।

शरीर आत्मा के सहारे खड़ा है और आत्मा अमर, अनादि और अजन्मा है। यह मज़हबों, मुल्कों और क़ौमों के बन्धनों से मुक्त है। यह भले-बुरे, सुख-दु:ख और मित्र-शत्रु की हर प्रकार की द्वैत से ऊपर है। यह पाँच तत्त्वों की उपज नहीं, सूक्ष्म, चेतन और प्रकाश रूप है। आत्मा संसार की रचना से पहले भी विद्यमान थी और संसार की समाप्ति पर भी इसका अस्तित्व समाप्त नहीं होता:

बुल्ला की जाणा मैं कौण॥
न मैं मोमन विच मसीतां, न मैं विच कुफ़र दीआं रीतां।
न मैं पाकां विच पलीतां, न मैं मूसा न फ़रऔन॥*

न मैं अंदर बेद किताबां, न विच भंगां न शराबां।
न विच रिंदां मस्त ख़राबां, न विच जागण न विच सौण॥†

न विच शादी न ग़मनाकी, न मैं विच पलीती पाकी।‡
न मैं आबी न मैं ख़ाकी, न मैं आतिश न मैं पौण॥§

न मैं अरबी न लाहौरी, न मैं हिंदी शहर नगौरी।
न हिंदू न तुरक पशौरी, न मैं रैह्न्दा विच नदौन॥

न मैं भेद मज़हब दा पाया, न मैं आदम हव्वा दा जाया।
न मैं अपना नाम धराया, न विच बैठन न विच भौण॥¶

* **फ़रऔन**=एक अहंकारी बादशाह।
† **रिंदां**=शराबी।
‡ **शादी**=ख़ुशी; **ग़मनाकी**=ग़मी; **पलीती**=गन्दगी; **पाकी**=पवित्रता।
§ मैं पानी, मिट्टी, आग, हवा और आकाश अर्थात् पाँच तत्त्वों की उपज नहीं हूँ।
¶ आत्मा जड़ नहीं है कि हिलजुल न सके और न ही आत्मा की मूल प्रकृति पर आवागमन का प्रभाव होता है।

अव्वल आखर आप नूं जाणा, न कोई दूजा होर पछाणा।
मैथों होर न कोई स्याणा, बुल्ला शौह खड़ा है कौण॥

मन और इन्द्रियों से बँधा जीव अनेक प्रकार के बन्धनों में जकड़ा हुआ है परन्तु इसमें इन बन्धनों को तोड़कर पुन: स्वतन्त्र होने की शक्ति विद्यमान है:

मैं बे क़ैद मैं बे क़ैद। न रोगी न वैद।
न मैं मोमन न मैं काफ़र। न सैयद न सैद।
चौथीं तबकीं सैर असाडा। किते न हुंदा क़ैद।*

यह सही है कि संसार में आत्मा मनुष्य बनकर आयी है पर यह बहुत ऊँचे स्थान और ऊँची हक़ीक़त में से आयी है। इसमें उस स्थान पर वापस पहुँचने और उस सत्य में समाकर उसका रूप हो जाने की सामर्थ्य सदा बनी रहती है:

1. तूं ओस मुकामों आया ए,
   एथे आदम बण के समाया ए।
2. बुल्ला शाह बबेक बिचार सेती,†
   ख़ुदी छोड़ ख़ुद होए खसम साईं।
3. ख़ुदी खोई अपना पद चीता, तब होई गल ख़ैर।‡

बाइबल में आता है कि परमात्मा ने मनुष्य को अपने जैसा बनाया है।§ नि:सन्देह पाँच तत्त्वों के शरीर के कारण नहीं बल्कि उसमें रखी आत्मा की ज्योति के कारण ही प्रभु-रूप है और अपने अन्दर उस सत्य को दोबारा जाग्रत करना ही जीव का वास्तविक उद्देश्य है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि इस मन-माया के देश में आकर जीव अपने असली स्वरूप और असली घर

* **चौथीं तबकीं**=चौदह लोक।
† **बबेक**=निर्मल बुद्धि जो मन व इन्द्रियों के प्रभाव से मुक्त हो।
‡ अहं को दूर करके अपने आपे (मूल) की पहचान की।
§ God created man in His own image. (*Genesis* 1:26-27)

को भुला चुका है। उसको यह ज्ञान नहीं कि उसके अस्तित्व का वास्तविक आधार वह सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञाता और आनन्द-स्वरूप परमात्मा है। जिस जीव को न तो अपनी वास्तविक सामर्थ्य का ज्ञान हो, न अपने शक्तिशाली आधार का पता हो और जो अपने असली घर को भूलकर पराये देश में ठोकरें खा रहा हो, वह सुख और शान्ति की आशा कैसे कर सकता है?

साईं जी ने अपनी काफ़ी 'उठ जाग घुराड़े मार नहीं' में आत्मा को 'ग़ाफ़िल', 'अचेत', 'सोई हुई', 'नींद में खोई हुई' और 'खर्राटे मार रही' कहा है। आप उसको 'अहंकारी हुई', 'यौवनमती', 'रूपमती', 'सैय्या से रत्ती', 'बातों में मस्त', 'कुचज्जी' और 'निर्लज्ज' कहते हैं। आप आत्मा को सावधान करते हैं कि यह देश तेरा देश नहीं। तेरा देश बहुत दूर है। रास्ते में घने जंगल हैं, सुनसान श्मशान हैं। जब तुझ अकेली को यहाँ से चलना पड़ेगा और कोई संगी, साथी या मित्र तेरे साथ नहीं होगा तो तेरी सहायता कौन करेगा? यहाँ सिकन्दर जैसे सम्राट, सुलेमान जैसे बुद्धिमान, बड़े-बड़े पीर और पैग़म्बर स्थायी तौर पर न रह सके, तो तू यहाँ कैसे सदा रह सकती है? यहाँ यूसुफ़, ज़ुलैख़ा नहीं रहे, चंबेली लाला, सोसन और सिंबल नहीं रहे, 'कोई एथे पायदार नहीं।' यहाँ एकत्रित करनेवाली केवल एक ही वस्तु है उस साईं, परमात्मा का प्यार और उसका कलमा या शब्द जो दोबारा उससे मिलाप करा सकता है।

बुल्लेशाह अपनी काफ़ी 'कर कत्तण वल ध्यान कुड़े' में सांसारिक वृत्ति वाली आत्मा को 'अहंकारी', 'गँवार', 'गुमानी', 'ग़ाफ़िल', 'भोली', 'कमली', 'झल्ली' आदि कहते हैं। आप कहते हैं कि यदि तू संसार में वह काम नहीं करेगी जिसके द्वारा प्रियतम से मिलने के योग्य बन सके तो तू यहाँ से 'रिज़क विहूणी', अर्थात् ख़ाली हाथ जायेगी। इसके विपरीत, 'कत्त कुड़े न वत्त कुड़े' काफ़ी में समझाते हैं कि यदि तू पूनी-पूनी भी कातेगी तो तुझे यहाँ से नंगा नहीं जाना पड़ेगा। यदि दहेज के बिना जायेगी तो पति को कैसे रिझायेगी? तो फिर क्या किया जाये? आप कहते हैं:

जे दाज विहूणी जावेंगी, तां किसे भली न भावेंगी।
ओथे शौह नूं किवें रीझावेंगी, कुझ लै फ़क़रां दी मत्त कुड़े।

बुल्ला शौह घर आपणे आवे, चूड़ा बीड़ा सभ सुहावे।
गुण होसी तां गले लावे, नहीं रोसें नैनी रत्त कुड़े।

बाबा फ़रीद ने अज्ञानी जीव की तुलना नदी के किनारे खेलों में व्यस्त बगुले से की है, जिसको संसार की वास्तविकता और अपनी मौत का कोई ज्ञान नहीं:

फरीदा दरीआवै कंन्है बगुला बैठा केल करे॥
केल करेदे हंझ नो अचिंते बाज पए॥
बाज पए तिसु रब दे केलां विसरीआं॥
जो मनि चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं॥
(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1383)

आप कहते हैं कि संसार में दो प्रकार के जीव हैं: एक सचेत और दूसरा अचेत। समझदार जीव संसार की वास्तविकता को समझते हुए ऐसा मार्ग अपनाते हैं कि दीन और दुनिया अर्थात् परमार्थ और स्वार्थ दोनों सँवर जाते हैं, परन्तु बेपरवाह मनमुख ऐसे अज्ञानमय कर्म कर बैठते हैं कि लोक-परलोक दोनों बरबाद कर लेते हैं:

फरीदा मउतै दा बंना एवै दिसै जिउ दरीआवै ढाहा॥
अगै दोजकु तपिआ सुणीऐ हूल पवै काहाहा॥
इकना नो सभ सोझी आई इकि फिरदे वेपरवाहा॥
अमल जि कीतिआ दुनी विचि से दरगह ओगाहा॥
(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1383)

प्रसिद्ध सूफ़ी ख़लीफ़ा अब्दुल मलक जीव को सावधान करते हैं कि यह संसार एक पुल है जिसको दूसरी ओर जाने के लिए प्रयोग करना चाहिये, घर बनाने के लिए नहीं।* आदि ग्रन्थ की सारी बाणी मनुष्य के इस संकट

* *Encyclopaedia of Islam*, (New Edition) Vol. III, p. 374; *A History of Sufism in India*, Vol. I, p. 27

को चित्रित करती है कि वह अज्ञानतावश झूठ को सच और सच को झूठ समझ रहा है। गुरु तेग़ बहादुर साहिब ने अज्ञानी जीव को 'बउरा', 'अचेत', 'अधम', 'मूर्ख', 'गँवार', 'भूला हुआ', 'कुमत्ती', 'लाजहीन', 'अंध' और 'अजान' कहा है और उसको 'चतुर सुजान' बनने की प्रेरणा दी है। उसके सब दु:ख इस कारण हैं कि वह सँभालने योग्य वस्तु से बेख़बर है और त्यागने योग्य वस्तु के पीछे लगातार दौड़ रहा है:

1. माइआ कारनि धावही मूरख लोग अजान॥
   कहु नानक बिनु हरि भजन बिरथा जनमु सिरान॥
   (आदि ग्रन्थ, पृ. 1427)

2. मनु माइआ मै फधि रहिओ बिसरिओ गोबिंद नामु॥
   कहु नानक बिनु हरि भजन जीवन कउने काम॥
   (आदि ग्रन्थ, पृ. 1428)

साईं बुल्लेशाह मायावी संसार को कुसुंभड़े का बाग़ कहते हैं। कुसुंभड़े के फूल जितने चमकीले, भड़कीले और आकर्षक होते हैं उतने ही अस्थायी और दु:खदायी हैं। कुसुंभड़े के सुन्दर रंग के कारण इसके बारीक काँटे भी भले लगते हैं, परन्तु इनका डंक बहुत विनाशकारी होता है, 'एस कसुंबे दे कंडे भलेरे अड़ अड़ चुनड़ी पाड़ी।' अज्ञानी जीव कुसुंभड़े के ढेर जमा करता रहता है, जब कि एक फूही (छोटा-सा टुकड़ा) भी साथ नहीं जा सकती। 'मैं कुसुंबड़ा चुण-चुण हारी' अर्थात् जीव अनन्त काल से माया को जीतने के असफल प्रयत्न में परेशान हो रहा है। अज्ञानी आत्मा के पार उतारे का एकमात्र साधन यह है कि वह किसी ब्रह्मज्ञानी की संगत करे जो इसकी अँगुली पकड़कर इसको संसाररूपी काँटों से भरे बाग़ से बाहर ले जाये:

मैं कमीनी कुचज्जी, कोहजी, बेगुण कौन बिचारी।
बुल्ला शौह दे लायक नाहीं, शाह इनायत तारी।
मैं कुसुंबड़ा चुण-चुण हारी।

बाबा शेख़ फ़रीद ने भी संसार को 'कुसुंबड़ा', 'कल्लर केरी छपड़ी', 'कोधरे का खेत', 'गुझी भाहं', 'खंड विच गलेफीआं ज़हर दीआं गंदलां', 'दुख्खां दी अग दा घर' आदि कहकर जीव को सावधान किया है कि इसमें स्थायी सुख व शान्ति की आशा रखना भारी मूर्खता है। नाशवान पदार्थों के मोह में फँसकर कभी भी जीवन के मूल मनोरथ को आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहिये। आप कहते हैं कि संसार के भोग बाहर से शक्कर जैसे मीठे हैं पर इनका प्रभाव ज़हरीला है। जीव को इनसे पैदा होनेवाले संकट का अन्त समय पता लगता है, जब कोई उपाय नहीं हो सकता, कोई पेश नहीं चल सकती:

देखु फरीदा जि थीआ सकर होई विसु॥
सांई बाझहु आपणे वेदण कहीऐ किसु॥
(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1378)

साईं बुल्लेशाह मनुष्य को संसार और शरीर दोनों की असलियत के विषय में सावधान करते हैं कि जो कुछ दिखायी दे रहा है, वह चार दिनों की मिट्टी की गुलज़ार है। संसार स्थिर नहीं है। शरीर मिट्टी की ढेरी है, जिसे एक न एक दिन गिर जाना है। शरीर और संसार की पहेली बूझने से ही जीव दोनों के बन्धन तोड़कर निज-घर वापस जा सकता है:

वाह वाह माटी दी गुलज़ार।
माटी घोड़ा, माटी जोड़ा, माटी दा असवार।

माटी माटी नूं दौड़ावै, माटी दी खड़कार।
माटी माटी नूं मारन लग्गी, माटी दे हथयार।

जिस माटी पर बहुती माटी, सो माटी हंकार।
माटी माटी नूं देखण आई, माटी दी ए बहार।

हस्स खेड फिर माटी होवे, पैंदी पाउं पसार।
बुल्ला एह बुझारत बुज्झे, तां लाह सिरों भोएं भार।

'ख़ाकी ख़ाक सिओं रल जाना, तूं कदे तां हो सिआणा' और 'रैण गई लटके सभ तारे' आदि बहुत-सी काफ़ियों में आपने संसार और उसके सम्बन्धों व पदार्थों की असलियत खोलकर समझायी है। आप बार-बार इस बात पर ज़ोर देते हैं कि ये वस्तुएँ अस्थायी व नाशवान हैं। इनमें से कोई वस्तु अन्त समय साथ नहीं जाती। सार वस्तु परमात्मा का प्रेम और सतगुरु की आज्ञा मानना है क्योंकि इनकी सहायता से हम अपने बन्धन तोड़कर वापस अपने मूल में समा सकते हैं। आप *क़ुरान शरीफ़* की आयतों से उद्धरण देकर समझाते हैं कि मनुष्य को अशरफ़ुल-मख़लूक़ात बनाया गया है। इसमें परमात्मा ने अपना नूर रखा है। इसको संसार में सीपियाँ और घोंघे इकट्ठे करने के लिए नहीं बल्कि अपने आपकी पहचान करने के लिए भेजा गया है:

1. लैसाफ़ीजंनती हाल बनाया,
   अशरफ़ इंसान बनाया।

अर्थात्: तुझे जन्नत (धुर-दरगाह) में वापस पहुँचने के योग्य बनाया है और सबसे उत्तम स्थान दिया है।

2. वलकदकरमना याद कराइयो,
   लाइलाह दा परदा लाहिओ।

अर्थात्: हे मनुष्य! देख, मैंने तेरा दर्जा कितना ऊँचा बनाया है, मेरे अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं, भाव तू केवल मुझे ही अपने प्यार और अपनी भक्ति के योग्य समझ।

साईं जी मनुष्य-शरीर की उस अमूल्य चरख़े से तुलना करते हैं जिस पर कुल-मालिक के प्रेम या भक्ति का सूत काता जा सकता है। आप कहते हैं कि अज्ञानी जीव इस चरख़े को मुफ़्त का माल समझकर इसके उपयुक्त प्रयोग की ओर ध्यान नहीं देता। उसको यह ज्ञान नहीं कि यह चरख़ा पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों की कड़ी मेहनत के बाद मिला है। जीव अज्ञानवश नाम या प्रभु-भक्ति की अपेक्षा इस पर अहं का सूत कातता है और मनुष्य-जन्म का अमूल्य अवसर व्यर्थ बरबाद कर लेता है:

कर कत्तण वल्ल ध्यान कुड़े।
नहिंयो कदर मेहनत दा पाया, जद होया कंम असान कुड़े।
चरखा मुफ़त तेरे हत्थ आया, पलयों नहिंओं कुछ गवाया।

इस चरखे दी कीमत भारी, तूं के जाणें कदर गवारी।
उच्ची नज़र फिरें हंकारी, विच आपणी शान गुमान कुड़े।
कर कत्तण वल्ल ध्यान कुड़े।

एह चरखा तूं क्यों गँवाया, क्यों तूं खेह दे विच रुलाया।
जद दा हत्थ तेरे एह आया, तूं कदे ना डाह्या आण कुड़े।
कर कत्तण वल्ल ध्यान कुड़े।

आप कहते हैं कि यह संसार आवागमन की सराय है। पहले आये लोग यहाँ नहीं रहे और न ही अब आनेवाले रहेंगे:

1. आवागौण सराईं डेरे साथ तयार मुसाफ़र तेरे।
   तैं ना सुणिओ कूच नगारे अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे।
2. इक जंमदे इक मर मर जांदे एहो आवागौण।
3. पाणी भर भर गईआं सभ्भो आपो अपणी वारी।
   इक भर आईआं, इक भर चल्लीआं,
   इक खलियां बांह पसारी।

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि यह संसार एक सराय की तरह है जहाँ एक रात का निवास है। यह पाँव पसारकर सोने का स्थान नहीं:

इक रात सरां दा रैह्णा ए, एथे आ कर भुल्ल ना बैह्णा ए।
कल्ह सभ दा कूच नकारा ए, तैं कित वल पाउं पसारा ए।

ज्ञानी पुरुष जीवन और संसार की असलियत को समझता हुआ अपनी दृष्टि सदा अपने अन्त पर रखता है। वह यहाँ से शुभ कर्मों और परमात्मा की भक्ति का तोशा तैयार करके साथ ले जाता है क्योंकि आगे काम आनेवाली यही एकमात्र वस्तु है:

पल दा वासा वस्सण एथे, रहण नूं अग्गे डेरा ए।
लै लै तोहफ़े घर नूं घल्लीं, एहो वेला तेरा ए।
ओथे हत्थ ना लगदा कुझ वी, एथों ही लै जावेंगा।
हजाब करें दरवेशी कोलों, कद तक हुकम चलावेंगा।

महाभारत में आता है कि यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा कि दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक कौन-सी चीज़ है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि संसार की सबसे अनोखी बात यह है कि लोग प्रतिदिन दूसरों को मरते हुए देखते हैं, परन्तु हरएक के मन में यह भ्रम बना रहता है कि शायद वह कभी नहीं मरेगा। शेख़ फ़रीद जी कहते हैं कि यदि कोई संसार में रह सकता तो हमसे पहले आये लोग कभी संसार को छोड़कर न जाते:

फरीदा किथै तैडे मापिआ जिन्ही तू जणिओहि॥
तै पासहु ओइ लदि गए तूं अजै न पतीणोहि॥
(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1381)

आप फ़रमाते हैं कि संसाररूपी सरोवर भी नाशवान है और इसमें उतरे जीवरूपी पक्षी भी नाशवान हैं। संसार रूपी वन में दृष्टि डालकर देख लें कि मृत्यु-ऋतु हर कोने में पहुँचती है:

चलि चलि गईआं पंखीआं जिन्ही वसाए तल॥
फरीदा सरु भरिआ भी चलसी थके कवल इकल॥
(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1381)

फरीदा रुति फिरी वणु कंबिआ पत झड़े झड़ि पाहि॥
चारे कुंडा ढूंढीआं रहणु किथाऊ नाहि॥
(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1383)

मनुष्य का जीवन नदी के किनारे खड़े वृक्ष की भाँति है जिसका कोई भरोसा नहीं। यह कच्चे बर्तन के समान है जिसमें साँसों का पानी बहुत देर नहीं रह सकता। मनुष्य-जीवन ऐसी गुदड़ी है जो एक बार फट जाये तो दोबारा सिल नहीं सकती:

कंधी उतै रुखड़ा किचरकु बंनै धीरु॥
फरीदा कचै भांडै रखीऐ किचरु ताई नीरु॥
(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1382)

फरीदा खिंथड़ि मेखा अगलीआ जिंदु न काई मेख॥
वारी आपो आपणी चले मसाइक सेख॥
(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1380)

अज्ञानी जीव संसार में काम कर रहे कर्म और फल के नियम को नहीं समझता। वह चाहता है कि कर्म भी अपनी इच्छा से करे और फल भी अपनी मरज़ी का ले।* यह असम्भव है क्योंकि कर्म करने की स्वतन्त्रता फल भोगने के बन्धन को जन्म देती है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं, संसाररूपी नगर में 'जैसी करनी वैसी भरनी' का व्यवहार है। जब किये हुए कर्मों का फल स्वयं भोगना पड़ता है तो बुरे कर्म करना मूर्खता नहीं तो और क्या है?

1. जैसी करनी वैसी भरनी, प्रेम नगर वरतारा ए।
2. रंग बरंगी सूल अपुठे चंबड़ जावन मैनूं।
   दुख्ख अगले मैं नाल लै जावां, पिछले सौंपां कैनूं।

अत्याचार, ज़बरदस्ती और अहंकार वही कर सकता है जिसको किये हुए कर्मों का फल मिलने की चिन्ता न हो:

1. कर लै चावड़ चार दिहाड़े, थीसें अंत निमाणा।
   जुलम करें ते लोक सतावें, छड्ड दे लोक सताणा।
   जिस जिस दा वी माण करें तूं, सो वी साथ न जाणा।
   शहर-ख़ामोशा नूं वेख हमेशा, जां विच जग समाणा।†

---

* फरीदा लोड़ै दाख बिजउरीआं किकरि बीजै जटु॥
हंढै उंन कताइदा पैधा लोड़ै पटु॥
(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1379)

† **शहर ख़ामोशा**=चुप का शहर अर्थात् क़ब्रिस्तान।

2. खावें मास चबावें बीड़े, अंग पुशाक लगाइया ई।
टेडी पगड़ी आकड़ चल्लें, जुत्ती पैर अड़ाइआ ई।
इक दिन अज़ल दा बकरा बनके आपणा आप कुहावेंगा।*

जीव पराया हक़ मारकर खुश होता है। वह यह समझने का प्रयत्न नहीं करता कि यह ऋण उतारने के लिए उसे फिर संसार में आना पड़ता है। ज़बरदस्ती सांसारिक विजय प्राप्त करनेवाला प्राणी जीवन की बाज़ी हार जाता है:

हक पराया जातो नाहीं, खा कर भार उठावेंगा।
फेर ना आ कर बदला देसें, लाखी खेत लुटावेंगा।†
दाअ ला के विच जग दे जूए, जित्ते दम हरावेंगा।

बुद्धिमान व्यक्ति वह है जो अपने अन्दर झाँकता है और बुरे कर्मों से बचता है। उसको विदित है कि बुरे कर्मों का सदा बुरा फल मिलता है:

फरीदा जे तू अकलि लतीफु काले लिखु न लेख॥
आपनड़े गिरीवान महि सिरु नींवां करि देखु॥
(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1378)

साईं जी अपनी काफ़ी 'नित्त पढ़ना एं इसतग़फ़ार कैसी तौबा है एह यार' में बताते हैं कि जीव बगुले भगत की भाँति अपनी ओर से बहुत होशियारी करता है। वह धर्मी बनकर दिखावे के लिए मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों में तोबा या प्रायश्चित्त करता है। वह बात-बात पर धर्म-ग्रन्थों की शपथ लेता है, पर इसके बावजूद, अत्याचार, ज़बरदस्ती, बेईमानी, लालच और धोखेबाज़ी से बाज़ नहीं आता। मुँह से प्रायश्चित्त करनेवाले पर दिल से लोभ, लालच और अनेक प्रकार के विकारों और कुकर्मों में फँसे हुए लोग, 'यहाँ' और 'वहाँ' दोनों जहानों में ख़राब होते हैं। उनके किये हुए कर्म ही उनके विनाश का कारण

* **अज़ल**=मृत्यु।

† **लाखी...लुटावेंगा**=मनुष्य-जन्म का लाखों रुपये के मूल्य का खेत व्यर्थ बरबाद कर लेगा।

बन जाते हैं। जब अन्त समय उनसे कर्मों का लेखा माँगा जाता है तो वे बहुत पछताते हैं, परन्तु उस समय क्या हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य मनमत छोड़कर किसी कामिल मुर्शिद अर्थात् पूर्ण सतगुरु की हिदायतों पर अमल करे, जिससे वह बुरे कर्मों से बचकर भवसागर से पार हो सके:

कैसी तोबा है, तोबा ना कर यार।
मूंहों तोबा दिलों ना करदा, इस तोबा थीं तरक न फड़दा।
किस ग़फ़लत ने पायो परदा, फिर बख़शे क्यों गफ़्फ़ार*।

नित्त पढ़ना एं इसतग़फ़ार कैसी तौबा है एह यार।
सावें दे के लवें सवाई, वाधयां दी तूं बाज़ी लाई।
मुसलमानी एह किथों आई,
नित्त पढ़ना एं इसतग़फ़ार कैसी तौबा है एह यार।

जित्थे ना जाना ओथे जाएं, माल पराया मुँह धर खाएं।
कूड़ किताबां सिर ते चाएं, एह तेरा इतबार।
नित्त पढ़ना एं इसतग़फ़ार कैसी तौबा है एह यार।

ज़ालम ज़ुलमों नाहीं डरदे, आपणीं अमलीं आपे मरदे।
मुंहों तौबा दिलों न करदे, एथे ओथे होण खुआर।
नित्त पढ़ना एं इसतग़फ़ार कैसी तौबा है यह यार।

बाबा फ़रीद ने अज्ञानी और ग़ाफ़िल जीव को ऐसे कर्म त्यागने की प्रेरणा दी है, जिनके कारण उसे साहिब के दरबार में पछताना पड़ेगा और ऐसी रहनी धारण करने की ताकीद की है, जिससे वह सदा के लिए सुख प्राप्त कर सकता है:

1. फरीदा जिन्ही कंमी नाहि गुण ते कंमड़े विसारि॥
मतु सरमिंदा थीवही सांई दै दरबारि॥
(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1381)

* **गफ़्फ़ार**=बख़्शनहार

2. आपु सवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ॥
फरीदा जे तू मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ॥
(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1382)

3. बोलै सेख फरीदु पिआरे अलह लगे॥
इहु तनु होसी खाक निमाणी गोर घरे॥
(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 488)

इसलिए साईं बुल्लेशाह जीव को राय देते हैं, 'केसर बीज जो केसर जंमें, लसण बीज ठगावेंगा।' केसर बोना उस ख़ुदावंद करीम (दयालु प्रभु) की भक्ति करना है* जो जीव को सांसारिक बन्धनों से आज़ाद करके प्रभु से मिला सकती है। 'से वणजारे आए नी माए' में आप निर्बल जीव की दुविधा का वर्णन करते हैं जो कामिल फ़क़ीरों से प्रभु के नाम के लाल ख़रीदना चाहता है, परन्तु उन अमूल्य लालों की क़ीमत देने को तैयार नहीं होता। उन लालों का मूल्य 'सिर' अर्थात् अहं का त्याग है पर जिसने कभी सुई की चुभन सहन न की हो, वह सिर कैसे काट सकता है?

आप 'हजाब करें दरवेशी कोलों कद तक हुकम चलावेंगा' में जीव को सावधान करते हैं कि तेरा वास्तविक भला संसार में अपना हुक्म चलाने में नहीं बल्कि अहं का त्याग करके दरवेशों, फ़क़ीरों और मालिक के सच्चे प्रेमियों वाली रहनी धारण करने में है। आप समझाते हैं कि सच्चे सुख और शान्ति का मार्ग परमात्मा का प्रेम है, नश्वर संसार और इसके नश्वर रिश्तों, पदार्थों और भोगों का मोह नहीं।

साईं बुल्लेशाह 'कर कत्तण वल्ल ध्यान कुड़े' काफ़ी में उपदेश करते हैं कि जब तक साँसों का भण्डार जारी है तब तक सतगुरु की बतायी हुई

* बाबा फ़रीद ने परमात्मा की भक्ति की कस्तूरी से तुलना की है। जो लोग रात को जागकर मेहनत करते हैं, उनको ही यह अमूल्य वस्तु मिलती है:

फरीदा राति कथूरी वंडीऐ सुतिआ मिलै न भाउ॥
जिंन्हा नैण नीद्रावले तिंन्हा मिलणु कुआउ॥
(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1382)

युक्ति के अनुसार जीवनरूपी रात में, ज्ञान का दीपक जलाकर परमात्मा की भक्ति का सूत कात लेना चाहिये क्योंकि जब अन्त समय मौत के फ़रिश्ते सिर के पास आकर खड़े होते हैं, तब कुछ नहीं हो सकता:

दीवा आपणे पास जगावीं, कत्त कत्त सूत भड़ोली पावीं।
अक्खीं विच्चों रात लंघावीं, औखी करके जान कुड़े।
अजे ऐडा तेरा कंम कुड़े, क्यों होई एं बे-ग़म कुड़े।
के कर लैणा उस दम कुड़े, जद घर आए महमान कुड़े।
कर कत्तण वल्ल ध्यान कुड़े।

बन्धन मुक्ति का साधन

परमात्मा का प्रेम

पत्तियां लिखां मैं शाम नूं, मैनूं पिया नज़र न आवे।
आंगन बणा डरौणा, कित बिधि रैण विहावे।
काग़ज़ करूं लिख दामने, नैन आंसू लाऊं।
बिरहों जारी हौं जरी, दिल फूक जलाऊं।

मन-माया के बन्धनों में क़ैद जीव इनसे मुक्त कैसे हो? मौलाना आज़ाद *रुबाईयात-ए-सरमद* की भूमिका में लिखते हैं कि माद्दी बन्धनों में जकड़ा हुआ मनुष्य इनसे छूट नहीं सकता, जब तक इसके दिल पर कोई सख़्त प्रहार न हो। शहद पर बैठी मक्खी बिना उड़ाये नहीं उड़ती। जब तक मनुष्य का दिल चोट न खाये, यह संसार की लज़्ज़तों को नहीं छोड़ता। यह चोट केवल प्रेम के हाथों से ही लग सकती है। प्रेम के फ़रिश्ते की प्रबल भुजाओं में वह शक्ति है कि उसकी तलवार का पहला वार ही ख़ून के रिश्तों और सांसारिक प्रलोभनों की ज़ंजीरों को टुकड़े-टुकड़े कर देता है।* आप प्रसिद्ध सूफ़ी अत्तार के उद्धरण से कहते हैं कि काफ़िर (ग़ैर मुस्लिम) को कुफ़्र और मोमिन (मुसलमान) को दीन मुबारिक हो, आशिक़ (प्रेमी) को केवल प्रेम के दर्द की एक रत्ती ही काफ़ी है:

* *रुबाईयात-ए-सरमद*, जहाँगीर बुक डिपो, खारी बावली, दिल्ली।

कुफ़र काफ़र रा व दीन दींदार रा,
ज़र्रा-ए दरदे दिल अत्तार रा।

कामिल पीरों, फ़क़ीरों, सन्तों-महात्माओं ने मनुष्य-जीवन का यह मौलिक भेद खोला है कि संसार और इसकी वस्तुओं व पदार्थों का प्यार मनुष्य को संसार और आवागमन के चक्र से बाँधता है पर परमात्मा और उसके नाम का प्यार उसको इन बन्धनों से छुड़ाकर परमात्मा से मिलाता है।*

मनुष्य सांसारिक वस्तुओं व पदार्थों का शिकार है। सन्तान, धन, पद, सत्ता आदि हर प्रकार की सांसारिक तृष्णा का छोटा-सा बीज एक बड़े वृक्ष को जन्म देता है। हर तृष्णा को पूरा होने के लिए दु:खों और मुसीबतों के लम्बे संघर्ष में से होकर गुज़रना पड़ता है। अधूरी रह गयी इच्छा अनेक क्लेशों और चिन्ताओं के कुएँ में धक्का देती है और पूरी हुई इच्छा अनेक प्रकार के बन्धनों और ज़िम्मेदारियों को जन्म देती है। हर तृष्णा में से अन्य अनेक तृष्णाएँ अंकुरित होती हैं जो मनुष्य को बुरी तरह संसार से बाँध देती हैं। परिणाम यह होता है कि मनुष्य के मन में सदा ऐसे विकराल ज्वार-भाटे उठते रहते हैं कि उसको पल भर के लिए भी सच्ची शान्ति नहीं मिलती। परन्तु जब इनायत शाह जैसे किसी कामिल मुर्शिद की संगति द्वारा मनुष्य को जगत् की असलियत का ज्ञान हो जाता है और उसके अन्दर निज-घर वापस पहुँचने की तड़प पैदा हो जाती है तो उसके प्रेम और यत्न की दिशा बदल जाती है।

साईं बुल्लेशाह की वाणी उस प्रेमी हृदय की वेदना प्रकट करती है जिसके अन्दर प्रियतम के मिलाप की तड़प की चिनगारी सुलग चुकी है।

* गुरु नानक देव ने फ़रमाया है कि परमात्मा के प्रेम के बिना सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पा सकना असम्भव है:

मन रे किउ छूटहि बिनु पिआर॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 60)

सन्त नामदेव जी कहते हैं:

नामे प्रीति नाराइण लागी॥ सहज सुभाइ भइओ बैरागी॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1164)

आप संकेत करते हैं कि आत्मा की परमात्मा से प्रीति कोई नयी बात नहीं है। यह आदि काल की खुली प्रेम-कथा है जिसे हरएक जानता है। जैसे ही जीव के अन्दर परमात्मा के मिलाप की सोयी हुई प्रीति जाग उठती है, उसके लिए वियोग की अग्नि को सहन कर पाना कठिन हो जाता है।* वियोग की आग तन को तपाती है, जिगर को बेधती है और तपते कड़ाहे में डालकर तलती है। एक अनोखा दर्द कलेजे में उठता है। विरह की लपटें दिन-प्रतिदिन ऊँची होती जाती हैं:

1. इक रांझा मैनूं लोड़ीदा।
   कुन फ़यकूनों अग्गे दीआं लगीआं, नेहों न लगड़ा चोरी दा।†
2. नी मैनूं लगड़ा इश्क़ अवल्लड़ा रोज़ अज़ल दा।
   विच कड़ाई तल तल पावे तलयां नूं चा तलदा।
   मोयां नूं एह वल वल मारे, वलयां नूं चा वलदा।
   क्या जाणा कोई चिणग कखीं ए, नित्त सूल कलेजे सलदा।
   तीर जिगर विच लग्गा इश्क़ों, हलायां भी नहीं हलदा।
   बुल्ला शाह दा नेहों अनोखा, नहीं रलायां रलदा।

साईं जी की काफ़ियाँ 'बहुड़ीं वे तबीबा मैंडी जिंद गईआ', 'तुसी करो असाडी कारी', 'अब लगन लग्गी किह करीए', 'मित्तर प्यारे कारन नी', 'मैनूं छड गए आप लद गए', 'मैनूं दरद अवलड़े दी पीड़' आदि इस विरह की तड़प का सुन्दर वर्णन करती हैं।

कई अन्य सूफ़ी दरवेशों ने भी इस वियोग की पीड़ा के करुणामय गीत गाये हैं। मौलाना रूम अपनी *मसनवी* को आत्मा के वियोग के दर्द और पुकार से ही शुरू करते हैं। आत्मारूपी बाँसुरी कहती है कि मैं अपने वियोग

---

* साईं बुल्लेशाह ने सतगुरु के वियोग को परमात्मा के वियोग वाले रंग में ही प्रकट किया है। सतगुरु के वियोग का वर्णन बुल्लेशाह के जीवन वाले भाग में देखिये।

† 'कुन फ़यीकून' *क़ुरान शरीफ़* की आयत है, जिसमें परमात्मा द्वारा सृष्टि की रचना का हुक्म किये जाने की ओर संकेत है। **कुन**=हो जा; **फ़यीकून**=हो गया। साईं जी संकेत कर रहे हैं कि जब से आत्मा परमात्मा के हुक्म से संसार में आयी है, इसके अन्दर वियोग की तड़प पैदा हो चुकी है।

की शिकायत की कहानी वर्णन कर रही हूँ। जब से मैं वन (अपने मूल) से बिछुड़ी हूँ, मैं परेशान हूँ। जिस किसी को भी उसके मूल से अलग किया जाता है, उसमें अपने मूल से दोबारा मिलाप करने की तड़प पैदा हो जाती है।

बाबा फ़रीद ने विरह की तड़प को 'सुलतानी अहिसास' का दर्जा दिया है। आप कहते हैं कि विरह उत्तम और शुभ भावना है। विरह-विहीन प्राणी, जीवित शव के समान है। विरह प्रेम की निशानी है। यह प्रेम को प्रकट भी करती है और प्रेम को पक्का भी करती है। जिसके हृदय में वियोग का दर्द नहीं, वह मिलाप के लिए क्या यत्न करेगा:

बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतानु॥
फरीदा जितु तनि बिरहु न ऊपजै सो तनु जाणु मसानु॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1379)

सच्चा प्रेमी अपने प्रियतम का पल भर का वियोग भी सहन नहीं करता। वह बार-बार उसे अपनी ओर मुख मोड़ने के लिए विनती करता है और प्रियतम को हृदय से लगाने के लिए मछली की भाँति तड़पता है:

1. दिल लोचे माही यार नूं।
2. सानूं आ मिल यार प्यारया।
3. साडे वल्ल मुखड़ा मोड़ वे प्यारया, साडे वल्ल मुखड़ा मोड़।
4. आपणे संग रलाईं प्यारे, आपणे संग रलाईं।

साजन की ओर से की गयी पल भर की देरी असह्य हो जाती है। जैसे तैसे मिलाप होना ही चाहिये, चाहे उसके लिए जान ही क्यों न क़ुर्बान करनी पड़े:

1. अब क्यों साजन चिर लायो रे।
2. आ सज्जण गल लग असाडे केहा झेड़ा लायो ई।

3. तुम सुणो हमारे बैना, मोहे रात दिने नहीं चैना।
   हुण पी बिन पलक न सरिए।
   अब लगन लग्गी किह करीए।

साईं बुल्लेशाह की वाणी में केवल विरह के दर्द-भरे वर्णन ही नहीं हैं, मिलाप के सुहावने पलों का भी सुन्दर वर्णन है। इस प्रकार की सबसे सुन्दर काफ़ी 'घड़याली देओ निकाल नी, अज्ज पी घर आया लाल नी' है। प्रेमिका चाहती है कि अब जब कि प्रियतम घर आ गया है, समय रुक जाये तथा वियोग की सब सम्भावनाएँ समाप्त हो जायें ताकि प्यारे के मिलाप और उससे प्राप्त हुए अलौकिक आनन्द का कभी अन्त न हो।

साईं बुल्लेशाह में परमात्मा के प्रेम का भाव इतना प्रबल है कि आपने दयालु प्रभु को सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञाता, सर्वव्यापक, हाकिम, राज़िक, ख़ालिक़ आदि दिखाने पर कम और प्यारा प्रियतम या दिलबर जानी दिखाने पर अधिक बल दिया है। आप कहते हैं, इश्क़ अल्ला की ज़ात है।* इसलिए आपने स्वयं को प्रेमिका और परमात्मा को प्रितयम के तौर पर वर्णन किया है। साईं जी के लिए वह परमात्मा सज्जन या साजन, माही या साईं, शहु (पति) या शाह, राँझा या राँझण, होत या पुन्नू और कृष्ण या कान्ह है। साईं जी उस महबूबे हक़ीक़ी को लैला, महिवाल, ढोला, प्रीतम, जानी, दिलबर यार और सुन्दर यार आदि कहकर पुकारते हैं। आपकी महबूब से ऐसी आश्चर्यजनक निकटता है कि आप उसको 'तू-तू' कहकर पुकारते हैं और उसको छलिया, जादूगर, भेखी, चोर और ठग भी कह देते हैं। आपने अपने प्यारे के साथ कई प्रकार के कलोल किये हैं। आपके वर्णन में लाड़-प्यार है, प्रेम है, मान और गर्व है, एक यक़ीन और भरोसा है। आप अपनी बेपरवाही और मस्ती में प्रियतम से पूछते हैं, 'कुझ असीं वी तैनूं पिआरे

---

* दादू साहिब ने भी फ़रमाया है कि परमात्मा की ज़ात इश्क़ है और उसका वजूद भी इश्क़ है:

इसक अलह की जात है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग॥

(*दादू दयाल की बानी*, भाग 1, विरह 152)

हां, कि महीयों घोल घुमाई हां?'* इस प्रेममय अन्दाज़ में ही आप कह उठते हैं:

1. इक रांझा मैनूं लोड़ीदा।
2. सस्सी दा दिल लुट्टण कारन होत पुन्नूं बण आया।
3. टुक बूझ कौण छप आया ए,
   किसे भेखी भेख वटाया ए।
4. मेरी बुक्कल दे विच चोर नी, कीहनूं कूक सुणावां नी।
5. लुकण छपण ते छल जापण, एह तेरी वडयाई।

कुल-मालिक माया के परदे के पीछे छिपा प्रकाश का पुंज है पर साईं बुल्लेशाह के लिए वह ऐसा महबूब है, जिसने आशिक़ को तड़पाने के लिए अपने प्रकाश को घूँघट के पीछे छिपा लिया है:

उस दा मुख इक जोत है, घुंघट है संसार।
घुंघट में वह छिप गया, मुख पर आंचल डार।

साईं बुल्लेशाह के लिए आसमान में चमकते तारे प्यारे प्रियतम के जादू का कमाल है। मायावी संसार भी उस जादूगर प्रियतम के जादू का ही चमत्कार है जो रस्सी के सर्प होने का भ्रम पैदा करता है:

वे तैं कैसे चोज रचाए, तारे खारी हेठ लुकाए।
मुंज दी रस्सी नाग बणाए, तेरे सेहरां तों बलहारी।†

---

* एक सूफ़ी फ़क़ीर ने फ़रमाया है कि इश्क़ पहले माशूक़ (प्रेमिका) के दिल में पैदा होता है, 'इश्क़ अव्वलदर दिले माशूक पैदा में शवद।' हज़रत बू अली क़लन्दर फ़रमाते हैं कि यदि तुझे उसके प्यार की ख़बर हो जाये तो तुझे पता लग जायेगा कि वह तुझसे कितना अधिक प्यार करता है:

गर तुरा अज़ इश्क ओ बाशद खबर,
अज़ तू मुश्ताक असत ओ मुश्ताकतर।

† **सेहरां**=जादू।

उस परमात्मा को रूप, रंग, वर्ण और जाति से न्यारा कहा गया है परन्तु साईं जी उस परमेश्वर की इस विशेषता का भी ऐसे प्रेममय नख़रे से वर्णन करते हैं कि वह निराकार प्रभु भी निकट रहता हुआ सज्जन या प्रियतम ही प्रतीत होने लगता है:

वाह वाह रमज़ सज्जन दी होर, आशिक बिना न समझे कोर।*
बुल्ला शौह नूं कोई न वेखे, जो वेखे सो किसे न लेखे।
उसदा रंग न रूप न रेखे, ओह ई होवे हो के चोर।†

वह मालिक सर्वशक्तिमान् है और उसकी रज़ा या भाणा भी सर्वसमर्थ है। परन्तु साईं जी के लिए कुल-मालिक वह अलबेला महबूब है जो न किसी से पूछता है और न किसी की मानता है। वह मनमानी करनेवाला सुन्दर शहु है। उसकी चतुराई यह है कि परदे के पीछे बैठकर रम्ज़ें करता है और तारें हिलाता है, सामने आकर बात करना पसन्द नहीं करता:

सलाह ना मंनदा बात न पुछदा आख वेखां की करदा।
कल मैं कमली ते ओह कमला हुण क्यों मैथों डरदा।‡
ओहले बैह के रमज़ चलाई दिल नूं चोट लगाई।
जिंद कुड़िकी दे मुँह आई।

'वत्त न करसां माण रंझेटे यार दा वे अड़या' में साईं जी यह विचार प्रकट करते हैं कि मनमरज़ी करनेवाले दिलबर की रम्ज़ों को समझ पाना असम्भव है। वह अवगुणहारों से प्यार कर रहा है परन्तु गुणवन्तियों को तड़पा रहा है। कोई नहीं कह सकता कि ऐसा क्यों? अपनी लीला वह स्वयं ही जानता है:

हिक करदियां ख़ुदी हंकार ओहनां नूं तारनै एं वे अड़या।
इक पिच्छे फिरन खुआर सड़ीआ नूं साड़नैं एं वे अड़या।

* **कोर**=अन्धा।
† **उसदा...रेखे**=वह निराकार है।
‡ **कमली**=प्रेमिका; **कमला**=प्रेमी।

चिक्कड़ भरीआं दे नाल नित घत्तना एं वे अड़या।
लाया मैं हार शिंगार मैत्थों उठ नसना एं वे अड़या।
वत्त ना करसां माण रंझेटे यार दा वे अड़या।

गुरु नानक साहिब ने भी कहा है कि वह प्रभु अपनी रज़ा का मालिक है और जो चाहे, सो कर सकता है:

पुछि न साजे पुछि न ढाहे पुछि न देवै लेइ॥
आपणी कुदरति आपे जाणै आपे करणु करेइ॥
सभना वेखै नदरि करि जै भावै तै देइ॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 53)

कामिल फ़क़ीरों ने संकेत किया है कि जब दयालु प्रभु ने सृष्टि की रचना की तो कई आत्माएँ परमात्मा को छोड़कर रचना में आने के लिए तैयार नहीं थीं। परन्तु परमात्मा ने उनको यह कहकर संसार में भेज दिया कि मैं तुम्हें वापस लाने के लिए स्वयं संसार में आऊँगा। साईं बुल्लेशाह यह सूक्ष्म रहस्य भी अति प्रेममय ढंग से प्रकट करते हैं। आप परमात्मा से शिकायत करते हैं – सर्वशक्तिमान् परमात्मा से नहीं अपने महबूब परमात्मा से – कि तूने हमें 'लारा लगा कर' संसार में भेज दिया, पर बाद में अपने ऊपर परदा डालकर हमें भ्रमों में भरमा दिया और ऐसे भवसागर में धक्का दे दिया जिसमें से बाहर निकल पाना हमारे वश का रोग नहीं है:

मैं गल्ल ओथे दी करदा हां, पर गल्ल करदा वी डरदा हां।
नाल रूहां दे लारा लाया, तुसीं चलो मैं नाले आया।
एथे परदा चा बणाया, मैं भरम भुलाया फिरदा हां।

बुल्लेशाह बेअंत डूंघाई, दो जग बीच न लगदी काई।
उरार पार दी ख़बर न काई, मैं बे सिर पैंरीं तरदा हां।
मैं गल्ल ओथे दी करदा हां, पर गल्ल करदा वी डरदा हां।

पूर्ण सन्तों ने परमात्मा के निराकार से साकार रूप धारण करने और पूर्ण अद्वैत में से अनन्त अनेकता में प्रकट होने के बड़े शक्तिशाली वर्णन किये

हैं। साईं जी यह सैद्धान्तिक वर्णन भी अपने मन-पसंद प्रेममय रंग में ही करते हैं। आप दयालु प्रभु को 'सोहणा यार' और उसकी सृजन की हुई रचना को उसके 'हुसन दा गरम बज़ार' कहकर सराहते हैं। आप पूर्ण अद्वैत में से अनन्त अनेकता के उत्पन्न होने की अवस्था को प्रकट करते हुए कहते हैं:

हुण मैं लखया सोहणा यार, जिस दे हुसन दा गरम बज़ार।
जद अहद इक इकल्ला सी, न ज़ाहर कोई तजल्ला सी।*
ना रब्ब रसूल न अल्ला सी, ना जब्बार ते ना कहार।†
हुण मैं लखया सोहणा यार।

इस पूर्ण एकता में वह प्यारा रंग-रूप से परे था। वह अनुपम और अनोखा था, अपने जैसा आप था। कोई दूसरा नहीं था जिससे उसकी तुलना की जा सके। फिर स्वयं हज़ारों रंगों में प्रकट हो गया:

बेचून व बेचूगूना सी, बेशबीया बेनमूना सी।
न कोई रंग न नमूना सी, हुण गूनां-गूं हज़ार।‡
हुण मैं लखया सोहणा यार।

अनेकता की अवस्था में वह एक सुन्दर दिलदार स्वयं ही अनेक प्रकार की पोशाकें पहनकर सामने आ गया। वह कहीं आदम बन गया, कहीं पैग़म्बर और कहीं मुर्शिद। उस प्यारे ने अपने हुक्म से रचना के अनन्त विस्तार का सृजन किया:

प्यारा पहन पोशाकां आया, आदम अपना नाम धराया।
अहद तों बण अहमद आया, नबीयां दा सरदार।§

* **अहद**=निराकार परमेश्वर; **तजल्ला**=प्रकाश, भाव रचना करनेवाली शक्ति निराकार प्रभु में ही समायी हुई थी।
† **जब्बार**=सर्वशक्तिमान्; **कहार**=सर्वशक्तिमान्।
‡ **हुण...हज़ार**=अनेक रंग-रूप धारण करके प्रकट हो गया।
§ **अहद...आया**=परमात्मा से सतगुरु बन गया।

कुन किहा फ़यीकून कहाया, बेचूनी से चून बणाया।*
अहद दे विच मीम रलाया, तां कीता ऐड पसार।†
हुण मैं लखया सोहणा यार।

आपने अपनी काफ़ी 'रौह रौह वे इश्क़ा मारया ई' में अपने प्रियतम के विचित्र व्यवहार का बहुत रहस्यमय ढंग से वर्णन किया है। ईसा, राम, मूसा और कृष्ण में अपना प्रकाश रखनेवाला भी वह प्रियतम है। ज़करीया, सरमद, शम्स तब्रेज़ और शाह शरफ़ आदि के अन्दर इश्क़े-हक़ीक़ी के लिए कई प्रकार की यातनाएँ सहन करने की शक्ति पैदा करनेवाला भी वही प्यारा है। यूसुफ़-ज़ुलैख़ा, लैला-मजनूँ, सस्सी-पुन्नू, हीर-राँझा, मिर्ज़ा-साहिबां आदि में प्रेम की लौ जलानेवाला भी वही है। शैतान, नमरूद, फरऔन, हिरण्यकश्यप, रावण और कौरवों आदि में ख़ुदी या अहंकार पैदा करके उनका नाश करनेवाला भी वह प्रियतम प्यारा प्रभु ही है। संसार में जो कुछ हो रहा है, उस प्यारे प्रभु का रंग-बिरंगा नाटक है। आप 'कीहनूं ला-मकानी दसदे हो, तुसी हर रंग दे विच वसदे हो'‡ काफ़ी में भी संसार को प्यारे प्रियतम के प्रेम का खेल कहते हैं:

कुनफ़यीकून तैं आप कहाया, तैं बाझों होर केहड़ा आया।
इश्कों सभ ज़हूर बणाया, आशिक़ हो के वसदे हो।
किहनूं ला-मकानी दसदे हो।

साईं जी कहते हैं कि मेरा प्रियतम सबसे ऊँची और सबसे बड़ी सरकार है। देवी-देवता, पीर-पैग़म्बर आदि सब उस प्रियतम को दण्डवत् करते हैं

* **कुन...कहाया**=परमात्मा ने कहा, 'हो जा' तो हो गया। संकेत हुक्म, कलमे या शब्द द्वारा सृष्टि के सृजन की ओर है; **बेचूनी...बणाया**=मायारहित अवस्था से मायावी जगत् बनाया।
† पूर्ण एकता से संसार का अनेकता वाला प्रसार किया।
‡ 'भरवासा की अशनाई दा' काफ़ी में आपने यही विचार प्रकट करने का प्रयत्न किया है। मिर्ज़ा ग़ालिब ने भी फ़रमाया है कि जिस तरह मजनूँ की हर अदा लैला की आँख के इशारे से जन्म लेती थी, उसी तरह सृष्टि का कण-कण उस प्यारे प्रियतम के इशारे पर नाच रहा है:

ज़र्रा ज़र्रा सागरे मैख़ानाए नैरंग है,
गरदशे मजनूं बचशमक हाए लैला आश्ना।

परन्तु वह मेरा दिलजानी है। उसको रिझाने के लिए मुझे मस्जिद, मन्दिर आदि में जाने की, व्रत या रोज़े रखने की और वुज़ू करने या नमाज़ पढ़ने की आवश्यकता नहीं। मेरे मुर्शिद ने मुझे यह गूढ़ भेद समझा दिया है कि वह दिलजानी प्राण न्योछावर करने पर ख़ुश होता है, इसलिए मैं उसे रिझाने के लिए, उस पर जान न्योछावर करने के लिए तैयार हो गया हूँ:

तजूं मसीत, तजूं बुतख़ाना, बरती रहां न रोज़ा जाणा।
भुल गया वुज़ू नमाज़ दुगाना, तैं पर जान करां बलहार।
पीर पैग़म्बर इसदे बरदे, इनस मलायक सजदे करदे।*
सर कदमां दे उत्ते धरदे, सब तों वड्डी ओह सरकार।
जो कोई उस नूं लखया चाहे, बाझ वसीले लखया न जाए।
शाह इनाइत भेत बताए, तां खुल्ले सभ इसरार।†
हुण मैं लखया सोहणा यार, जिस दे हुसन दा गरम बज़ार।

परमात्मा का प्रेमी भक्त स्वयं को छोटा और उस सच्चे प्रियतम को बड़े से बड़ा समझता है जिससे उसके अन्दर सच्ची नम्रता पैदा हो जाती है जो कामिल फ़क़ीरों का सबसे बड़ा आभूषण है। साईं जी एक सच्चे प्रेमी की भाँति अपने विषय में नम्रतापूर्वक शब्दों का प्रयोग करते हैं:

1. इन्हां सभनां थीं ए, बुल्ला औगुणहार पुराणा।
2. मैं चूहड़ेटड़ी आं सच्चे साहिब दी सरकारों।
   पैरों नंगी सिरों झंडोली सुनेहा आया पारों।

आप कहते हैं कि नेक और भजन-सिमरन करनेवाले मेरे सब साथी पार हो गये हैं परन्तु मेरे पल्ले कोई गुण या अच्छाई नहीं है। मुझे केवल अपने प्रियतम पर विश्वास है, 'अमला वालीआं लंघ लंघ गईआं, साडीआं लाजां साईं नूं।' यदि वह प्रियतम मेरे कर्मों की ओर देखे तो मेरा कोई ठिकाना नहीं, मेरा एकमात्र सहारा उसकी दया-मेहर है:

* **बरदे**=दास; **इनस**=इनसान; **मलायक**=मलक का बहुवचन। इसका अर्थ है फ़रिश्ते।

† **इसरार**=भेद।

1. अदल करें तां जा नहीं काई फ़ज़लों बुखरा पावां।
2. तुध बाझों मेरा होर न कोई कैं वल करूं पुकारों।
   बुल्ला शौह इनायत करके बुखरा मिले दीदारों।

सूफ़ी मत प्रेम और भक्ति का मार्ग है, यह परमात्मा या सतगुरु के प्रेम के आधार पर खड़ा है। मंसूर कहता है कि अल्लाह की रूह इश्क़ है। परमात्मा ने आदम में अपने सब गुण पैदा किये ताकि वह उसके द्वारा स्वयं को प्यार कर सके।* परमात्मा या सतगुरु का प्रेम सूफ़ी के ख़याल को हर ओर से हटाकर अपनी ओर मोड़ लेता है। शेख़ अबू सैयद (जन्म 967) कहते हैं कि सूफ़ी मत एक ओर देखना और एक ही ओर जीना सिखाता है। होना तो यह चाहिये कि सूफ़ी ख़ुदा में इतना खो जाये कि उसके लिए परमात्मा के अतिरिक्त कोई दूसरा अस्तित्व ही न रहे। सच्चा सूफ़ी पूरी तरह परमात्मा की रज़ा और भाणे में आ जाता है और अपनी आत्मा को परमात्मा के अतिरिक्त हर वस्तु से बचाकर रखता है।†

मौलाना शिबली कहते हैं कि मैं काबा को आग लगाना चाहता हूँ ताकि लोग भविष्य में काबा के स्थान पर काबा के मालिक उस दयालु प्रभु की ओर ही ध्यान रखें। आप नरकों और स्वर्गों को जलाना चाहते थे ताकि लोगों का ध्यान इधर से हटकर केवल परमात्मा की ओर हो जाये।‡ राबिया बसरी चाहती थीं कि नरक और स्वर्ग जलकर राख हो जायें ताकि लोग स्वर्गों के लालच या नरकों के डर के स्थान पर केवल परमात्मा के लिए ही परमात्मा को प्यार करें। वह कहा करती थीं, "हे ख़ुदा, यदि मैंने तुझे स्वर्गों के लालच के कारण प्यार किया है तो मुझे इनसे दूर रखना। यदि मैंने तुझे नरकों के भय के कारण चाहा है तो मुझे नरकों की आग में जलाना। परन्तु यदि मैंने तुझे तेरे लिए प्यार किया है तो मुझे अपने प्रकाश से वंचित न रखना।"

* R.A. Nicholson, *Studies in Islamic Mysticism*, Cambridge, 1976, p. 80

† *A History of Sufism in India*, Vol I, p. 49-50

‡ *A History of Sufism in India*, Vol I, p. 59-60

फ़क़ीरों को काबा या स्वर्ग-नरक क्या जलाने हैं, यह तो उनका बात समझाने का नाटकीय ढंग है। परन्तु क्या यह आश्चर्यजनक बात नहीं कि बाहरी पूजा-स्थलों की बात तो क्या करें - शरीर को सच्चा काबा माननेवाले लोग भी इस नश्वर देह के प्रेम में इस प्रकार खोये हुए हैं कि उनका इसके अन्दर बैठे दयालु प्रभु के प्रेम की ओर ध्यान ही नहीं जाता। सूफ़ी दरवेश अबुल मजद मज़दूद सनाही (मृत्यु 1030-31) कहते हैं, "हे ख़ुदा, मैं तेरा प्यार और केवल तेरा प्यार माँगता हूँ। यदि मेरे भाग्य में दुनिया की दौलत नहीं है तो न सही क्योंकि दुनिया और परमात्मा का प्रेम इकट्ठे नहीं चल सकते।"*

कामिल फ़क़ीरों ने आत्मा और परमात्मा के प्रेम को प्रकट करने के लिए दो प्रकार के चिह्न या अलंकार चुने हैं जिनके लिए विशेष ध्यान की आवश्यकता है। पहले प्रकार के चिह्न प्रकृति में से चुने गये हैं। कमल और सूर्य, कमल और जल, चाँद और सागर, धरती और जल, चकवी और सूर्य, चाँद और चकोर, पपीहा और वर्षा, पतंगा और ज्योति, भँवरा और फूल, मछली और सागर आदि के द्वारा इस प्रीति को दिखाने की कोशिश की है। इन चिह्नों से पता चलता है कि यह प्रीति जितनी स्वाभाविक है, उतनी ही प्रबल भी है। इन सब रिश्तों में प्रीति न कर पाना प्रीति करनेवाले के वश से बाहर की बात है।

दूसरे ऐसे चिह्न हैं जो मानवीय सम्बन्धों, जैसे पिता-पुत्र, माँ-बेटा, सेवक-स्वामी, पति-पत्नी और प्रेमी-प्रेमिका के प्यार पर आधारित हैं। इनमें सबसे अधिक प्रयोग पति-पत्नी के चिह्नों का हुआ है। इस प्रीति में यह भाव छिपा हुआ है कि मायके का व्यवहार ससुराल के आचार-व्यवहार से बिलकुल भिन्न है। ससुराल में सबको पसन्द आने के लिए मायके का मोह त्यागना पड़ता है और दूसरी हर प्रकार की प्रीति को अपने पति या कन्त की प्रीति में बदलना पड़ता है। स्त्री जितनी अधिक पति के प्रेम में लीन होती है, उतनी अधिक वह दूसरे हर प्रकार के मोह के बन्धनों से आज़ाद होती जाती है। यही काम आत्मा का परमात्मा के प्रति सच्चा प्यार करता है। सन्त

* *A History of Sufism in India*, Vol I, p.79

नामदेव जी फ़रमाते हैं कि परमात्मा के प्यार में जीव को संसार के मोह से छुड़ाने की स्वाभाविक शक्ति है, 'नामे प्रीति नाराइण लागी॥ सहज सुभाइ भइओ बैरागी॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1164) यही कारण है कि कामिल फ़क़ीरों ने हठ-मार्ग, कर्म-मार्ग या ज्ञान-मार्ग के स्थान पर प्रेम-मार्ग को ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र सच्चा साधन माना है।

सब गुणों और विशेषताओं की खान परमात्मा का सच्चा और निर्मल प्रेम है। प्रभु के प्रेम की जड़ के बिना नेकी और सदाचार के पेड़ में कभी भी सुन्दर, सुहावने, मीठे और प्यारे फल-फूल नहीं लग सकते। प्रेम की कमी किसी दूसरी वस्तु से पूरी नहीं हो सकती। जीवन की हर कमी की औषधि प्रेम है परन्तु प्रेम की कमी की दवाई प्रेम के सिवाय और कुछ नहीं।

प्रेम से उत्पन्न करनी में प्राण होते हैं, रस होता है, आनन्द और प्रसन्नता होती है। प्रेम-विहीन और बुद्धि-प्रधान कार्यों में न कोई गुण होता है और न उपकार। प्रेममय कार्य ही सही अर्थों में गुणकारी होता है।*

प्रो. पूर्णसिंह कहते हैं कि प्रभु-प्रेम के बिना कला और धर्म दोनों का जन्म लेना असम्भव है। जब प्रभु-प्रेम हमारा साथ छोड़ जाता है तो धर्म, सदाचार, दान-पुण्य, लोक-सेवा, गिरजाघरों, मन्दिरों, मस्जिदों, अस्पतालों और अनाथालयों का रूप धारण कर लेता है। सच्चे प्रेम को इस प्रकार की बैसाखियों के सहारे चलने की आवश्यकता नहीं होती। नस्लों और क़ौमों के बनने के दर्शन उस समय ही होते हैं जब आन्तरिक प्रेम के स्रोत सूख जाते हैं।...रोगी और निर्बल आत्मा को ही जीवित होने का स्वाँग करने के लिए सिद्धान्तों और दर्शन शास्त्रों के सहारे की ज़रूरत होती है। जब अन्दर प्रेम की साँस चल रही हो तो तत्त्व-ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं। जब तक हृदय में दैवी प्रेम की लौ नहीं जलती, सब नियम या सिद्धान्त ताप हैं, चेचक हैं, महामारी हैं।†

* बधा चटी जो भरे ना गुणु ना उपकारु॥
सेती खुसी सवारीऐ नानक कारजु सारु॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 787)

† *The Spirit of Oriental Poetry*, p.264-65

यही कारण है कि सन्तों-महात्माओं, गुरुओं-पीरों ने रूहानियत के पौधे को कर्म, हठ और ज्ञान के मरुस्थल में से निकालकर प्रेम की सुन्दर, सुहावनी, रमणीक और रसभरी घाटी में लाकर रोपा है। इसलिए सन्त नामदेव, बाबा फ़रीद, गुरु नानक देव आदि सन्तों, भक्तों, सूफ़ी फ़क़ीरों और गुरुओं ने आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों को पति-पत्नी, प्रियतम और प्रेयसी के सरस और सजीव सम्बन्ध के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इन सब पूर्ण पुरुषों की वाणी, उपदेश और करनी का धुरा प्रेम है। इन सबकी विचार-धारा का सार प्रेम है। ये महात्मा समझाते हैं कि प्रियतम के प्रेम और इस प्रेम से उत्पन्न स्वभाविक भय से सजी हुई आत्मा ही सच्ची सुहागिन है और वही प्रियतम से मिलाप कर सकती है:

भै कीआ देहि सलाईआ नैणी भाव का करि सीगारो॥
ता सोहागणि जाणीऐ लागी जा सहु धरे पिआरो॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 722)

सच्चा प्रेम प्रेमी को पूरी तरह महबूब पर आश्रित कर देता है। ऐसा प्रेम ही उसके अन्दर धैर्य, सब्र, सन्तोष, विश्वास, निष्ठा, श्रद्धा तथा भाणे का प्यार पैदा करता है क्योंकि प्रेमी सुख-दुःख को उस प्रियतम की दात समझकर ख़ुशी-ख़ुशी दिन व्यतीत करता है* और हर दशा में ध्यान अपने प्यारे के प्रेम में रखता है। वह इस सीमा तक प्रेम में लीन होता है कि सांसारिक उतार-चढ़ाव उसका ध्यान नहीं खींचते। 'एस नेहों दी उलटी चाल' काफ़ी में साईं बुल्लेशाह साबर, ज़करीया, यहिया और सुलेमान आदि के उदाहरण देकर बताते हैं कि सच्चा प्रेम, प्रेमियों के हृदय में हर प्रकार के त्याग और बलिदान तथा प्रियतम के लिए हर प्रकार की यातनाएँ सहन करने की अपार शक्ति पैदा करता है। यह प्रियतम की आँख का संकेत ही था जिसने मंसूर के लिए फाँसी की कड़वाहट को भी शहद का प्याला† बना दिया:

* केतिआ दूख भूख सद मार॥ एहि भि दाति तेरी दातार॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 5)

† 'क्यों इश्क असां ते आया ए' काफ़ी में भी आपने यही भाव प्रकट किया है।

आप इशारा अक्ख दा कीता, तां मधुआ मनसूर ने पीता।*
सूली चढ़ के दर्शन कीता, होया इश्क कमाल।
एस नेहों दी उलटी चाल।

जो कोई प्रियतम की खोज में निकलता है, वह हँस-हँसकर सिर न्योछावर कर देता है। वह अपने दिल के रक्त की मस्ती पीता है, अपने हाथ से अपना कफ़न सीता है और प्यारे के लिए प्रसन्नतापूर्वक पैर क़ब्र में रख देता है:

1. साजन की भाल सर दीआ, लहू मध अपना पीआ।
   कफ़न बाहों से सी लिया, लहद में पा उतारेगा।†
   बुल्ला शौह इश्क है तेरा, उसी ने जी लिया मेरा।
   मेरे घर-बार कर फेरा, वेखां सिर कौण वारेगा।
2. जे कोई इश्क़ विहाजया लोड़े,
   सिर देवे पहले साईं नूं, कदी आ मिल बिरहों सताई नूं।

द्वैत के परदे चीरकर अद्वैत में पहुँचानेवाली शक्ति प्रेम है। प्रेमी अहं को प्रियतम के प्रेम में इस प्रकार मार डालता है कि उसके रोम-रोम से पिया-पिया की पुकार निकलती है:

इश्क़ की तेग़ से मूई, नहीं वोह ज़ात की दुई।
और पिया पिया कर मूई, मोयां फिर रूह चितारेगा।‡

यह प्रेम उसके अन्दर क्षमा, नम्रता और सहनशीलता उत्पन्न करता है क्योंकि उसको प्यारे प्रियतम द्वारा सृजन की गयी सृष्टि भी प्यारी लगती है। यह प्रेम ही उसको ऊबड़-खाबड़ रास्ते तय करने और तलवार की धार पर चलने की शक्ति प्रदान करता है। यह प्रेम ही उसकी खोज को निरन्तर बनाता

* **मधुआ**=शहद का प्याला।

† **लहद**=क़ब्र।

‡ **चितारेगा**=तारेगा।

है और मार्ग की कठिन घाटियों को पार करते हुए मंज़िल तक पहुँचने की शक्ति प्रदान करता है। सच्चा प्रेम, प्रेमी को अपनी बल-बुद्धि, अक़्ल-चतुराई का त्याग करके पूरी तरह से प्रियतम की शरण में आने का ढंग सिखाता है। इन गुणों पर प्रसन्न होकर प्रियतम स्वयं ही अपने प्यारे को अपने साथ मिला लेता है। साईं बुल्लेशाह ने इसको 'आशिक ने हरि जीता' का नाम दिया है। सच्चा प्रेमी प्रियतम के ध्यान में इस प्रकार खो जाता है और वह अपने अहं और अलग अस्तित्व को इस प्रकार प्रियतम में मिटा देता है कि वह साक्षात् प्रियतम का ही रूप हो जाता है:

हुण मैनूं मजनू आखो न, दिन दिन लैला हुंदा जां।
डेरा यार बनाए तां, एह तन बंगला बणाया ए।

हमाओस्त*

हिन्दू नहीं, न मुसलमान

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि मेरा प्रियतम अपने सृजन किये हुए जगत् का साजन है। वह इसके कण-कण में समाया हुआ है और स्वयं ही अपनी लीला देखकर प्रसन्न हो रहा है। साईं जी के लिए आदम-हव्वा, नर-नारी, माया-ब्रह्म की द्वैत और तीनों गुणों, पाँचों तत्त्वों, अनेक देवी-देवताओं आदि का झमेला निरर्थक है। जो कुछ है, प्यारे से है, जो कुछ है, उसमें प्यारा समाया हुआ है और जो कुछ है, उस प्रियतम प्यारे का ही रूप है। इसको सूफ़ी दरवेशों ने 'हमाओस्त', 'हमा अज़ ओस्त' या 'वहदत-उल-वुजूद' का नाम दिया है। साईं बुल्लेशाह बहुत भावमय अदा में अपने प्रियतम से पूछते हैं:

परदा किसतों राखीदा, क्यों ओह्ले बह बह झाकीदा।
पहिलों आपे साजन साजे दा, हुण दसना ए सबक नमाज़े दा।
हुण आया आप नज़ारे नूं, विच लैला बण बण झाकीदा।
हुण साडे वल धाया ए, न रैह्न्दा छुपा छुपाया ए।
किते बुल्ला नाम धराया ए, विच ओहला रखनया ख़ाकी दा।

वह प्रियतम ऐसा 'सांगी' तथा 'चोज़ी' है जो अनेक पुतलियों में से होकर नाच रहा है। मनुष्य, हैवान, पशु-पक्षी सबमें उसका प्रकाश विद्यमान

* सूफ़ी विचार-धारा में प्रयोग होनेवाला यह एक फ़ारसी पद है जिसका अर्थ है कि जो कुछ है, वह सब ही प्रभु है।

है। हत्यारे और हताहत होनेवाले, स्वामी और सेवक, शाह और भिखारी, योगी और भोगी सबमें उसका प्रकाश उजागर है। पूर्ण सतगुरु की ही यह बड़ाई है जो अनन्त अनेकता को पूर्ण एकता के सूत्र में पिरोया हुआ देखने की युक्ति सिखाता है:

आपे आहू आपे चीता, आपे मारन धाया।*
आपे साहिब आपे बरदा, आपे मुल्ल विकाया।
ढोला आदमी बण आया।

कदी हाथी ते असवार होया, कदी ठूठा डांग भवाया।
कदी रावल जोगी भोगी हो के, सांगी सांग बणाया।
ढोला आदमी बण आया।

बाज़ीगर क्या बाज़ी खेली, मैनूं पुतली वांग नचाया।
मैं उस पड़ताली नचना हां, जिस गतमित यार लखाया।
ढोला आदमी बण आया।

इस विषय में आपकी काफ़ियाँ 'कीहनूं ला-मकानी दसदे हो', 'रौह रौह वे इश्क़ा मारया ई' और 'की करदा बेपरवाही' एक अनोखी मस्ती में रची गयी प्रतीत होती हैं। 'कीहनूं ला-मकानी दसदे हो' में कहते हैं:

कीहनूं ला-मकानी दसदे हो, तुसीं हर रंग दे विच वसदे हो।
आपे सुणें ते आप सुणावें, आपे गावें आप बजावें।

हत्थों कौल सरोद सुणावें, किते जाहल हो के नसदे हो।
तेरी वहदत तूएं पुचावें, अनलहक़ दी तार हिलावें।†

सूली ते मनसूर चढ़ावें, ओथे कोल खलो के हसदे हो।
किते रूमी ते किते जंगी हो, किते टोपी पोश फ़रंगी हो।

* आप ही मरनेवाला हिरन है और स्वयं ही मारनेवाला चीता है।

† **अनलहक़**=मंसूर ने 'अनलहक़' का नारा लगाया था जिसका अर्थ है कि मैं ही हक़ अर्थात् सत्य हूँ।

किते मै-ख़ाने विच भंगी हो, किते मेहर मैहरी बण वसदे हो।*
कीहनूं ला-मकानी दसदे हो।

आप ही मरनेवाला हिरन और स्वयं ही मारनेवाला चीता और 'सूली ते मनसूर चढ़ावे, ओथे कोल खलो के हसदे हो' के ये वर्णन कवि के केवल भावुक विचार ही नहीं हैं, यह कामिल फ़क़ीरों का जीवित रूहानी अनुभव है। जब जल्लाद हाथ में तलवार लेकर सरमद की हत्या करने के लिए आया तो अद्वैत की मस्ती में डूबा हुआ सरमद जल्लाद को कह उठा, मेरे प्यारे, मैं तुझ पर बलिहार जाता हूँ। आ जा, आ जा, कि तू जिस रूप में मरज़ी आये, मैं हर रूप में तुझे अच्छी तरह पहचान सकता हूँ, 'फ़िदाए तो शवम, बया बया कि तू हर सूरते कि मी आई, मने तुरा खूब मी शनासम।' रिज़वी प्रसिद्ध सूफ़ी नौशाह के उद्धरण से लिखता है कि तौहीद या वहदत-उल-वुजूद के अनुयायी दरवेश, अपने विरोधियों से भी प्यार करते थे† क्योंकि उनको हर शरीर में एक ही प्रकाश प्रज्वलित दिखायी देता था।

इतिहास के पन्ने अनेक प्रभु-भक्त और पूर्ण दरवेशों के बलिदान से भरे पड़े हैं जिन्होंने हत्या करनेवाले में अपने प्रियतम का प्रकाश देखते हुए हत्यारे को भी प्यार की आँखों से देखा। वे सच्चे प्रेमी थे जिनकी आँखों से द्वैत के कुफ़्र का परदा फट चुका था और वे पूरी तरह एकता में समा चुके थे। कबीर साहिब कहते हैं कि मालिक का सच्चा भक्त या दास वही है जो अनेकता के परदे के पीछे छिपी एकता के दर्शन करता है:

अवलि अलह नूरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे॥
एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे॥

लोगा भरमि न भूलहु भाई॥
खालिकु खलक खलक महि खालिकु पूरि रहिओ स्रब ठांई॥

माटी एक अनेक भांति करि साजी साजनहारै॥
ना कछु पोच माटी के भांडे ना कछु पोच कुंभारै॥

* **मेहर मैहरी**=स्त्री-पुरुष।

† *A History of Sufism in India*, Vol. II, p. 439

सभ महि सचा एको सोई तिस का कीआ सभु कछु होई॥
हुकमु पछानै सु एको जानै बंदा कहीऐ सोई॥
अलहु अलखु न जाई लखिआ गुरि गुड़ु दीना मीठा॥
कहि कबीर मेरी संका नासी सरब निरंजनु डीठा॥

(कबीर – आदि ग्रन्थ, पृ. 1349-50)

सन्त नामदेव जी ने इसको 'सभु गोबिंदु है सभु गोबिंदु है गोबिंद बिनु नही कोई'। और 'घट घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी' का नाम दिया है:

एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई॥
माइआ चित्र बचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई॥*
सभु गोबिंदु है सभु गोबिंदु है गोबिंद बिनु नही कोई॥
सूतु एकु मणि सत सहंस जैसे ओति पोति प्रभु सोई॥†
जल तरंग अरु फेन बुदबुदा जल ते भिंन न होई॥‡
. . . . . .
कहत नामदेउ हरि की रचना देखहु रिदै बीचारी॥
घट घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी॥

(नामदेव – आदि ग्रन्थ, पृ. 485)

गुरु नानक साहिब कहते हैं कि वह एक साहिब अनेक रंग धारण करके हर स्थान पर व्यापक है। वह परमात्मा स्वयं ही रसीला है, स्वयं ही रस है और स्वयं ही रस को माननेवाला है। स्त्री, शैय्या और कन्त भी वही है। मछेरा, मछली, जल और जाल भी वही है। सरोवर भी वह स्वयं है और हंस भी वह स्वयं है। दिन में खिलनेवाला कमल भी वही है, रात्रि में खिलनेवाली कुमुदिनी भी वही है और इनको देखकर प्रसन्न होनेवाला भी वह स्वयं ही है:

* **माइआ...बिमोहित**=माया की विभिन्न प्रकार की शक्लें बनाकर दिल को मोह लेता है।
† **सूतु...सहंस**=सात हज़ार मनके एक ही सूत (धागे) में पिरोये हुए हैं।
‡ लहरें, झाग और बुलबुले सब पानी का ही रूप हैं।

आपे रसीआ आपि रसु आपे रावणहारु॥
आपे होवै चोलड़ा आपे सेज भतारु॥*
रंगि रता मेरा साहिबु रवि रहिआ भरपूरि॥
आपे माछी मछुली आपे पाणी जालु॥
आपे जाल मणकड़ा आपे अंदरि लालु॥†
. . . . . .
नित रवै सोहागणी देखु हमारा हालु॥‡
प्रणवै नानकु बेनती तू सरवरु तू हंसु॥
कउलु तू है कवीआ तू है आपे वेखि विगसु॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 23)

पलटू साहिब ने सृष्टि की अनेकता में समायी हुई परमात्मा के प्रकाश की एकता का सुन्दर वर्णन किया है:

जगन्नाथ जगदीस, जग में ब्यापि रहा॥
चारि खानि में लख चौरासी, और न कोई दूजा।
आपुइ ठाकुर आपुइ सेवक, करत आपनी पूजा॥
आपुइ दाता आपुइ मँगता, आपुइ जोगी भोगी।
आपुइ बिस्वा आपुइ बिसनी, आपु बैद आप रोगी॥§
ब्रह्मा बिस्नु महेस आपुई, सुर नर मुनि होइ आया।
आपुहि ब्रह्म निरूपम गावै, आपुहि प्रेरत माया॥
आपुइ कारन आपुइ कारज, बिस्वरूप दरसाया।
पलटूदास दृष्टि तब आवै, संत करै जब दाया॥

(*पलटू साहिब की बानी*, भाग 3, शब्द 10)

* **चोलड़ा**=स्त्री।
† जाल को भारी करनेवाला मनका और मछली के पेट के अन्दर से निकलनेवाला लाल भी वही है।
‡ वह सुहागिनों के सदा अंग-संग है, परन्तु हम (दुहागिनें) उसके बिना विह्वल हैं।
§ **आपुइ...बिसनी**=वेश्या भी स्वयं हैं, भोगी भी स्वयं हैं।

साईं बुल्लेशाह 'सब इक्को रंग कपाहीं दा' काफ़ी में बताते हैं कि जैसे एक कपास भिन्न-भिन्न प्रकार के कपड़ों को और एक चाँदी विभिन्न प्रकार के आभूषणों को जन्म देती है उसी प्रकार सृष्टि के अनेक रूपों के पीछे एक ही सच्चाई काम कर रही है। एक स्थान पर आपने 'हरि जी आपे हर जा खेले' का भाव प्रकट किया है। 'पाया है कुछ पाया है' काफ़ी में बहुत ज़ोरदार ढंग से कहते हैं कि शिया और सुन्नी, जटाधारी और सिर मुंडे सबमें वह एक प्यारा समाया हुआ है:

पाया है कुछ पाया है, सतगुरु ने अलख लखाया है।*
कहूं वैर पड़ा कहूं बेली है, कहूं मजनूं है कहूं लेली है।
कहूं आप गुरु कहूं चेली है, सभ अपनी राह दिखाया है।
कहूं मसजद का वरतारा है, कहूं बणया ठाकुर द्वारा है।
कहूं बैरागी जप धारा है, कहूं शेखन बण बण आया है।
कहूं तुरक किताबां पढ़ते हो, कहूं भगत हिंदू जप करते हो।
कहूं घोर गुफा में पड़ते हो, हर घर घर लाड लडाया है।

यह अवस्था उन सच्चे प्रेमियों की है जो अहं को नष्ट करके दयालु प्रभु से मिलाप कर लेते हैं और अमली तौर पर उसका जलवा हर स्थान पर देखने लगते हैं:

बुल्ला शौह का मैं मुहताज होआ, महाराज मिले मेरा काज होआ।
दर्शन पिया दा मेरा इलाज होआ, आप आप में आप समाया है।
मेरे सतगुर अलख लखाया है।

आप 'दोहीं जहानी कोई न दिसदा ग़ैर' और 'बुल्ला साईं घट घट रवया' के प्रबल नारे लगाकर यह विचार दृढ़ कराना चाहते हैं कि जाति, धर्म और देश की बड़ाई का अहंकार अज्ञान की उपज है। रंग, नस्ल, वर्ण, आश्रम, स्त्री, पुरुष के अन्तर वे खड़े करते हैं जो सब जीवों में व्याप्त एक ही रूहानियत से जानकार नहीं हैं। कुछ लोगों का स्वयं को परमात्मा के

* अधिक जानकारी के लिए देखें: *क़ानूने-इश्क़*, पृ. 160

विशेष प्रतिनिधि समझना या किसी क़ौम, मज़हब या मुल्क का अपने आपको प्रभु की विशेष दया-मेहर का अधिकारी समझना, अज्ञान से भरा काम है। परमात्मा ने मनुष्य पैदा किया है, हमने अपने आपको क़ौमों, मज़हबों या मुल्कों में बाँटकर कई प्रकार के झगड़े खड़े कर लिये हैं। साईं जी यहाँ तक कहते हैं कि काफ़िर और मोमिन का अन्तर खड़ा करना ही सबसे बड़ा कुफ़्र (अधर्म) है क्योंकि द्वैत से बड़ा अधर्म कौन-सा हो सकता है? 'अलरूह मिन अमरे रब्बी' अर्थात् आत्मा परमात्मा की अंश है और परमात्मा का प्रेम ही आत्मा की सच्ची जाति या धर्म है। परमात्मा से मिलानेवाली वस्तु सच्चा प्रेम है, मज़हबों, मुल्कों, क़ौमों या जातियों का अहंकार नहीं:

1. ऐसा जगया ज्ञान पलीता।
   न हम हिंदू न तुरक ज़रूरी, नाम इश्क़ दी है मनजूरी।
   आशिक़ ने हर जीता।
2. हिंदू तुरक न हुंदे ऐसे, दो जनमे त्रै जनमे।
   हराम हलाल पछाता नाहीं, असीं दोहां ते नहीं भरमें।
   गुरु पीर की परख असानूं, सभनां तों सिर वारें।
3. मोमन काफ़र मैनूं दोवें न दिसदे, वहदत दे विच आ के।

सूफ़ी मत का मूल आधार ही यह है कि परमात्मा के सिवाय कोई दूसरा नहीं है। ख़्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं कि यह न कहो कि काबा बुतख़ाने (मन्दिर) से अच्छा है। जहाँ भी उस प्यारे का जलवा प्रकट है वही स्थान धन्य है।*

आप कहते हैं कि कोई तुर्की है या ताज़ी, इस बात की परवाह न कर, तू हर भाषा में उस एक प्यारे की प्रेम-कहानी सुना क्योंकि मस्जिद और मन्दिर के परदे के पीछे एक ही प्यारा प्रकाशवान है। आप पूछते हैं कि यदि दो पत्थरों का रंग अलग-अलग हो तो क्या उनमें से निकलनेवाली आग का रंग भी

* हरगिज़ मगो कि काअबा ज़ बुतख़ानाह बिहतर असत,
हर जा कि असत जलवहए जानानह ख़ुशतर असल।

अलग होगा? मन्दिर और मस्जिद दोनों एक ही प्रकाश से प्रकाशित हैं, फिर पता नहीं कुफ़्र और दीन का झगड़ा किस आधार पर किया जाता है?*

आप कहते हैं कि जिस दिन से मैंने धर्मों के आपसी झगड़े देखे हैं, मेरा न शेख़ से कोई सरोकार रहा है न ब्राह्मण से।†

कबीर साहिब ने भी फ़रमाया है कि परमात्मा के प्रेम और भक्ति की ही बड़ाई है, जाति-पाँति की नहीं:

जाति-पाँति पूछै न कोई।
हरि कहँ भजै सो हरि का होई।

(*कबीर ग्रन्थावली*, पृ. 293)

पलटू साहिब ने यही उपदेश किया है:

पलटू ऊँची जाति कौ जनि कोइ करै हंकार।
साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार॥

(*पलटू साहिब की बानी*, भाग 1, कुण्डली 218)

मौलाना रूम ने उस गडरिये की कहानी लिखी है जिसने कहा था, हे प्रभु! यदि तू मुझे मिल जाये तो मैं तुझे अपनी भेड़ों का दूध पिलाऊँगा और भेड़ों की ऊन का कम्बल पहनाऊँगा, आदि। मूसा ने उसे धमकाया कि परमात्मा को ऐसे नहीं कहा जाता। इससे उस बेचारे का दिल टूट गया। वह घबरा गया कि शायद उससे बहुत बड़ा पाप हो गया है। इस पर परमात्मा ने मूसा से कहा कि मैंने तुझे दिल जोड़ने के लिए भेजा था, दिल तोड़ने के लिए नहीं। मैंने हरएक प्राणी को अलग ढंग और रीति बख़्शी है जो

* यके असत तुरकी ओ ताज़ी दरीं मुआमलह हाफिज़,
हदीसे इशक बिआं कुन ब हर ज़बां कि तू दानी।
नेसत ग़ैर अज़ यक सनम दर परदा-ए दैर-ओ हरम,
कै शवद आतश दो रंग अज़ इखतलाफ़-ए संगहा।
अज़ यक चराग़ मसजिद-ओ बुतखानह रोशन अस्त,
दर हैरतम कि दुशमनीए कुफ़र-ओ दीं चरास्त।

† अज़ आ रोज़े किह दीदम इखतलाफ़े मज़हबो मिल्लत,
मरा बा शेख रबते नेसत नै बा ब्रहमन हम।

दूसरों को चाहे पसन्द न हो, उसके लिए उचित होती है। हिन्दुओं के लिए हिन्दुस्तानी ढंग धन्य है, सिन्धियों के लिए सिन्धी रीति। उनकी उपमा से मैं बड़ा या पूजनीय नहीं बनता, वे मेरी उपमा से बड़े या पूजनीय बनते हैं। मैं भाषा या उच्चारण नहीं देखता, आन्तरिक भाव और मन की दशा देखता हूँ।*

कामिल फ़क़ीरों एवं सन्तों-महात्माओं ने संसार में मनुष्य-मनुष्य के बीच भ्रातृ-भाव (Brotherhood of Mankind) पैदा करने के लिए परमात्मा के प्रति पितृ-भाव (Fatherhood of God) को आवश्यक बताया है। पितृ-भाव की बुनियाद के बिना भ्रातृ-भाव का महल कभी नहीं बन सकता। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

एकु पिता एकस के हम बारिक... ॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 611)

गुरु अमर दास जी कहते हैं कि जब सबकी रचना करनेवाला एक है और सबमें उस एक कर्ता का प्रकाश समाया हुआ है तो बुरा किसको कहा जा सकता है?

जीअ जंत सभि तिस दे सभना का सोई॥
मंदा किस नो आखीऐ जे दूजा होई॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 425)

हज़रत ईसा ने फ़रमाया है: सबसे पहला और बड़ा हुक्म यह है कि आप अपने पूरे तन, मन और प्राण से कुल-मालिक से प्रेम करो। दूसरा हुक्म जो पहले जैसा ही है, यह है कि आप अपने पड़ोसी को अपनी तरह प्यार करो। धर्म और सारे पैग़म्बर इन दो नियमों के सहारे ही खड़े हैं।† आप

* *A History of Sufism in India*, Vol I, p. 82-83

† Thou shalt love the Lord thy God with all thy heart, and with all thy soul, and with all thy mind. This is the first and great commandment And the second is like unto it. Thou shalt love thy neighbour as thyself. On these two commandments, hang all the law and the prophets.
(*Matthew* 22:37-40)

अपने विषय में कहते हैं कि मनुष्य का बेटा लोगों का जीवन नष्ट करने के लिए नहीं आया, बल्कि उनको बचाने के लिए आया है।* फिर फ़रमाते हैं कि मुझे दया पसन्द है, बलि नहीं।†

हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी अपने सत्संग में प्राय: फ़रमाते थे कि जब हम सबको एक ही परमात्मा ने पैदा किया है और वह एक ही परमात्मा हम सबके अन्दर बैठा है तो यदि कोई किसी दूसरे से नफ़रत करता है तो वह उस परमात्मा से नफ़रत करता है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि धर्मों, धर्म-स्थानों और अलग-अलग शरीअतों अथवा कर्मकाण्डों के झगड़े सच्चाई से अनभिज्ञ और स्वार्थी लोगों के पैदा किये हुए हैं। आप कहते हैं कि परमात्मा के सच्चे प्रेमी या भक्तों या प्यारों का 'सुल्हा कुल' अर्थात् सबसे प्यार का मार्ग होता है क्योंकि उनको सब धर्मों, क़ौमों और जातियों के लोगों में एक ही परमात्मा का नूर नज़र आता है:

1. किते रामदास किते फतह मुहम्मद, एहो कदीमी शोर।
   मुसलमान सड़ने तों डरदे, हिंदू डरदे गोर।
   मिट गया दीहां दा झगड़ा, निकल पेआ कुझ होर।
2. हिंदू नहीं न मुसलमान, बहिए त्रिंञण तज अभिमान।
   सुंनी ना नहीं हम शिया, सुल्हा कुल का मारग लीआ।
   बुल्ले शाह जो हरि चित लागे, हिंदू तुरक दूजन त्यागे।

इब्न अरबी *कुरान शरीफ़* (II, 115) के उद्धरण से कहते हैं कि पूर्व और पश्चिम सब दिशाओं में एक ही परमात्मा का नूर फैला हुआ है, इसलिए मोमिन या बुतपरस्त (मूर्ति-पूजक) का भेद अज्ञान की उपज है।‡

पलटू साहिब भी उपदेश करते हैं कि पूर्व-पश्चिम, हिन्दू-मुसलमान के झगड़े खड़े करना व्यर्थ है क्योंकि वास्तव में सबमें एक ही प्रभु समाया हुआ है:

* The son of man did not come to destroy men's lives, but to save them. (*Luke* 9:56)

† I will have mercy, and not sacrifice. (*Matthew* 9:13)

‡ *A History of Sufism in India*, Vol. II, p. 50

पूरब में राम है पच्छिम खुदाय है,
   उत्तर औ दक्खिन कहो कौन रहता।
साहिब वह कहाँ है कहाँ फिर नहीं है,
   हिन्दू और तुरुक तोफान करता॥
हिन्दू औ तुरुक मिलि परे हैं खैंचि में,
   आपनी बर्ग दोउ दीन बहता।
दास पलटू कहै साहिब सब में रहै,
   जुदा ना तनिक मैं साच कहता॥

(*पलटू साहिब की बानी*, भाग 2, रेखता 10)

गुरु गोबिन्द सिंह जी कहते हैं कि जिस प्रकार सब धर्मों, जातियों व मुल्कों के मनुष्यों के शरीरों की रचना उन ही पाँच तत्त्वों से हुई है और सबके हाथ, पैर, नाक, मुँह, आँखें आदि समान हैं, उसी प्रकार उनके अन्दर समाया हुआ प्रभु भी एक है। स्वरूप अनेक हैं परन्तु ज्योति एक है:

देहुरा मसीत सोई पूजा औ निवाज ओई
   मानस सभै एक पै अनेक को भ्रमाउ है॥
देवता अदेव जच्छ गंध्रब तुरक हिंदू
   निआरे निआरे देसन के भेस को प्रभाउ है॥
एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान
   खाक बाद आतस औ आब को रलाउ है॥*
अलह अभेख सोई पुरान औ कुरान ओई
   एक ही सरूप सभै एक ही बनाउ है॥

(*दसम ग्रंथ*, सैंची पहली, पृ. 19)

साईं बुल्लेशाह ने कहा है, 'बुल्ले शाह जो हरि चित लागे, हिंदू तुरक दूजन त्यागे।' गुरु गोबिन्द सिंह जी कहते हैं, 'जा ते दूर हुआ भ्रम उर का। ता

* **खाक**=मिट्टी; **बाद**=हवा; **आतस**=आग; **आब**=पानी; आपका संकेत पाँच तत्त्वों की ओर है जिनके मेल से मनुष्य-शरीर मिलता है।

आगे हिंदू क्या तुरका।' गुरु नानक साहिब कहते हैं: हे परमात्मा, एक तू है, तू है, दूसरा कोई नहीं है, 'असति एक दिगरि कुई॥ एकतुई एकतुई॥' (आदि ग्रन्थ, पृ.144) मौलाना रूम ने अद्वैत का कितना सुन्दर उपदेश दिया है:

ग़ैर ऊ रा अज़ नज़र बेरूं मकुन,
चशमेदिल निह बर जमाले ज़ू उल मनन।
चीसत दीगर दर जहां ग़ैर अज़ ख़ुदा,
अज़ चे अहवल गशताई ऐ यायख़ाह।
ख़ुद तुई गर ग़ैर अज़-हक ख़ुद रा बसोज़,
चशमे दिल बर वहदाई हरदम बदोज़।

अर्थात्, तू खुदा के सिवाय ग़ैर या पराये को दृष्टि से परे फेंक दे। तू अपना दिल सदा दया करनेवाले प्रभु की बड़ाई पर रख। दुनिया में प्रभु के सिवाय कौन है? हे बकवासी, तू भैंगा* क्यों बन गया है? यदि तू स्वयं को प्रभु से अलग समझता है तो अपने आपको आग लगा दे। तू दिल की आँख सदा उस एक पर रख।

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि ऐसे कामिल मुर्शिद और परमात्मा के सच्चे प्रेमी की खोज करनी चाहिये जो धार्मिक पक्षपात के बिना हरएक को द्वैत के कुफ्र से छुड़ाकर एकता के रंग में रँगता हो:

चलो देखीए उस मस्तानड़े नूं,
जिह्दी त्रिंञणां दे विच पई ए धुंम।
ओह ते मै वहदत विच रंगदा ए,
नहीं पुछदा ज़ात दे की हो तुम।†

* आप संकेत करना चाहते हैं कि जिस मनुष्य की दृष्टि ख़राब हो, उसको एक के दो-दो दिखायी देते हैं। उसी प्रकार अज्ञानियों को द्वैत दिखायी देती है।

† **मै**=शराब; वह बिना किसी अन्तर के हरएक को अद्वैत के रंग में रँगता है।

प्रियतम की खोज

प्रियतम अन्दर है

साईं बुल्लेशाह भूली और भटकी हीर (आत्मा) को सावधान करते हैं कि जिस राँझा (परमात्मा) को तू बाहर खोज रही है, वह तेरे अपने अन्दर है:

भुल्ली हीर ढूंडेंदी बेले।
रांझा यार बुक्कल विच खेले,
मैनूं सुध बुध रही न सार।
इश्क़ दी नवियों नवीं बहार।

'मेरी बुक्कल दे विच चोर नी, कीहनूं कूक सुणावां नी' और 'मुँह आई बात न रैह्न्दी ए' आदि कई काफ़ियों में यह विचार बार-बार दोहराया गया है कि घर में खोई हुई वस्तु घर में ही ढूँढ़ी जा सकती है, बाहर व्यर्थ समय गँवाने से कोई लाभ नहीं। परमात्मा के सच्चे प्रेमी सनकियों की भाँति भटकने के स्थान पर अपने अन्दर का मार्ग खोजते हैं:

इक लाज़म बात अदब दी ए, सानूं बात मलूमी सभ दी ए।*
हर हर विच सूरत रब्ब दी ए, किते ज़ाहर किते छुपेंदी ए।†

* **लाज़म**=आवश्यक; **अदब**=आदर।

† परमात्मा सर्वव्यापक है, परन्तु मनुष्य की वास्तविक समस्या उस गुप्त प्रभु को प्रकट करने की है:

गुपतु परगटु तूं सभनी थाई॥ गुर परसादी मिलि सोझी पाई॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 124)

जिस पाया भेत क़लंदर दा, राह खोजया आपणे अंदर दा।
ओह वासी है सुख मंदर दा, जित्थे चढ़दी है न लैह्न्दी ए।
एथे दुनिया विच अन्हेरा ए, अते तिलकण बाज़ी वेहड़ा ए।*
वड़ अन्दर वेखो केहड़ा ए, बाहर ख़फ़तण पई ढूंढेंदी ए।†

फिर कहते हैं:

बुल्ला शौह असां थीं वख नहीं, बिन शौह थीं दूजा कख नहीं।‡
पर वेखण वाली अक्ख नहीं, तांही जान पई दुख सैह्न्दी ए।§
मुँह आई बात न रैह्न्दी ए।

वह साईं घट-घट में व्यापक है परन्तु सौभाग्यशाली वही शैय्या है जहाँ वह प्रकट है:

सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परगट होय॥
(*कबीर साखी-संग्रह*, पृ. 20)

साईं जी ने शरीर को अधिकतर घर या आँगन कहा है। आप कहते हैं कि वह प्यारा रहता तो इस घर के अन्दर ही है परन्तु उसको पकड़ना बहुत कठिन है:

ओह घर मेरे विच आया, उस आ मैनूं भरमाया।
पुच्छो जादू है कि साया, उस तों लओ हकीकत सारी।
ओह दिल मेरे विच वसदा, बह नाल असाडे हसदा।
पुछनीआं बातां तां उठ नसदा, लै के बाजां वांग उडारी।

* **तिलकण**=फिसलनेवाला।
† **ख़फ़तण**=सनकी।
‡ **कख**=तिनका अर्थात् कुछ भी नहीं।
§ **वेखण वाली**=देखनेवाली।

शरीर ठाकुरद्वारा है

आपने मनुष्य के शरीर को ठाकुरद्वारा और हरि-मन्दिर भी कहा है। उस ठाकुर या प्रभु ने अपने रहने के लिए स्वयं इसका सृजन किया है। सच्चे प्रेमी का क, ख, ग ही यही है कि परमात्मा बाहर मन्दिरों, मस्जिदों या गिरजाघरों में नहीं बल्कि शरीर रूपी ठाकुरद्वारे या हरि-मन्दिर के अन्दर रहता है। बाहर के ठाकुरद्वारों में नक़ली शंख और घण्टे बजाये जाते हैं परन्तु शरीररूपी ठाकुरद्वारे में अनहद शब्द का वह अगम नाद बज रहा है, जिसका कोई आदि या अन्त नहीं है। बाहर के मन्दिर, मस्जिद आदि के अन्दर तो मिट्टी के दीपकों में तेल जलाया जाता है परन्तु इस ठाकुरद्वारे के अन्दर उस कुल-मालिक के नूर की अगम ज्योति जल रही है:

जां मैं सबक इश्क़ दा पढ़या, मसजद कोलों जीउड़ा डरया।
डेरे जा ठाकर दे वड़या, जित्थे वजदे नाद हज़ार।
बेद कुरानां पढ़ पढ़ थक्के, सजदे करदयां घस गए मत्थे।
न रब्ब तीरथ न रब्ब मक्के, जिस पाया तिस नूर अनवार।
इश्क़ दी नवियों नवीं बहार।

बाइबल में आता है, "तुम (पिछले जन्मों के कर्मों का) पश्चात्ताप करो, परमात्मा बिलकुल निकट है।"* "परमात्मा की बादशाहत तुम्हारे अन्दर है।"† "आकाश और धरती का मालिक मनुष्य के हाथों से बनाये गए मन्दिरों में नहीं रहता, न ही मनुष्य के हाथों से उसकी पूजा होती है।"‡

ख़्वाजा अबू इस्माइल अब्दुल्ला अनसारी (1006-1089) लिखते हैं कि बाहर का मिट्टी, पानी आदि का काबा शैख़ इब्राहीम ने बनाया, पर अन्दर का दिलोजान का प्राकृतिक काबा उस दयालु प्रभु के नूर से भरपूर है।

* Repent: for the Kingdom of heaven is at hand. (*Matthew* 4:17)
† Kingdom of God is within you. (*Luke* 17:21)
‡ Lord of heaven and earth, dwelleth not in temples made with hands: Neither is he worshipped with men's hands. (*Acts* 17:24, 25)

परमात्मा के मार्ग में दो पूजा-स्थल हैं – बाहरी बनावटी मन्दिर और अन्दर का क़ुदरती मन्दिर। तुम आन्तरिक मन्दिर में प्रभु की पूजा करने की कोशिश करो।*

गुरु नानक साहिब ने मनुष्य-शरीर को हरि का महल, हरि का घर या हरि का मन्दिर कहा है। इसके अन्दर सदा हरि की ज्योति जल रही है। मालिक के सच्चे भक्त इसके अन्दर से ही उस हरि से मिलाप करते हैं:

काइआ महलु मंदरु घरु हरि का तिसु महि राखी जोति अपार॥
नानक गुरमुखि महलि बुलाईऐ हरि मेले मेलणहार॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1256)

आप कहते हैं कि मनुष्य-देही ही सच्चा हरि-मन्दिर है क्योंकि इसके अन्दर ही उस सर्वव्यापक प्रभु से मिलाप होता है। अन्दर रहनेवाले विधाता को बाहर ढूँढ़ना मूर्खता है। मालिक के सच्चे भक्त गुरु-शब्द द्वारा अन्दर से ही उस परमेश्वर से मिलाप कर लेते हैं:

हरि मंदरु सोई आखीऐ जिथहु हरि जाता॥
मानस देह गुर बचनी पाइआ सभु आतम रामु पछाता॥
बाहरि मूलि न खोजीऐ घर माहि बिधाता॥
मनमुख हरि मंदर की सार न जाणनी तिनी जनमु गवाता॥
सभ महि इकु वरतदा गुर सबदी पाइआ जाई॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 953)

पलटू साहिब कहते हैं:

साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास॥
साहिब तेरे पास याद करु होवै हाजिर।
अंदर धसि कै देखु मिलेगा साहिब नादिर॥
मान मनी हो फना नूर तब नजर में आवै।

* *A History of Sufism in India*, Vol. I, p. 78

बुरका डारै टारि खुदा बाखुद दिखरावै॥
रूह करै मेराज कुफर का खोलि कुलाबा।*
तीसौ रोजा रहै अंदर में सात रिकाबा॥†
लामकान में रब्ब को पावै पलटूदास।‡
साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास॥

(*पलटू साहिब की बानी*, भाग 1, कुण्डली 93)

शरीर मक्का और काबा है

साईं जी ने शरीर को सच्चा मक्का और मस्तक को इसकी मेहराब कहा है। आप कहते हैं कि बाहरी मक्का के हज के लिए जानेवाले लोग यह नहीं जानते कि दिल ही वह सच्चा मक्का है जिसके अन्दर कुल-मालिक का प्रकाश देखा जा सकता है, 'हाजी लोक मक्के नूं जांदे, मेरे घर विच नौशौह मक्का।' इसी प्रकार आप कहते हैं, 'मत्थे महिराब टिकाइउ ई'।§

आप कहते हैं: 'जित वल यार उते वल काअबा, भावें फोल किताबां चारे।' वह प्यारा दिल के अन्दर है और प्यार की लहर उठाकर ही हम उसको पा सकते हैं:

सत्त समुंदर दिल दे अंदर, दिल से लहर उठावांगी।
इक टूणा अचंभा गावांगी, मैं रूठा यार मनावांगी।

* द्वैत, दुई या झूठ के बन्धन तोड़कर आत्मा ऊपर को चढ़ती है।
† आत्मा प्रतिदिन आन्तरिक सात मुक़ामों पर जाती है।
‡ **लामकान**= धुरधाम, अनामी देश।
§ कई कामिल फ़क़ीरों ने मस्तक को मेहराब कहा है। मस्तक का आकार मेहराब जैसा है। इसके अन्दर उस मालिक का क़ुदरती नूर भी झर रहा है और उसमें कलमे, शब्द या नाम की मीठी ध्वनि भी दिन-रात उठ रही है। सन्त तुलसी साहिब ने फ़रमाया है कि यदि क़ुदरती काबा (मस्तक) की मेहराब में ध्यान इकट्ठा करके सुना जाये तो वहाँ मालिक की दरगाह से आ रही कलमे की आवाज़ सुनायी देने लगती है:

कुदरती काबे की तू महराब में सुन ग़ौर से।
आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये॥

(*संतबानी*, पृ. 44)

'उलटी गंग बहायो' काफ़ी में आपने शरीर को वह लंका कहा है जिसके अन्दर दस इन्द्रियों को वश में करके (दहिसर मार के) प्रियतम से मिलाप किया जा सकता है। सच्चा कुम्भ या तीर्थ, जिसमें स्नान करके आत्मा निर्मल होती है, शरीर के अन्दर है।

'प्यारया सानूं मिठड़ा ना लगदा शोर' में आप बहुत सुन्दर इशारा करते हैं कि प्रियतम की खोज में बाहरी शोर और झगड़े किसी काम के नहीं। जो लोग अन्दर प्रियतम की खोज करते हैं, उनके अन्दर सुन्दर बग़िया खिल जाती है और उनकी विरह की पतझड़ मिलाप की सुन्दर और स्थायी बसन्त में बदल जाती है:

मैं घर खिला शगूफ़ा होर।
वेखिआं बाग बहारां होर, हुण मैनूं कुछ न कैह्णा।
एहो कौल ते एहो करार, दिलबर दे विच रैह्णा।

परदा या रुकावट

साईं जी कहते हैं कि आत्मारूपी प्रेमिका, परमात्मारूपी प्रियतम के वियोग में परेशान है क्योंकि दोनों के बीच अज्ञान, मन और अहं का परदा ताना हुआ है:

1. नेड़े वस्से थां न दस्सें, ढूंढां कित वल जाहीं।
   इकसे घर विच वसदयां रसदयां,
   कित वल कूक सुणाईं।
2. भुल्ले रहे नाम न जपया,
   गफ़लत अंदर यार है छपया।
   ओह सिध पुरखा तेरे अंदर धसया,
   लग्गीआं नफ़स दीआं चाटां नी।

एक ही घर में रहनेवाले आत्मा और परमात्मा को एक-दूसरे से दूर रखनेवाली चीज़ अहं, ख़ुदी या मन है:

अंतरि अलखु न जाई लखिआ विचि पड़दा हउमै पाई॥
. . . . . .
एका संगति इकतु ग्रिहि बसते मिलि बात न करते भाई॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 205)

साईं जी समझाते हैं कि जब तक मन पर मैं-मेरी, अहं या अज्ञान का परदा क़ायम है, चाहे संसार के सब तीर्थ ढूँढ़ लें और अनेक प्रकार के कर्मकाण्ड कर लें, खोज के वृक्ष को मिलाप का फल नहीं लग सकता:

मक्के गयां गल्ल मुकदी नाहीं, जिचर दिलों न आप मुकाईए।
गंगा गयां गल्ल मुकदी नाहीं, भावें सौ सौ गोते लाईए।
गया गयां गल्ल मुकदी नाहीं,भावें कितने पिंड भराईए।
बुल्ला शाह गल्ल तां ही मुकदी,जद मैं नूं खड़े लुटाईए।

जब तक इन्द्रियाँ वश में नहीं आतीं, मनरूपी झूठा पति नहीं मरता और द्वैत के कुफ़्र का सिर नहीं काटा जाता, मस्तक पर प्रियतम से मिलाप का टीका नहीं लग सकता:

बुल्ला मैं जोगी नाल व्याही,
लोकां कमलयां ख़बर न काई।
मैं जोगी दा माल, पंजे पीर मना के।*
वारया कुफ़र वड्डा मैं दिल थीं,
तली ते सीस टिका के।
मैं वडभागी मारया ख़ावंद, हत्थीं ज़हर पिला के।

---

* **पंजे पीर**=आम विश्वास के अनुसार पाँच पीर ये हैं – ग़ाज़ी मियाँ (सालार मसऊद), ज़िंदा ग़ाज़ी, शेख़ फ़रीद, ख़्वाजा ख़िज़्र और पीर बदर। वारिस शाह ने रूहानी दृष्टि से पाँच ज्ञान इन्द्रियों को पाँच पीर कहा है: 'पंज पीर ने पंज हवास तेरे।' सूफ़ी विचार-धारा में पाँच विकारों या पाँच ज्ञान इन्द्रियों को वश में करने को पाँच पीर मनाने का नाम देना अस्वाभाविक नहीं है। साईं जी ने अपनी काफ़ी 'उलटी गंग बहायो रे साधो' में 'दहिसर' भाव दस इन्द्रियों को मारने की बात कही है। यहाँ आपने मनरूपी पति को वश में करने की ओर इशारा किया है जो इस भाव के अधिक अनुकूल है।

दसवाँ द्वार

शरीररूपी मन्दिर, ठाकुरद्वारे या काबा के अन्दर कौन-सी जगह प्रियतम की खोज करें? दूसरे सन्तों-महात्माओं की भाँति बुल्लेशाह समझाते हैं कि शरीररूपी घर या आँगन के नौ दरवाज़े (दो आँखें, दो कान, दो नासिकाएँ, मुँह और मल-मूत्र के दो द्वार) आत्मा के शरीर और संसार में कार्यशील होने के लिए हैं, परन्तु दसवाँ द्वार आन्तरिक रूहानी जगत् की ओर खुलता है। वह दसवाँ द्वार ही आत्मा का वास्तविक निवास-स्थान है। आत्मा इस स्थान से नीचे उतरकर नौ द्वारों के द्वारा शरीर और संसार से बँध चुकी है। नौ द्वारों के द्वारा बाहर की ओर बह रही सुरत इन्द्रियों के भोगों की दास बन चुकी है। यह प्रियतम के देश और उसके मिलाप के आनन्द से अनभिज्ञ है। साईं जी फ़रमाते हैं कि जब तक आत्मा को उस दसवें द्वार या दसवीं गली का पता नहीं मिलता, जहाँ प्रियतम आता-जाता है, इसका कभी उस प्यारे से मिलाप नहीं हो सकता:

इस वेहड़े दे नौं दरवाजे, दसवां गुप्त रखाती।*
ओस गली दी मैं सार न जाणां, जहां आवे पिया जाती।

कबीर साहिब कहते हैं कि शरीर के नौ द्वारों में भटक रही आत्मा कभी भी दसवें दरवाज़े में पड़ी अनुपम वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकती:

नउ घर देखि जु कामनि भूली बसतु अनूप न पाई॥
कहतु कबीर नवै घर मूसे दसवैं ततु समाई॥

(कबीर – आदि ग्रन्थ, पृ. 339)

---

* (क) नउ दरवाज नवे दर फीके रसु अंम्रितु दसवे चुईजै॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1323)

(ख) नउ घर थापे हुकमि रजाई॥ दसवै पुरखु अलेखु अपारी...॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1033)

(ग) नउ घर थापे थापणहारै॥ दसवै वासा अलख अपारै॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1036)

(घ) हरि जीउ गुफा अंदरि रखि कै वाजा पवणु वजाइआ॥
वजाइआ वाजा पउण नउ दुआरे परगटु कीए दसवा गुपतु रखाइआ॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 922)

हज़रत शम्स तब्रेज़ कहते हैं, तू पशुओं की भाँति सिर नीचा करने के बजाय ऊपर की ओर देख क्योंकि तू शरीर की मस्ती से बाहर निकलकर अन्दर नई दुनिया में प्रवेश कर सकता है।*

ख़्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं, जब तक तू 'तबीयत की सराय' अर्थात् शरीर के आँखों के नीचे के भाग से ऊपर नहीं आता, तू हक़ीक़त की गली में दाख़िल नहीं हो सकता।†

मौलाना रूम फ़रमाते हैं, जब तक मनुष्य इन इन्द्रियों से ऊपर नहीं उठता, वह अन्दर ग़ैबी तस्वीर का दीदार नहीं कर सकता।‡

आँखों के पीछे लगे दसवें दरवाज़े को घर§ या घर-दर और मुक्ति का दरवाज़ा¶ भी कहा गया है जिसमें रूहानियत की दौलत भरी पड़ी है और जिसमें से प्रियतम के देश को मार्ग जाता है। साईं जी ने इस द्वार को अन्दर पिया के देश की ओर खुलनेवाली खिड़की भी कहा है:

---

* अंदर हैवान बिंगर सर सूए ज़मीं दारद, गर आदमी आखर सर जानबे बाला कुन।
अज़ मुफ़ीके जिसम चूं याबी खलास, बतजदुद आलमे याबी ज़दीद।

† तू कज़ सराए तबीयत नमे रवी बेरूं, कुजा बकूए हकीकत गुज़र तुवानी करद।

‡ चूं ज़ हिस्से बेरू निआमद आदमी, बाशुद अज़ तसवीरे ग़बी आज़मी।

§ आँखों से बाहर भटक रहा मन आँखों के पीछे घर में आकर रूहानी दौलत प्राप्त कर सकता है:

घरि रतन लाल बहु माणक लादे मनु भ्रमिआ लहि न सकाईऐ॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1179)

¶ (क) मुक्ति का द्वार बहुत बारीक है। हौंमैं के कारण फूला हुआ मन इसमें दाख़िल नहीं हो सकता:

कबीर मुकति दुआरा संकुरा राई दसएं भाइ॥
मनु तउ मैगलु होइ रहिओ निकसो किउ कै जाइ॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1367)

(ख) इस बारीक दरवाज़े में दाख़िल होने की युक्ति पूर्ण सतगुरु से मिलती है:

नानक मुकति दुआरा अति नीका नान्हा होइ सु जाइ॥
हउमै मनु असथूलु है किउ करि विचु दे जाइ॥
सतिगुर मिलिऐ हउमै गई जोति रही सभ आइ॥
इहु जीउ सदा मुकतु है सहजे रहिआ समाइ॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 509-10)

खेड लै वेहड़े घुंमी घुँम।
इस वेहड़े विच आला सोंह्दा आले दे विच ताकी।
ताकी दे विच सेज विछावां नाल पिया संग राती।

सन्त बेणी जी ने साईं जी से कई सौ वर्ष पहले समझाया था कि जीव इस अन्दर की खिड़की को खोलकर सदा के लिए जाग उठता है और त्रिकालदर्शी हो जाता है:

ऊपरि हाटु हाट परि आला आले भीतरि थाती॥
जागतु रहै सु कबहु न सोवै॥ तीनि तिलोक समाधि पलोवै॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 974)

हज़रत सुलतान बाहू फ़रमाते हैं, 'दिल की ताकी लाह फ़कीरा पा अंदरूने झाती हू।' हुज़ूर स्वामी जी महाराज भी समझाते हैं कि नौ द्वारों में क़ैद आत्मा आन्तरिक दसवीं खिड़की खोल ले तो यह प्रियतम के देश पहुँचकर सच्चा आनन्द प्राप्त कर सकती है:

नौ द्वारन में बँध रही। अब चैन नहीं इक स्वाँस॥
दसवीं खिड़की खोल री। कर परम बिलास॥
(*सारबचन संग्रह*, 19:6:7-8)

पड़े क्यों भटको नैनन वार। झाँक तिल खिड़की उतरो पार॥
(*सारबचन संग्रह*, 19:20:6)

प्रियतम को देखनेवाली आँख

आँखों के पीछे लगे इस गुप्त द्वार को सन्तों-महात्माओं ने 'आँख', 'आन्तरिक आँख', 'तीसरी आँख', 'दिव्य दृष्टि' या 'शिव नेत्र', 'तिल' और 'तीसरा तिल' कहा है। मुसलमान फ़क़ीरों ने इसको 'ग़ैबी आँख'*, 'नुक़ताए-सुवैदा'

* शम्स तब्रेज़ कहते हैं कि जिनकी औलिया या मुर्शिद ग़ैब की आँख खोल देते हैं वे अपने माशूक़ की उपस्थिति में ख़ुशी-ख़ुशी और बा-ख़बर मरते हैं, शेष सब अन्धों की तरह बेख़बर जाते हैं:

आदि कहकर वर्णन किया है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि जब तक अन्दर देखनेवाली आँख नहीं मिलती तब तक परमात्मा के अन्तर में दर्शन नहीं हो सकते:

बुल्ला शौह असां थीं वख नहीं, ...
पर वेखण वाली अक्ख नहीं, ताहीं जान पई दुख सैह्न्दी ए।

मनुष्य अन्दर की आँख खोले बिना भिखारी है, चाहे उसके घर रूहानियत की दौलत के भण्डार भरे पड़े हैं। यह आँख खोले बिना इसकी दशा समुद्र के किनारे प्यास से मर रहे यात्री जैसी है:

मोती चूनी पारस पासे, पास समुंदर मरो प्यासे।
खोल अक्खीं उठ बहु भिकारे, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे।

आपने इस बिन्दु को 'काले कुंडल के बीच में छिपे हुए गोल घेरे' का नाम दिया है जिसमें दैवी प्रकाश प्रज्वलित है:

ज़ुलफ़ स्याह दे विच यद-बेज़ा, दे चमकार दिखाली ओ यार।

आपने इसको सिर के अन्दर बना वह छेद कहा है जिसमें अनहद शब्द का बाजा बजता हुआ सुनायी देता है, 'अनहद वाजा सरब मिलापी निरवैरी सिरनाजा रे।'*

अन्य बहुत-से सन्तों-महात्माओं ने भी इस आन्तरिक आँख की महिमा की है। बाइबल में आता है, यदि तू एक आँखवाला बन जाये तो तेरा सारा शरीर प्रकाश से भर जायेगा।† यहाँ संकेत इस आन्तरिक आँख की ओर ही है।

(पिछले पृष्ठ का शेष)

आशाने कि बा खबर मीरंद, पेशे माशूक चूं शकर मीरंद।
औलीआ चशमे गैब बकुशाइंद, बाकीआ जूमला कोर-ओ कर मीरंद।

* **सिरनाजा**=सिर का सुराख़।

† The light of the body is the eye. If, therefore, thy eye be single, thy whole body shall be full of light. (*Matthew* 6:22)

हुज़ूर स्वामी जी महाराज फ़रमाते हैं कि आत्मा शरीर के नौ द्वार ख़ाली करके और (दो आँखों के पीछे) तीसरी आँख या तीसरे तिल में पहुँचकर ही आन्तरिक प्रकाश देख सकती है:

1. दो तिल छूट एक तिल दरसा। जोत निरंजन का पद परसा॥
(*सारबचन संग्रह*, 30:24:17)

2. रूप निहारूं जोत अब तिल में॥
(*सारबचन संग्रह*, 30:17:14)

हुज़ूर तुलसी साहिब ने इस बिन्दु को तीसरी आँख की पुतली का तिल कहा है। आप कहते हैं कि इस काले परदे या तिल के पीछे सारी रूहानी हक़ीक़त छिपी हुई है। इस बिन्दु से पार देखने से चौदह लोकों की किताब आन्तरिक आँख के सामने खुल जाती है। इस बिन्दु पर पहुँचकर अन्दर कलमे या शब्द की स्थायी आवाज़ सुनायी देने लगती है, जो आत्मा को परमात्मा की दरगाह की ओर बुला रही है। आप हिदायत करते हैं कि प्रियतम का जलवा देखने के लिए बाहर भटकने के स्थान पर, अन्दर तीसरे तिल में पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिये:

सुन ऐ तक़ी न जाइयो ज़िनहार देखना।*
अपने में आप जलवाए दिलदार देखना॥
पुतली में तिल है तिल में भरा राज़ कुल का कुल।†
इस परदाए सियाह के ज़रा पार देखना॥‡
चौदह तबक़ का हाल अयां हो तुझे ज़रूर।§
ग़ाफ़िल न हो ख़याल से हुशियार देखना॥

* यह ग़ज़ल तुलसी साहिब ने एक मुसलमान दरवेश को सम्बोधित करके लिखी है। आप समझाते हैं कि ऐ तक़ी, दिलदार का जलवा देखने के लिए कहीं बाहर न जाओ, अपने अन्दर ही उसका जलवा देखो।

† पुतली के अन्दर तिल है और तिल के अन्दर सारा रूहानी भेद छिपा हुआ है।

‡ इस काले परदे के पार देखने का प्रयत्न करो।

§ तुझे चौदह लोकों का हाल प्रकट हो जायेगा, शर्त यह है कि ध्यान को अन्दर पक्का करके रख।

सुन ला मकाँ पे पहुंच के तेरी पुकार है।*
है आ रही सदा से सदा यार देखना॥
मिलना तो यार का नहीं मुशकिल मगर तक़ी।†
दुशवार तो यह है कि है दुशवार देखना॥
तुलसी बिना करम किसी मुरशिद रसीदा के।‡
राहे निजात दूर है उस पार देखना॥
(*संतबानी*, पृ. 45)

इन पंक्तियों में तुलसी साहिब ने संकेत किया है कि अन्दर जाने और तिल को पार करने का भेद किसी कामिल मुर्शिद से मिलता है। कबीर साहिब कहते हैं कि जब तक इस तिल में दाख़िल होने की युक्ति सिखानेवाला सतगुरु न मिले, सारा ज्ञान-ध्यान और जप-तप व्यर्थ है:

सतगुरु बिना जप तप सभ झूठा, बड़े आलम फ़ाज़ल का।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, गुर मिले भेदी तिल का।

स्वामी जी महाराज समझाते हैं कि जब तक ऐसा पूर्ण सतगुरु नहीं मिलता जो स्वयं तिल को तोड़कर अगम देश में पहुँच चुका हो, जीव को इस तिल का ताला खोलने की युक्ति प्राप्त नहीं होती:

1. संत कोई पहुंचे अगम निहार। तोड़िया जिन जिन तिल का द्वार॥
(*सारबचन संग्रह*, 10:2:14)

2. अब सतगुरु मोहि मिले दयाल। कुँजी दे खोला तिल ताल॥
(*सारबचन संग्रह*, 35:11:7)

* इस नुक़्ते को पार करके तू आन्तरिक रूहानी सफ़र तय करता हुआ धीरे-धीरे ला-मुक़ाम (सचखण्ड) पहुँच जायेगा, जहाँ तेरी प्रतीक्षा हो रही है और जहाँ से आत्मा को ऊपर ले जाने के लिए कलमे या शब्द की आवाज़ सदा से नीचे आ रही है।

† परमात्मा का मिलना इतना कठिन नहीं, जितना अन्दर उसका दीदार करना कठिन है अर्थात् उसके जमाल को देख पाना आसान नहीं है।

‡ किसी कामिल मुर्शिद की दया के बिना इस भेद को जान पाना और मुक्ति का सफ़र तय करके पार के देश पहुँच पाना असम्भव है।

रूहानी अभ्यास

सिमरन और ध्यान

नौ द्वारों में क़ैद आत्मा आँखों के पीछे आकर दसवें दरवाज़े में कैसे प्रवेश करे और आन्तरिक आँख कैसे खोले? सन्त-महात्मा समझाते हैं कि हमारे मन की आदत है कि यह सदा किसी न किसी वस्तु का चिन्तन, जाप या सिमरन करता रहता है। जिन वस्तुओं के चिन्तन या विचार में यह लगा रहता है, यह उनकी शक्लें और तस्वीरें भी गढ़ता रहता है। सन्त-महात्मा मन की सोच-विचार करने की आदत को सिमरन करना और वस्तुओं की तस्वीरें बनाने की आदत को ध्यान करना कहते हैं। हम अँधेरी से अँधेरी कोठरी में आँखें बन्द करके क्यों न बैठ जायें, हमारा मन फिर भी दुनिया की वस्तुओं व पदार्थों के सिमरन और ध्यान में लगा रहता है। संसार की नाशवान वस्तुओं व पदार्थों के सिमरन और ध्यान के कारण मन में इनका मोह पैदा हो चुका है। जब तक यह मोह नहीं छूटता, मन कभी अन्दर और ऊपर की ओर नहीं पलट सकता।

कामिल फ़क़ीर समझाते हैं कि प्रभु से मोह पैदा करनेवाली शक्ति सिमरन और ध्यान है। मन को संसार की नाशवान वस्तुओं के सिमरन और ध्यान के स्थान पर अमर, अविनाशी प्रभु के नाम के सिमरन और उससे अभेद हो चुके सतगुरु के ध्यान में लगा दें तो इसके अन्दर बस चुका संसार का मोह काटा जा सकता है और इसके अन्दर परमात्मा का प्यार पैदा हो सकता है।

वास्तव में मन सांसारिक वस्तुओं और पदार्थों के सिमरन और ध्यान के कारण ही पहले आँखों के पीछे से नौ द्वारों में उतरता है और फिर नौ द्वारों

के द्वारा सारे संसार में फैलता है। अपने ख़याल को आँखों के पीछे रखकर परमात्मा के नाम का सिमरन और सतगुरु के स्वरूप का ध्यान करने से, मन और आत्मा स्वाभाविक तौर से नौ द्वारों से सिमटकर ऊपर दसवें दरवाज़े में इकट्ठे होने शुरू हो जाते हैं। आत्मा के आँखों के पीछे पूरी तरह एकाग्र होते ही अपने आप अन्दर दसवाँ दरवाज़ा खुल जाता है और मन और आत्मा उसके अन्दर दाख़िल हो जाते हैं।

हज़रत ईसा ने फ़रमाया था, "खटखटाओ तो (द्वार) खुल जायेगा, ढूँढ़ो तो तुम्हें मिल जायेगा।"* आपका संकेत सिमरन द्वारा मन को दसवें दरवाज़े पर एकाग्र करके इसके अन्दर दाख़िल होने की ओर ही था। साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि हे प्रियतम, मैंने तेरे लिए नौ द्वार पार करके दसवें दरवाज़े में आकर डेरा लगाया है, अब तो तू मेरा प्रेम स्वीकार करके मुझे अपना दर्शन दे:

> तुध कारन मैं ऐसा होया, नौ दरवाज़े बंद कर सोया।
> दर दसवें ते आण खलोया, कदे मंन मेरी अशनाई।†

आपने यहाँ जो 'सोया' शब्द का प्रयोग किया है उसका संकेत आम नींद की ओर नहीं है। मन और आत्मा के नौ द्वारों से सिमटकर आँखों के पीछे एकाग्र होने से आँखों से नीचे का शरीर पूरी तरह सुन्न हो जाता है (सो जाता है), पर अन्दर आत्मा जाग उठती है। साईं जी कहते हैं कि संसार की ओर जाग रहे लोग वास्तव में सोये हुए हैं, परन्तु रूहानी अभ्यास द्वारा संसार की ओर से सो चुके वास्तव में जागे हुए हैं। दुनिया की ओर जाग रहे‡, परन्तु

---

* seek, and ye shall find; knock, and it shall be opened unto you (*Matthew* 7:7)

† **अशनाई**=प्रेम।

‡ हज़रत ईसा ने फ़रमाया है, मैं आँखों वालों को अन्धा करने आया हूँ और अन्धों को आँखें देने आया हूँ (*John* 9:39)। आपका इससे यह भाव था कि जो लोग केवल संसार की ओर देखते हैं वे अन्दर की ओर से अन्धे हैं। मैं उनको संसार की ओर देखनेवाली आँखें बन्द करके संसार की ओर से अन्धा होने और आन्तरिक आँखें खोलकर अन्दर की ओर देखनेवाला बनाने की विधि सिखाने के लिए आया हूँ, ताकि हम अपनी रूहानी असल को पहचान सकें, क्योंकि हमारी आत्मा और शब्द का असल एक है। *(शेष अगले पृष्ठ पर)*

अन्दर की ओर सोये हुए लोग जब अन्त समय अन्दर की ओर जागते हैं तो पछताते हैं कि जीवन के बहुमूल्य समय को व्यर्थ नष्ट कर लिया:

मैं जागी सभ जग सोया। खुल्ही पलक तां उठ के रोया।

साईं बुल्लेशाह समझाते हैं कि आत्मा और परमात्मा के मध्य एक अँधेरा परदा तना हुआ है। यह परदा संस्कारों और विकारों की मैल का है।* इस मलिनता को धोकर आत्मा को निर्मल बनाने का काम सिमरन और ध्यान करता है:

मैं चूहड़ेटड़ी आं सच्चे साहिब दी सरकारों।
ध्यान दी छज्जली ज्ञान का झाड़ू, काम क्रोध नित झाड़ों।

कामिल फ़क़ीरों ने जीवन का पल-पल सिमरन और ध्यान में लगाने का उपदेश दिया है। यही जीव को विकारों से बचानेवाला, इसकी जन्म-जन्मान्तर की मलिनता उतारनेवाला है और इसको सृष्टि से उखाड़कर सृष्टा की ओर जोड़नेवाला प्राकृतिक साधन है। गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं, 'ऊठत बैठत सोवत जागत सासि सासि सासि हरि जपने' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1298) फिर फ़रमाते हैं: 'सासि सासि न घड़ी विसरै पलु मूरतु दिनु राते' (आदि ग्रन्थ, पृ. 247) हज़रत सुलतान बाहू कहते हैं कि 'ज़िकर' (सिमरन) करना मुश्किल है, पर सदा 'ज़िकर' का 'फ़िकर' होना चाहिये। 'ज़िकर' से ग़फ़लत में बीता साँस कुफ़्र में बीता साँस है क्योंकि उस समय मन अनश्वर परमात्मा की बन्दगी के स्थान पर नश्वर संसार के ध्यान में लगा रहता है:

(पिछले पृष्ठ का शेष)

That which is born of the flesh is flesh, and that which is born of the spirit is spirit. (*John* 3:6)

* बाबा फ़रीद ने भी कहा है कि आत्मा का परमात्मा से एकदम मिलाप हो सकता है, यदि मनोविकारों की आग जलानेवाली इन्द्रियाँ वश में आ जायें:

आजु मिलावा सेख फरीद टाकिम कूंजड़ीआ मनहु मचिंदड़ीआ॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 488)

1. ज़िकर कनूं कर फ़िकर हमेशा, एह तिक्खा तलवारों हू।
   ज़ाकर सो जो फ़िकर कमावण, पल्ल न फ़ारग़ यारों हू।
2. जो दम ग़ाफ़िल सो दम काफ़िर, मुर्शिद एह पढ़ाया हू।

साईं बुल्लेशाह के कामिल मुर्शिद ने बुल्ले से अपनी पहली मुलाक़ात के समय उसको समझाया था, 'बुल्लया रब्ब दा की पौणा, एधरों पुटणा ते औदर लाणा।' इधर से उखाड़कर उधर लगाने का काम सिमरन और ध्यान की सहायता से ही पूरा होता है।

साईं जी अपनी काफ़ी 'उलटी गंग बहायो रे साधो तब हर दर्शन पाए' में सिमरन और ध्यान के रूहानी अमल और इससे प्राप्त होनेवाले अनुभव का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं। आप कहते हैं कि अन्तर में हरि के दर्शन करने के लिए उलटी गंगा बहानी पड़ती है अर्थात् सुरत के तार को आँखों के पीछे रखकर सिमरन और ध्यान की सहायता से ज्ञान के तकले तथा ध्यान के चरख़े द्वारा उलटा घुमाना आवश्यक है। उलटा घुमाने का भाव मन व आत्मा को बाहर से अन्दर और नीचे से ऊपर लाना है। इस प्रकार दहिसर (रावण) लूटा जाता है अर्थात् दस इन्द्रियाँ वश में आ जाती हैं। शरीररूपी लंका के सब भेद प्रकट हो जाते हैं और अन्दर अनहद नाद सुनायी देने लगता है। हृदय में सतगुरु से मिलाप करके साधक सच्चा गुरु-भक्त बन जाता है। आत्मा आन्तरिक मण्डलों में चढ़ती हुई ऐसे स्थान पर पहुँच जाती है जिसको साईं जी ने 'अंमृत मंडल' कहा है।* शब्द या अमृत के अमृत कुण्ड में स्नान करने से आत्मा की सब मलिनताएँ उतर जाती हैं और यह पूरी तरह निर्मल होकर हरि में समाने के योग्य बन जाती है:

---

* मुसलमान फ़क़ीरों ने इसको 'हौज़े कौसर' या 'आबे-हयात का चश्मा' कहा है:

आबे-हयात मुनव्वर चशमे, साए ज़ुलफ़ अंबर दे हू।

(सुलतान बाहू)

दूसरे सन्तों-महात्माओं ने इसको अमृतसर, मानसरोवर आदि कई नामों से पुकारा है:

काइआ अंदरि अंम्रित सरु साचा मनु पीवै भाइ सुभाई हे॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1046)

उलटी गंग बहायो रे साधो, तब हर दर्शन पाए।
प्रेम की पूनी हाथ में लीजे, गुझ मरोड़ी पड़ने न दीजै।*
ज्ञान का तकला ध्यान का चरखा, उलटे फेर भुआए।
उलटे पाउं पर कुंभ करन जाए, तब लंका का भेद उपाए।
दैहसर लुटया हुण लछमण बाकी, तब अनहद नाद बजाए।
एह गत्त गुरू की पैरीं पावे, गुर सेवक तभी सदाए।†
अंमृत मंडल मूं तब ऐसी दे, कि हरी हर हो जाए।
उलटी गंग बहायो रे साधो, तब हर दर्शन पाए।

ध्यान देने की आवश्यकता है कि इस काफ़ी में साईं जी ने आत्मा को अन्दर ले जाने के सभी रूहानी अमल को 'उलटी गंग बहाना', 'उलटे फेर भुआउना' और 'उलटे पाउं पर कुंभ करन' कहा है। कामिल मुर्शिद फ़रमाते हैं कि सृष्टि की रचना के समय आत्मा मुक़ामे-हक़ (सचखण्ड) से नीचे उतरी। यह रास्ते के रूहानी मण्डल पार करती हुई अन्दर दसवें दरवाज़े में आ गयी जो इसका वास्तविक निवास-स्थान बन गया। परन्तु यह यहाँ भी न टिकी और नौ द्वारों द्वारा शरीर और संसार में फैल गयी। महात्मा समझाते हैं कि संसार के सिमरन और ध्यान के कारण संसार और शरीर के नौ द्वारों में बँध चुकी आत्मा परमात्मा के नाम के सिमरन और मुर्शिद के स्वरूप के ध्यान द्वारा अपना रुख़ मोड़ सकती है और आँखों के पीछे वापस जाकर परमात्मा की दरगाह से आ रहे कलमे या शब्द के सहारे दोबारा निज-घर वापस पहुँच सकती है। सन्त बेणी जी ने समझाया है कि मन और आत्मा की संसार और शरीर में फैली धाराओं को इधर से पलटकर अन्दर इड़ा, पिंगला और सुखमना के संगम पर ले आओ। यहाँ शब्द के सरोवर में स्नान करके आत्मा निर्मल हो जाती है। इस प्रकार आत्मा परमात्मा से मिलाप करने के योग्य बन जाती है:

* सुरत की तार में बल न आने दो अर्थात् सुरत को सावधानीपूर्वक सिमरन और ध्यान के रूहानी अभ्यास में लगाओ।

† सतगुरु के नूरी स्वरूप से मिलाप की ओर संकेत है। सतगुरु का अन्दर नूरी स्वरूप प्रकट होने से ही साधक सच्चा गुरु-सेवक बनता है। उसकी गुरु-भक्ति पूरी हो जाती है और उसकी आत्मा शेष रूहानी सफ़र सतगुरु के नेतृत्व में अन्दर तय करती है।

इड़ा पिंगुला अउर सुखमना तीनि बसहि इक ठाई॥
बेणी संगमु तह पिरागु मनु मजनु करे तिथाई॥
(बेणी जी – आदि ग्रन्थ, पृ.974)

शाहरग में प्रवेश

तीसरे तिल को पार करके आत्मा अन्दर जिस सूक्ष्म नाड़ी में प्रवेश करती है उसे सन्तों-महात्माओ ने 'सुखमना' या 'सुषुम्ना' नाड़ी कहा है। साईं बुल्लेशाह और कई सूफ़ी फ़क़ीरों ने इसको 'शाहरग' कहा है। शाहरग घंडी (गले की नस) नहीं, रूहानी यात्रा के लिए आँखों के पीछे बनी सूक्ष्म सड़क है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि जो लोग बाहरी दौड़-धूप त्यागकर शाहरग में पहुँच जाते हैं, उनके लिए परमात्मा की दरगाह दूर नहीं रह जाती:

शाह रग थीं रब दिसदा नेड़े, लोकां पाए लम्बे झेड़े।
वां के झगड़े कौण नबेड़े, भज भज उमर गवाई ए।
गल्ल रौले लोकां पाई ए।

साईं बुल्लेशाह ने अपने उस उपदेश की पुष्टि के लिए अपने वचनों में कई स्थानों पर *क़ुरान शरीफ़* की आयतों के उद्धरण दिये हैं जिनमें ख़ुदा बन्दे को कहता है, मैं शाहरग से तेरे निकट हूँ और तू मुझे अपने आपमें पहचान:

1. नाहुन अक़रब लिख दितोई, हुवामाकुम सबक दितोई।*
   वफ़ी अनफ़ोसेकुम हुकम कीतोई, फिर केहा घूंघट पायो ई।†
2. नाहुन अक़रब दी बंसी बजाई।‡
   मन अरफ़ूह नफ़सा दी कूक सुनाई।

* **नाहुन अक़रब**=मैं शाहरग से तेरे निकट हूँ; **हुवामाकुम**=मैं तेरे साथ हूँ।

† **वफ़ी अनफ़ोसेकुम**=तू मुझे अपने आपमें पहचान।

‡ यहाँ आप शाहरग के पास की बाँसुरी की ओर संकेत करते हैं जिसका भाव है कि शाहरग में पहुँचकर परमात्मा के कलमे या शब्द की बाँसुरी सुनायी देती है।

आपने 'होरी खेलूंगी कह बिसमिल्ला', 'चलो देखिए उस मस्तानड़े नूं' और 'फसुमा वजउल-अल्ला दसना ऐं अज ओ यार' नामक काफ़ियों में भी क़ुरान मजीद के इसी भाव की आयतों के उद्धरण दिये हैं जिनसे पता लगता है कि अहिले इसलाम में भी प्रारम्भ से रूहानी उन्नति के लिए यह अभ्यास मान्य था। हज़रत सुलतान बाहू भी ऐसी आयतों के उद्धरण देकर फ़रमाते हैं कि परमात्मा के सच्चे प्रेमी बाहर के हर प्रकार के झगड़े दूर करके परमात्मा को शाहरग में से ढूँढ़ लेते हैं और सदा के लिए अद्वैत में प्रवेश करते हैं:

अलफ़ दी ज़ात सही जिस कीती, रक्खे क़दम अगेरे हू।
नहनु-अक़रब लभ लयोसे, झगड़े कुल्ल निबेड़े हू।

आप संकेत करते हैं कि ज़ाती इस्म अर्थात् सुलतान-उल-अज़कार या सुरत-शब्द का अभ्यास करनेवाले साधक शाहरग में पहुँचकर अपने अन्दर झाँक लेते हैं जिससे वह कुफ़्र और इसलाम, जीवन और मौत की द्वैत से ऊपर उठ जाते हैं। उनका अहंभाव समाप्त हो जाता है अर्थात् वे परमात्मा में समा जाते हैं और परमात्मा उनमें समा जाता है:

हू दा जामा पहन कराहां, इस्म कमावण ज़ाती हू।
कुफ़र इस्लाम मक़ाम न मंज़ल, न उत्थ मौत हयाती हू।
शाह-रग थीं नज़दीक लधोसे, पा अंदरूने झाती हू।
ओह असां विच असीं उन्हां विच, दूर रही क़ुरबाती हू।

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि इस रूहानी अभ्यास द्वारा आत्मा बिना किसी रुकावट के चौदह लोकों की सैर कर सकती है जिससे इसकी कागवृत्ति (मनमुखोंवाली वृत्ति) समाप्त हो जाती है और इसको हंसोंवाली (गुरुमुखोंवाली) गति प्राप्त हो जाती है:

1. चौथीं तबकीं सैर असाडा। किते न हुंदा क़ैद।
2. प्यारा आप जमाल विखाले, मस्त क़लंदर होण मतवाले।
   हंसा दे हुण वेख लै चाले, बुल्ला कागां दी भुल गई टोर।

नैहुं लग्गा मत गई गवाती, नाहुन अक़रब ज़ात पछाती।
साईं वी शाहरग तों नेड़े, पड़तालिओ हुण आशिक केहड़े।

हाथरस के परम सन्त हुज़ूर तुलसी साहिब फ़रमाते हैं कि अज्ञानी लोग शरीररूपी क़ुदरती मस्जिद या क़ुदरती काबा के स्थान पर बाहरी मन्दिरों और मस्जिदों में परमात्मा की खोज में भटक रहे हैं। उस प्रियतम तक पहुँचने का असल मार्ग अन्दर शाहरग में है, इसलिए कामिल मुर्शिद की सहायता से शाहरग तक पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिये:

नकली मन्दिर मस्जिदों में जाय सद अफ़सोस है।*
कुदरति मसजिद का साकिन दुख उठाने के लिये॥†
कुदरती काबे की तू महराब में सुन ग़ौर से।
आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये॥
क्यों भटकता फिर रहा तू ऐ तलाशे यार में।
रासता शाह रग में है दिलवर पै जाने के लिये॥
मुरशिदे कामिल से मिल सिदक और सबूरी से तक़ी।
जो तुझे देगा फ़हम शाह रग के पाने के लिये॥‡
गोशे बातिन हो कुशादा जो करे कुछ दिन अमल।§
ला इलाह अल्लाहु अकबर पै जाने के लिये॥¶
यह सदा तुलसी की है आमील अमल कर ध्यान दे।
कुन क़ुरां में है लिखा अल्लाहु अकबर के लिये॥**

(*संतबानी*, पृ. 44-45)

---

* **सद...है**=बहुत दुःख है।
† **साकिन**=रहनेवाला।
‡ **फ़हम**=युक्ति, तरीक़ा या समझ।
§ पूर्ण सतगुरु की बतायी युक्ति के अनुसार अभ्यास करने से अन्दर शाहरग में पहुँच जाओगे। वहाँ पहुँचकर आन्तरिक कान खुल जायेंगे।
¶ आन्तरिक कान खुलने से अन्दर ख़ुदा के कलमे, शब्द या नाम की आवाज़ सुनायी देने लगती है।
** *क़ुरान शरीफ़* में ख़ुदा और कुन अर्थात् परमात्मा और उसके हुक्म के एक ही अर्थ हैं।

समाधि की अवस्था

सुरत के अन्दर की ओर जागने या पूरी तरह एकाग्र हो जाने को ही महात्मा ने समाधि की अवस्था कहा है। इसी को जड़ और चेतन की गाँठ खोलने का कार्य कहा है क्योंकि सुरत आँखों के पीछे आकर पहले शरीर से और फिर ऊपर जाकर मन से अलग हो जाती है। सुरत का शरीर और मन से अलग होना ही आपे की पहचान या आत्मा की पहचान है और यही परमात्मा की पहचान का साधन है। सुकरात ने कहा था कि सबसे पहले अपने आपकी पहचान करो (know thy self)। गुरु अमर दास जी ने फ़रमाया है, 'सो जनु निरमलु जिनि आपु पछाता॥ आपे आइ मिलिआ सुखदाता॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1046) इसका परमार्थी अर्थ रूहानी अभ्यास द्वारा आत्मा को मन और इन्द्रियों से अलग करना है क्योंकि जब तक आत्मा मन और इन्द्रियों से अलग नहीं होती, यह परमात्मा रूपी सूक्ष्म तत्त्व में नहीं समा सकती। हज़रत ईसा ने संकेत किया था कि माद्दा से बना माद्दा है परन्तु आत्मा (शब्द या परमात्मा) से बनी आत्मा है। आपका यही भाव है कि मनुष्य के अन्दर माद्दी और रूहानी तत्त्व मिले हुए हैं। रूहानी तत्त्व को माद्दी तत्त्व से अलग करके ही रूहानी तत्त्व (आत्मा), परमात्मा से मिल सकती है। साईं बुल्लेशाह ने अपनी वाणी में *क़ुरान शरीफ़* की उन आयतों के उद्धरण दिये हैं जिसमें परमात्मा इनसान को कहता है, तुम मुझे अपने आपमें पहचानो।* इस फ़रमान का रूहानी अर्थ आत्मा को मन और इन्द्रियों से अलग करना है। आप कहते हैं कि रूहानी अभ्यास में शरीर सुन्न हो जाता है और आत्मा शरीर या मन-इन्द्रियों से अलग होकर अपने आपकी पहचान कर लेती है:

बुल्ला शाह जद आप नूं सही कीता,
तां मैं सुतड़े, अंग ना मोड़दी हां।

* देखिये: पुस्तक के पृ. 110 पर आपके कलाम से दिये गये *क़ुरान शरीफ़* की आयतों के उद्धरण।

साईं जी इसको 'सुमुन बुकमुन उमयुन' अर्थात् आँख, मुँह और कान बन्द कर लेने का अमल कहते हैं। आप कहते हैं कि दृश्यमान संसार और आँखों से नीचे का भाग झूठ की बस्ती है। ख़याल को इस झूठ और भ्रम की बस्ती से समेटकर ही अन्दर प्रियतम के अनश्वर अस्तित्व के दर्शन कर सकते हैं:

छड्ड झूठ भरम दी बस्ती नूं, कर इश्क़ दी क़ायम मस्ती नूं।
गए पहुंच सज्जण दी हस्ती नूं, जेहड़े हो गए सुंम-बुकमुन-उम।

ऐसे प्रेमी बाहर से देखने से पागल और कमले प्रतीत होते हैं परन्तु अन्दर प्रियतम के प्रति चतुर और सयाने होते हैं। उनकी दृष्टि सदा संसार और देह से ऊपर प्रियतम के पवित्र प्रकाश पर रहती है:

हिजर तेरे ने झल्ली करके, कमली नाम धराया।
सुमुन बुकमुन उमयुन होके, आपणा वकत लंघाया।
कर हुण नज़र करम दी साईंआं, न कर ज़ोर धगाने।*

जीवित मरना

पूर्ण यकसूई, पूर्ण एकाग्रता या समाधि की इस अवस्था को ही कामिल फ़क़ीरों ने जीते-जी मरने की अवस्था कहा है क्योंकि इसमें जीव बाहरी संसार से मुर्दा होकर आन्तरिक रूहानी जगत् की ओर से जीवित हो जाता है। मौत के समय जैसे-जैसे आत्मा शरीर के नीचे के भाग से ऊपर की ओर सिमटती है, नीचे का भाग सुन्न या मुर्दा होता जाता है। अन्त में आत्मा आँखों से ऊपर पहुँचकर और शरीर को छोड़कर एक ओर हो जाती है जिससे प्राणी की मौत हो जाती है। इसके विपरीत, साधक रूहानी अभ्यास में जब चाहे आत्मा को शरीर से समेटकर संसार की ओर से मुर्दा और अन्दर जीवित हो सकता है और जब चाहे आत्मा को नौ द्वारों में उतारकर संसार की ओर

* **ज़ोर धगाने**=ज़बरदस्ती, ज़्यादती।

दोबारा जीवित हो सकता है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि मालिक के सच्चे प्रेमी जीते-जी मरने का अभ्यास करते हैं जिससे जब उनकी अपने अन्दर दृष्टि जाती है, रोम-रोम अकह रूहानी आनन्द से भर जाता है और उनकी प्रियतम के देश की ओर यात्रा शुरू हो जाती है:

इश्क़ जिन्हां दी हड्डीं पैंदा, सोई नर जीवत मर जांदा।
जिस ते इश्क़ एह आया है, ओह बेबस कर दिखलाया है।
नशा रोम रोम में आया है, इस विच न रत्ती ओह्ला है।
हर तरफ़ दिसेंदा मौला है, बुल्ला आशिक़ वी हुण तरदा है।
जिस फ़िकर पिया दे घर दा है, रब्ब मिलदा वेख उधरदा है।
मन अंदर होया झाता है, जिस पिच्छे मस्त हो जाता है।

साईं जी कहते हैं कि जीते-जी मरने का अभ्यास पककर मेरे जीवन का स्वाभाविक भाग बन गया है। मैं प्रतिदिन मरता हूँ और प्रतिदिन जीवित होता हूँ। इस अमल द्वारा ही मैं प्रतिदिन द्वैत से हिजरत* करके इसलाम में दाखिल होता हूँ:

बुल्लया हिजरत विच इसलाम दे, मेरा नित्त है ख़ास अराम।
नित्त नित्त मरां ते नित्त नित्त जीवां, मेरा नित्त नित्त कूच मुकाम।

---

* मुसलमानों में हज़रत मुहम्मद के मक्का से मदीना चले जाने को हिजरत का नाम दिया जाता है और इस तिथि से ही मुसलमानों का हिजरी सन् शुरू होता है। साईं जी इस अमल को सूफ़ीयाना ढंग से वर्णन करते हैं कि आत्मा का नौ द्वारों के मक्का से दसवें दरवाज़े के मदीना पहुँचना हिजरत करना है और इसका नौ द्वारों तथा दृश्यमान संसार की द्वैत (कुफ़्र) से आज़ाद होकर अल्ला-ताला से मिलाप की वहदत में पहुँच जाना इसलाम में दाख़िल हो जाना है।

हुज़ूर स्वामी जी महाराज ने भी संकेत किया है कि जब आत्मा शरीर के नौ द्वारों से सिमटकर आन्तरिक आँख खोल लेती है तो यह अनेकता से एकता में आ जाती है और इसको अन्दर इलाही नूर दिखायी देने लगता है:

बसो तुम आय नैनन में। सिमट कर एक यहँ होना॥
दुई यहँ दूर हो जावे। दृष्टि जोत में धरना॥

(*सारबचन संग्रह*, 19:18:11-12)

इस प्रकार के वर्णन अनेक सन्तों-महात्माओं की वाणी में मिलते हैं। बाइबल में आता है, मैं रोज़ मरता हूँ।* जब तक कोई मनुष्य दोबारा जीवित नहीं होता, वह परमात्मा की दरगाह में प्रवेश नहीं कर सकता।† रूहानी अभ्यास द्वारा जीते-जी मरना ही जीव का शरीर की ओर से मृतक होकर अन्दर दोबारा जीवित होना है।

कबीर साहिब कहते हैं कि जीते-जी मरने का अभ्यास करनेवाले लोग माया में रहते हुए इससे निर्लिप्त रहते हैं और वे सदा के लिए आवागमन के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं:

जीवत मरै मरै फुनि जीवै ऐसे सुंनि समाइआ॥
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ बहुड़ि न भवजलि पाइआ॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 332)

आप कहते हैं कि मौत का मारा व्यक्ति दोबारा जीवित नहीं हो सकता परन्तु जीते-जी मरने का अभ्यास करनेवाला प्राणी सैकड़ों बार मरकर हर बार जीवित हो सकता है:

मरिये तो मरि जाइये, छूटि परै जंजार।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार॥

(*कबीर साखी-संग्रह*, पृ. 56)

सन्त-जन समझाते हैं कि जिस घर में मरकर वहाँ पहुँचना है, जीते-जी मरकर वहाँ पहुँच जाना चाहिये। इस प्रकार मौत का भय समाप्त हो जाता है और स्थायी मुक्ति या अमर जीवन की प्राप्ति हो जाती है:

1. मुइआ जितु घरि जाईऐ तितु जीवदिआ मरु मारि॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 21)

---

* I die daily. (I *Corinthians* 15:31)

† I say unto thee except a man be born again he cannot see the kingdom of God (*John* 3:3)

2. मरणै ते जगतु डरै जीविआ लोड़ै सभु कोइ॥
गुर परसादी जीवतु मरै हुकमै बूझै सोइ॥
नानक ऐसी मरनी जो मरै ता सद जीवणु होइ॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 555)

3. जीवतु मरै मरै फुनि जीवै तां मोखंतरु पाए॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 550)

हज़रत शम्स तब्रेज़ फ़रमाते हैं कि जीवित मरने का अभ्यास करनेवाले प्राणी अन्त समय भी बा-ख़बर जान देते हैं। वे अपने माशूक़ (सतगुरु) के सामने मीठी और सुहानी मौत मरते हैं। मुर्शिद उनकी ग़ैब की आँखें खोल देता है परन्तु शेष लोग अन्धों की तरह मरते हैं। ज्ञानी लोग मरकर अपने प्यारे की ओर जाते हैं, पर अज्ञानियों की जान बेख़बरी और दुःख में निकलती है। जो लोग मालिक के भय से जागकर रात को रूहानी अभ्यास में लगे रहते हैं वे निडर होकर और हँसते हुए सतगुरु के सामने शरीर का त्याग कर देते हैं।*

मौलाना रूम कहते हैं कि अमर जीवन प्राप्त करने के लिए मरने से पहले मरना आवश्यक है। मरने से पहले हम अपनी जान अपने प्यारे के सुपुर्द करके अपनी मरज़ी से जीवन से परे जा सकते हैं।†

आप कहते हैं कि यह ऐसी मौत नहीं है जिससे क़ब्र में जाना पड़े। इससे तो अँधेरे से नूर और दुःख से सुख की ओर जाते हैं। जीवित मरने से मत डरो क्योंकि इस शरीर के अतिरिक्त हमारा एक अन्य शरीर भी है।‡

---

* आशकाने कि बाख़बर मीरंद, पेशे माशूक चूं शकर मीरंद।
औलीआ चशमे ग़ैब बकुशाइंद, बकीआ जुलमा कोर-ओ कर मीरंद।
आरफ़ां जानबे नअईम खंद, ग़ाफ़लां ख़्वार ओ बेख़बर मीरंद।
व आंकि शबहा न खुफ़ता अंदर बीं, जुमला बे खौफ़ ओ बे हजर मीरंद।
व आं कि ईं जा कि आं नजर जुसतंद, शादो ओ खंदां दर नज़र मीरंद।

† बमीर ऐ दोसत पेश अज़ मरग, अगर से ज़िंदगी ख़वाही।
पेशे मुरदन ब मीर ऐ नेको सर, जां बजानां बदेह ज़ जाने ख़ुद गुजार।

‡ नै चुनां मरगे कि दर गोरे रवी, बलकि अज़ जुलमत सूए नूरे रवी।
नै चुनां मरगे कि दर गोरे रवी, मरगे तबदीलीए कि दर सूरे रवी।
आं तूई कि बे बदन दारी बदनं, पस मत्तरस अज़ जिसम ओ जां बेरूं शुदन।

पलटू साहिब कहते हैं कि मौत तो सबकी होती है परन्तु जीवित मरनेवाला जीव परमात्मा का सच्चा भक्त है जो सदा के लिए जन्म-मरण के बन्धनों से आज़ाद हो जाता है:

1. मरते मरते सब मरे, मरै न जाना कोय।
पलटू जो जियतै मरै, सहज परायन होय॥

(*पलटू साहिब की बानी*, भाग 3, साखी 99)

2. जीते जी मरि जाय मुए पर फिर उठि जागै।
ऐसा जो कोइ होइ सोई इन बातन लागै॥

(*पलटू साहिब की बानी*, भाग 1, कुण्डली 72)

दादू साहिब कहते हैं कि सच्चे प्रेमी तन और मन की सुध खोकर जीवत-मृतक हो जाते हैं जिससे उनको अन्दर शब्द का महारस मिल जाता है। उनको आत्मा की पहचान हो जाती है और सच्चे साहिब के दर्शन हो जाते हैं:

ऐसी लागी मरम की, तन मन सब भूला।
जीवत मिरतक ह्वै रहै, गहि आतम मूला॥
चेतनि चितहिं न बीसरै, महा रस मीठा।
सबद निरंजन गहि रह्या, उनि साहिब दीठा॥

(*दादू दयाल की बानी*, भाग 2, शब्द 168)

हज़रत सुलतान बाहू समझाते हैं कि सच्ची फ़क़ीरी जीवित मरने में है और परमात्मा को मिलने का अर्थ भी जीवित मरने से ही प्राप्त होता है:

1. नाम फ़क़ीर तदां ही सोह्न्दा जद जीवंदयां मर जावे हू।
2. मर गए जो मरने थीं पहले, तिन्हां रब्ब नूं पाया हू।
3. मरन थीं अग्गे मर रहे, जिन्हां हक़ दी रमज़ पछाती हू।

साईं बुल्लेशाह हदीस में से 'मूतू क़ब्ल अन तमूतू' के उदाहरण से उपदेश करते हैं कि मरने से पहले मरने का ज्ञान सीखो क्योंकि इस अभ्यास का

साधक मरणोपरान्त दोबारा जीवित हो जाता है। उसको न दरगाह में लेखा देना पड़ता है और न ही नरकों के दु:ख सहने पड़ते हैं। मनुष्य-जन्म का वास्तविक ध्येय परमात्मा से मिलाप करना है जो जीवित मरने के अभ्यास से ही पूरा होता है:

1. मूतू क़बलंता मूतू होया, मोयां नूं फेर जवाली ओ यार।
   बुल्ला शौह मेरे घर आया, कर कर नाच वखाली ओ यार।
2. करां नसीहत वड्डी जे कोई, सुण कर दिल ते लावेंगा।
   मोए तां रोज़े-हशर नूं उट्ठण, आशिक़ न मर जावेंगा।
   जे तूं मरें मरन तों अग्गे, मरने दा मुल पावेंगा।

ध्वनि एवं प्रकाश

जीवित मरने, पूर्ण एकाग्रता या समाधि की अवस्था प्राप्त होने, आन्तरिक आँख खोलने और दसवें दरवाज़े में दाख़िल होने पर जीव को अन्दर क्या अनुभव होता है? इस प्रकार हम मुर्दा लोगों की बस्ती से गुज़रकर अमर जीवन वाले लोगों के देश में पहुँच जाते हैं, 'असीं मोयां दे परले पार जीवंदयां विच बैह्न्दे हां।' आप बताते हैं कि काले कुण्डल के अन्दर छिपे घेरे (शिव-नेत्र या नुक़्ता-ए-सुवैदा) में दाख़िल होनेवाले साधक को तीन प्रकार के अनुभव होते हैं: उसको अन्दर कलमे या शब्द की आवाज़ सुनायी देती है, शब्द या कलमे का नूर दिखायी देता है और सतगुरु के नूरी स्वरूप के दर्शन होते हैं:

'सुराह यासीन' मुज़म्मल वाला,
बदलां गरज संभाली ओ यार।
ज़ुलफ़ स्याह दे विच यद-बेज़ा,
दे चमकार विखाली ओ यार।
जो रंग रंगया गूढ़ा रंगया,
मुर्शिद वाली लाली ओ यार।

अपने अन्दर पहुँचने पर होनेवाले इन तीन अनुभवों का दूसरी तरह भी वर्णन किया है:

अरश-मुनव्वर बांगां मिलियां, सुणियां तख़त लाहौर।
शाह इनाइत कुंडीयां पाईयां, लुक छुप खिचदा डोर।

इस बिन्दु में दाख़िल होने को साईं जी ने ऐसे ठाकुरद्वारे में पहुँचने का नाम दिया है जहाँ अनहद के अनेक नाद गूँजते हैं और परमात्मा का प्रकाश बरसता दिखायी देता है।*

कई सन्तों-महात्माओं ने अपनी वाणी में संकेत किया है कि अन्दर दसवें दरवाज़े में प्रवेश करने से आत्मा को शब्द या कलमे की आवाज़ सुनायी देती है और शब्द या कलमे का प्रकाश दिखायी देता है। ख़्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं कि ध्यान को छ: चक्रों और सातवें आसमान से परे ले जाएँ तो अन्दर शब्द की पाँच नौबतें सुनायी देने लगती हैं।†

हज़रत शम्स तब्रेज़ कहते हैं कि ख़याल का तम्बू शरीर के छ: चक्रों से उखाड़कर अन्दर सातवें आसमान में गाड़ दें तो अन्दर (ख़ुदा के कलमे की) पाँच धुनें सुनायी देने लगती हैं।‡

कबीर साहिब कहते हैं कि जब नौ दरवाज़े बन्द कर लें तो अन्दर अनहद के बाजे बजने सुनायी देने लगते हैं, 'मूंदि लीए दरवाजे॥ बाजीअले अनहद बाजे॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 656) गुरु अमर दास जी कहते हैं कि शरीर के नौ द्वारों से ऊपर मुक्ति का दरवाज़ा लगा हुआ है जिसकी यह निशानी है कि उसमें दिन-रात अनहद शब्द बज रहा है:

नउ दरवाजे दसवै मुकता अनहद सबदु वजावणिआ॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 110)

---

* (क) देखिये काफ़ी: 'इश्क़ दी नवियों नवीं बहार।'
(ख) देखिये इसी पुस्तक के पृ. 85 पर दी गयी 'जां मैं सबक इश्क़ दा पढ़या।'

† ख़ामोश ओ पंज नौबत बिशनौ ज़ि आसमाने,
क-आँ आसमाने-बैरूँ ज़ां हफ़्त ओ ईं शश आमद।

‡ ब-हफ़्तम चर्ख़ नौबत पंच दारी, चू ख़ैमां ज़ि शश जिहत बरकंदा बाशी।

आप संकेत करते हैं कि हमारे अन्दर (आँखों के पीछे) एक ज्योति जल रही है जिसमें से शब्द की आवाज़ निकल रही है। इस आवाज़ को सुनने से दुनिया का मोह टूट जाता है और परमात्मा से सच्चा प्यार पैदा हो जाता है:

अंतरि जोति निरंतरि बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 634)

पलटू साहिब फ़रमाते हैं कि जब हम समाधि की अवस्था में ध्यान को उलटे कुएँ (आँखों से ऊपर के भाग) में ले आते हैं तो अन्दर एक चिराग़ जलता दिखायी देता है जिसकी ज्योति से एक आवाज़ निकल रही है:

उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥
तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।
छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती॥
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर में आवै।
बिना सतगुरु कोउ होय, नहीं वा को दरसावै॥
निकसै एक अबाज चिराग की जोतिहिं माहीं।
ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाहीं॥
पलटू जो कोई सुनै ता के पूरे भाग।
उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥
(*पलटू साहिब की बानी*, भाग 1, कुण्डली 169)

फ़ना और बका

इस चर्चा की पृष्ठभूमि में ही यह बात सोच लेनी चाहिये कि सूफ़ी फ़क़ीरों के 'फ़ना-फ़ि-शैख़' (गुरु में समा जाना) और 'फ़ना-फ़ि-अल्लाह' (परमात्मा में समा जाना) आदर्श केवल मानसिक कल्पना न होकर निश्चित रूहानी आध्यात्मिक अवस्था के सूचक पद हैं। साईं जी की सारी वाणी इस भाव को प्रकट करती है कि 'राँझा-राँझा' करती हुई हीर स्वयं राँझा हो जाती है।

सिमरन और ध्यान के अभ्यास द्वारा आत्मा शरीर और मन-इन्द्रियों से अलग होकर पहले सतगुरु की और फिर परमात्मा की ज़ात में लीन हो जाती है। साधक को अमली तौर से रूहानी साधना द्वारा यह अवस्था प्राप्त करनी पड़ती है। इस अवस्था की प्राप्ति ही हर सच्चे सूफ़ी साधक की और हर प्रकार की सच्ची रूहानी साधना की वास्तविक मंज़िल है।

साईं जी अपनी काफ़ी 'नी मैं हुण सुणया इश्क़ शराअ की नाता' में कहते हैं, 'अंदर साडे मुर्शिद वसदा, नेहों लग्गा तां जाता।' इसी प्रकार अपनी काफ़ी 'कदी अपनी आख बुलाओगे' के अन्तिम पद में कहते हैं कि जब तक शिष्य गुरु में समाकर गुरु का रूप नहीं हो जाता, वह अन्दर परमात्मा का दर्शन नहीं कर सकता:

बुल्ला शौह नूं वेखण जाओगे, इन्हां अक्खियां नूं समझाओगे।
दीदार तदांही पाओगे, बण शाह इनायत घर आओगे।

आप संकेत करते हैं कि मेरा तन, मन, जान और आत्मा जो कुछ है, प्रियतम का रूप हो चुका है। इसलिए मुझे प्रियतम में ही समा जाना है:

मैं बेगुण क्या गुण कीआ है,
तन पिया है, मन पिया है।
ओह पिया सो मेरा जीआ है,
पिया पिया से रल मिल जाओगे।

आप कहते हैं कि जब आपने फ़ना आपे या अहं को दूर कर लिया तो ख़ुदा ही ख़ुदा बाक़ी रह गया और मैं ख़ुदा का रूप हो गया, चाहे इस भेद को प्रकट करने के लिए मुझे भी मंसूर की तरह सूली पर चढ़ाया जा सकता है:

मैं फानी आप को दूर करां, तैं बाकी आप हज़ूर करां।
जे अज़हर वांग मनसूर करां, खड़ सूली पकड़ चढ़ाओगे।
कदी आपणी आख बुलाओगे।

'नी सइयो मै गई गवाती' काफ़ी में भी संकेत करते हैं कि जब ख़ुदी, नफ़्स या अहं को फ़ना कर दिया तो आत्मा सब जगह हक़ीक़त में समाकर उसी का रूप हो गयी:

नी सइयो मैं गई गवाती, खोल घूंघट मुख नाची।
जित वल वेखां दिसदा ओही, कसम ओसे दी होर न कोई।
ओहो मुहकम फिर गई दोही, जब गुर पत्तरी वाची।
नाम निशान न मेरा सइयो, जां आखां तां चुप्प कर रहियो।
एह गल्ल मूल किसे न कहियो, बुल्ला ख़ूब हक़ीक़त जाची।

कलमा या शब्द

साईं बुल्लेशाह ने पीछे समझाया था कि जब आत्मा शरीर के नौ द्वार पार करके दसवें दरवाज़े में पहुँच जाती है – 'दर दसवें ते आण खलोया' तो वहाँ जाकर अनहद शब्द या अनहद नाद से जुड़ जाती है, जो पल-पल, क्षण-क्षण अन्दर धुनकारें दे रहा है। यह शब्द सचखण्ड से आ रहा है और यही जीवात्मा को अपने में लपेटकर, इसको सब रूहानी मण्डल पार कराता हुआ वापस धुरधाम ले जाने का काम करता है।

इस अनहद शब्द या अनहद नाद को ही सूफ़ी दरवेशों ने कुन, ख़ुदा का कलमा, ख़ुदा का कलाम, बाँगे-आसमानी, निदाए-सुलतानी, बाँग, सौत, इस्मे आज़म, सुलतान-उल-अज़कार आदि कई नामों से पुकारा है। मुर्शिद की सहायता से अन्दर इस कलमे से जुड़ने को ही मुर्शिद से बैअत होना (नामदान पाना) या मुर्शिद के कलमे में आना कहा जाता है। साईं जी कहते हैं कि मैं नीच तो इल्म के अन्दर बन्द था, मुर्शिद ही बख़्शिश करके मुझे कलमे में ले आया। फिर पता चला कि कलमे से मिलाप के बिना जीव किसी काम का नहीं और कलमे के बिना संसार से छुटकारा पाने का कोई साधन नहीं है:

असीं आजज़ विच कोट इल्म दे, ओसे आंदे विच क़लम दे।
बिन कलमे दे नाहीं कंम दे, बाझों कलमे पार नहीं।

कलमे या शब्द के दो भेद

कलमा, शब्द या नाम दो प्रकार का है – सिफ़ाती और ज़ाती अर्थात् वर्णात्मक और धुनात्मक। परमात्मा के अनेक गुणों के आधार पर रखे गये उसके नाम

जो लिखने, पढ़ने और बोलने में आ सकते हैं, सिफ़ाती या वर्णात्मक नाम हैं। परमात्मा, हरि, ओम, राम, रहीम, अल्लाह, ख़ुदा, जेहोवा, वाहिगुरु, राधास्वामी आदि सब सिफ़ाती या वर्णात्मक नाम कहलाते हैं। दूसरा सच्चा कलमा, सच्चा शब्द या सच्चा नाम है। यह ईश्वर की सृष्टि की रचना करनेवाली शक्ति है जो ध्वनि और प्रकाश की तरंगों के रूप में संसार के कण-कण में और प्रत्येक मनुष्य के अन्दर समाई हुई है। यह कुन, कलमा, शब्द या नाम ही सृष्टि का कर्ता है, यही सृष्टि का आधार है और यही जीव को संसार से मुक्त करनेवाली असली शक्ति है। सब कामिल फ़क़ीर आदिकाल से इस सच्चे कलमे, शब्द या नाम की महिमा करते चले आ रहे हैं क्योंकि यह परमात्मा द्वारा परमात्मा को मिलने के लिए प्रत्येक मनुष्य के अन्दर रखा गया स्वाभाविक साधन है। यह कलमा, शब्द या नाम अनादि, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञाता है। यह शब्द या कलमा परमात्मा का ही क्रियात्मक रूप है।

हुज़ूर स्वामीजी महाराज फ़रमाते हैं कि लिखने, पढ़ने और बोलने में आनेवाले नाम बहिर्मुखी हैं। धुन रूप में प्रकट परमात्मा की शक्ति प्रत्येक जीव के अन्दर है। वर्णात्मक नाम अनेक हैं, परन्तु धुनात्मक नाम एक है। वर्णात्मक नाम साधन या माध्यम है, धुनात्मक नाम परमेश्वर का निज-रूप है, इसलिए यही असल मंज़िल या ध्येय है।* सब धर्मों के कर्मकाण्ड अलग-अलग हैं परन्तु इनको एक ही रूहानी आधार पर खड़ा करनेवाली वस्तु कलमा, शब्द या नाम ही है।

अनहद शब्द या सच्चा कलमा

इस सम्बन्ध में साईं जी की काफ़ी 'बंसी अचरज कान्ह बजाई' विचार करने के लिए नीचे दी जा रही है:

बंसी अचरज कान्ह बजाई।
बंसी वालया चाका रांझा, तेरा सुर सभ नाल है सांझा।
तेरियां मौजां साडा मांझा, साडी सुरती आप मिलाई।

* *सारबचन संग्रह,* 10:1.

बंसी वालया कान्ह कहावें, शब्द अनेक अनूप सुणावें।
अक्खियां दे विच नज़र न आवें, कैसी बिखड़ी खेड रचाई।

बंसी सभ कोई सुणे सुणावे, अर्थ एहदा कोई बिरला पावे।
जो कोई अनहद दी सुर पावे, सो इस बंसी दा शैदाई।

सुणियां बंसी दीआं घनघोरां, कूकां तन मन वांगूं मोरां।
डिट्ठियां उस दीआं तोड़ां जोड़ां, इक सुर दी सभ कला उठाई।

इस बंसी दे पंज सत्त तारे, आपो अपणी सुर भरदे सारे।
इक्को सुर सभ विच दम मारे, साडी उस ने होश भुलाई।

इस बंसी दा लंमा लेखा, जिसने ढूंडा तिस ने देखा।
सादी इस बंसी दी रेखा, एस वजूदों सिफ़त उठाई।

बुल्ला पुज पए तकरार, बूहे आण खलोते यार।
रक्खीं कलमे नाल ब्योपार, तेरी हज़रत भरे गवाही।

आपने सारी काफ़ी में अनहद शब्द की बाँसुरी की महिमा का वर्णन किया है परन्तु अन्तिम तुक में इसको कलमा कहा है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि आप 'शब्द' या 'अनहद शब्द' और 'कलमे' को एक ही अर्थ में प्रयोग कर रहे हैं। आप परमात्मा और सतगुरु दोनों को 'बंसीवाला रांझा' या 'बंसी वाला कान्ह' कहते हैं अर्थात् सतगुरु और परमेश्वर दोनों के अस्तित्व का सार शब्द या कलमा है। इस बाँसुरी का स्वर सार्वजनिक है अर्थात् सब जीवों के अन्दर और सारी सृष्टि में इसकी ध्वनि गूँज रही है। 'साडी सुरती आप मिलाई' अर्थात् सुरत, शब्द, सतगुरु, परमात्मा सबके अस्तित्व का सार एक होने के कारण ही ये आपस में अभेद हो सकते हैं क्योंकि केवल हमजिंस (एक प्रकार की) वस्तुएँ ही आपस में लीन हो सकती है।

बहुत कम जीवों को अनहद की बाँसुरी का ज्ञान होता है परन्तु जो एक बार इसके मतवाले बन जाते हैं, उनको पता लग जाता है कि सृष्टि की रचना करनेवाली शक्ति ही यह ध्वनि है, 'इक सुर दी सभ कला उठाई।'

'इस बंसी दा लंमा लेखा' – शब्द की ध्वनि अथाह है। इसकी 'सादी रेखा' – यह द्वैत से मुक्त है। 'एस वजूदों सिफ़त उठाई' – इसके द्वारा प्रभु के अस्तित्व से तीन गुण उत्पन्न हुए, जिससे सारी सृष्टि रची गयी।

'इस बंसी दे पंज सत्त तारे...इक्को सुर सभ विच दम मारे' अर्थात् यह ध्वनि एक है, अखण्ड है और स्वयंभू अर्थात् अपने आपमें आप है। यह एक ध्वनि अलग-अलग रूहानी मण्डलों में अलग-अलग रूपों में सुनायी देती है।

इस अनहद की ध्वनि में लीन होकर सुरत हर प्रकार के द्वैत से मुक्त होकर प्रियतम के द्वार पर पहुँच जाती है। हर प्रकार की करनी त्यागकर इस बाँसुरी, शब्द या कलमे के साथ ही सम्बन्ध रखना चाहिये क्योंकि इस की कमाई करनेवाले व्यक्ति के अन्त समय उसका सतगुरु सहायक सिद्ध होता है, 'रक्खीं कलमे नाल ब्योपार, तेरी हज़रत भरे गवाही।'

आपने 'आओ फ़क़ीरो मेले चल्लिए' में कलमे या शब्द को 'अनहद का बाजा', 'आरिफ़ (ब्रह्मज्ञानी) दा वाजा' या 'अनहद शब्द' कहा है। आप कहते हैं कि फ़क़ीरी या योग बाहरी भेख या त्याग का नहीं, मन को अन्दर अनहद के बाजे से जोड़ने का नाम है, 'कायम करो मन बाजा रे।' इस कलमे, शब्द या नाम से मिलाप किये बिना संसार का मेला किसी काम का नहीं। शब्द के बिना मूल और ब्याज (मनुष्य-जन्म और शुभ-कर्म) व्यर्थ चले जाते हैं। परन्तु जो व्यक्ति अन्दर इससे जुड़ जाता है, शब्द उसको मनुष्य से परमात्मा बना देता है:

आओ फ़क़ीरो मेले चल्लिए, आरफ़ का सुण वाजा रे।
अनहद शबद सुणो बहु रंगी, तजीए भेख प्याजा रे।
अनहद वाजा सरब मिलापी, निरवैरी निरसाजा रे।*
मेले बाझों मेला औंतर, रुढ़ गया मूल ब्याजा रे।

* **सरब मिलापी**=कुछ पुस्तकों में पाठ 'सुख मिलापी' है जिसका अर्थ शीघ्र मिलाप करानेवाला है; **निरवैरी**=गुरु नानक साहिब ने सतनाम या परमात्मा को निर्वैर कहा है। साईं जी भी शब्द या नाम की पूर्ण एकता की ओर संकेत कर रहे हैं। वैर का आधार द्वैत है।

कठिन फ़क़ीरी रस्ता आशिक, कायम करो मन बाजा रे।*
बंदा रब्ब भयो इक बुल्ला, सुख पड़ा जहान बराजा रे।

साईं जी ने कलमे या अनहद शब्द का 'कुन फ़यीकून दी आवाज़ा' कहकर यह संकेत दिया है कि परमात्मा के हुक्म या शब्द की ध्वनि ही संसार की कर्ता है।† आपने *क़ुरान शरीफ़* की आयतों के उद्धरण से इसको 'गंज मख़फ़ी की बंसरी' अर्थात् परमात्मा रूपी गुप्त कोष की शब्द ध्वनि भी कहा है। इसको आपने 'लामकान की पटड़ी पर बैठकर बजानेवाला नाद' भी कहा है और इसके अर्श-कुर्सी (गगन-मण्डल) की बाँग का नाम दिया है:

1. तूं आयों ते मैं न आई, गंज मख़फ़ी दी तैं मुरली बजाई।
   आख अलस्त गवाही चाही, ओथे कालूबला सुणायो ई।
   सईयो हुण मैं साजन पायो ई।

   (*कुलियात बुल्लेशाह*, 75)

2. ला मकान दी पटड़ी उत्ते, बह के नाद वजावांगी।
3. अरश कुरसी ते बांगां मिलियां, मक्के पै गया शोर।

शब्द की ध्वनि की महिमा

सन्त नामदेव जी संकेत करते हैं कि हम अखण्ड मण्डल में अनहद की वीणा बजाकर सहज ही धुरधाम पहुँच सकते हैं।

बेद पुरान सासत्र आनंता गीत कबित न गावउगो॥
अखंड मंडल निरंकार महि अनहद बेनु बजावउगो॥

* सच्ची फ़क़ीरी और सच्चे इश्क़ का असल मार्ग मन को अन्दर शब्द में खड़ा करना है जो बहुत कठिन काम है।

† गुरु नानक साहिब ने भी कहा है, 'कीता पसाउ एको कवाउ' अर्थात् सृष्टि परमात्मा के हुक्म या शब्द का खेल है। सृष्टि-रचना सम्बन्धी इस प्रकार के संकेत संसार के कई अन्य धर्म-ग्रन्थों में भी मिलते हैं।

बैरागी रामहि गावउगो॥
सबदि अतीत अनाहदि राता आकुल कै घरि जाउगो॥*

(नामदेव – आदि ग्रन्थ, पृ. 972-73)

पलटू साहिब कहते हैं कि जीव रूहानी मण्डलों में जाकर परमात्मा के शब्द की तान सुनकर उस तान में ही समा जाता है:

पुरुष अलापै तान सुना मैं एक ठो जाई।
वाहि तान के सुनत तान में गई समाई॥

(*पलटू साहिब की बानी*, भाग 1, कुण्डली 175)

हज़रत ईसा कहते हैं, देखो, आकाश में द्वार खोल दिया गया है और जो पहली आवाज़ मुझे सुनायी दी, वह ऐसी थी जैसे बिगुल मेरे साथ बातें कर रहा हो। उसने मुझसे कहा, तू इधर आ, मैं तुझे इससे आगे की चीज़ें दिखाऊँ।† फिर वे कहते हैं, मैं आत्मा में था (अर्थात् शरीर को छोड़कर शब्द में आ गया था) और मैंने बिगुल की भारी और ऊँची आवाज़ सुनी।‡

ख़्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं, कोई नहीं जानता कि मेरे प्यारे की मंज़िल कहाँ है, इतनी बात अवश्य है कि वहाँ से घण्टे की आवाज़ आ रही है।§

आपने आन्तरिक मण्डलों में शब्द की अलग-अलग रूप में सुनायी देनेवाली ध्वनि का भी वर्णन किया है। आप कहते हैं, सुनो, कामिल फ़क़ीर सुर करके आहंग, चंग, बरबत, तंबूरे और बाँसुरियाँ सुना रहे हैं अर्थात् अन्दर अलग-अलग रूहानी मण्डलों की ध्वनियाँ सुन रहे हैं।¶

---

* बिना बजाये बजनेवाले निर्लेप शब्द में समाकर कुल-रहित (भाव अजन्मा, अयोनि) परमात्मा से मिलाप करूँगा।

† Behold, a door was opened in heaven and the first voice which I heard was as it were, of a trumpet talking with me, which said:Come up hither and I will show thee things which must be hereafter. (*Rev.* 4:1)

‡ I was in the Spirit on the Lord's Day, and heard behind me a loud voice, as of a trumpet. (*Rev.* 1:10)

§ कस नदानसत कि मंजले गाहे माशूक कुजा असत,
ई कदर हसत कि बांगे जरस मे आयद।

¶ बिशनौ कि मुतरवाने चमन रासत करदह अंद, आहंग चंग बरबत व तंबूर व वाए नै।

मौलाना रूम कहते है, हज़रत मुहम्मद ने फ़रमाया है कि मेरे कानों में साधारण आवाज़ की तरह परमात्मा की आवाज़ आ रही है। परमात्मा ने तुम्हारे कानों पर मोहर लगायी हुई है ताकि तुम उस आवाज़ को न सुन सको।*

मौलाना शैख़ मुहम्मद अकरम साबरी ने अपनी पुस्तक *इक़्तबास-उल-अनवार* के पृष्ठ 36 और 106 पर लिखा है कि हज़रत मुहम्मद वर्षों तक ग़ारे-हिरा (एक गुफा) में 'आवाज़े-मुस्तकीम' (सीधी और पक्की आवाज़) या सुल्ताने-अलाफ़ा (सुल्तान-उल-अज़कार या इस्मे आज़म) के अभ्यास में लीन रहे। इसी पुस्तक के पृष्ठ 106 पर यह भी लिखा है कि क़ादिरी सूफ़ी सम्प्रदाय के प्रवर्तक हज़रत अब्दुल क़ादिर जीलानी ने भी कई वर्ष इसी गुफा में अभ्यास किया।†

मुहम्मद दारा शिकोह लिखता है कि सारा संसार उस परमात्मा के कलाम की आवाज़ और नूर से भरपूर है फिर भी अन्धे लोग पूछते हैं कि परमात्मा कहाँ है। कानों में से चतुराई और अहं की रूई निकाल दें तो सारी सृष्टि के सच्चे विधाता की दरगाह से आ रही कलमे या शब्द की आवाज़ सुनायी देने लगेगी। मालूम नहीं कि लोग क़यामत के दिन बजनेवाले बिगुल की क्यों प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब कि शब्द या कलमे के बिगुल की आवाज़ सदा ख़ुदा की दरगाह से हरएक के अन्दर आ रही है।‡

आप कहते हैं कि कलमे या शब्द का अभ्यास सबसे ऊँची रूहानी करनी है। आप हदीसों, हज़रत मुहम्मद साहिब की आदरणीय धर्मपत्नी बेगम खदीजा, हज़रत ग़ौस-अस-साकलैन और अपने मुर्शिद के उद्धरण से कहते

---

* गुफ़्त पैगंबर की आवाज़े ख़ुदा,
में रसद दर गोशे मन हमचू सदाअ।
मुहर बर गोशे शुमा बिनहादे हक,
ता सबब आवाजे ख़ुदा नारद सबक।

† *गुरुमत सिद्धान्त*, भाग पहला: राधास्वामी सत्संग ब्यास, नौवाँ संस्करण, 2002, पृ. 370

‡ बर आवर पंबा पंदारत अज़ गोश, नदाइ-वाहद-उल कहार बनीओश।
नदा मी आइद अज़ हक बर दवामत, चरा गशती तू मौकूफ़ किआमत।

(*रिसाला-ए-हक-नुमा*, पृ. 16)

हैं कि हज़रत मुहम्मद, पैग़म्बर बनने से पहले और बाद में शब्द या कलमे की आवाज़ का अभ्यास किया करते थे।*

हज़रत सुलतान बाहू ने भी कहा है कि कलमे या शब्द का अभ्यास लाखों पापियों को पार करनेवाला और साधारण राहियों को वली-अल्लाह बनानेवाला है:

कलमे लक्ख करोड़ां तारे, वली कीते सै राहीं हू।
कलमे नाल बुझाए दोज़ख, जिथ अग्ग बले अज़गाही हू।

हज़रत जिल्ली (जन्म 1365) अपनी प्रसिद्ध रचना इनसानुल कामिल में हक़ीक़त-उल-मुहम्मदियाँ के विषय में लिखते हैं, उसका एक नाम परमात्मा का शब्द या अमर है और वह सारी सृष्टि से सुन्दर, ऊँचा और महान् है।

---

* "This practice of hearing the voice of the silence is path of the Faqirs, the *Sultan-ul-azkar* or the king of all practices."

"This sound existed from before the creation of the worlds, and exists even now and will continue to exist even when the worlds enter into non-existence. This sound is called the infinite and absolute sound. There is no practice higher than that of hearing this sound."

"From many authentic traditions, collected in the six authentic *Hadis* volumes, we learn that our Prophet was devoted to this practice, both before and after his attaining the rank of prophet-hood. But none of the learned men have found out the secret of this mystery, and have not consequently tried to practise it."

A story is related from our blessed lady Khadija, about the Prophet: "The Prophet, before he became inspired, used to go into a cave called the cave of *Hurrah*, which is a famous and well-known cave in the suburbs of Mecca. He used to take with him there some bread (for he remained there for days together absorbed in this meditation). There he used to practise this hearing of sound. The result of this practice was that the form of Gabriel appeared before him, and that was the commencement of the inspiration of that leader of mankind, and all that followed after that event is well-known to every one, and needs no recounting here."

(शेष अगले पृष्ठ पर)

उसकी शान सबसे ऊँची है, कोई अन्य उसके बराबर नहीं है।* इससे भी यही संकेत मिलता है कि न केवल शब्द या कलमे का अभ्यास ही मूल करनी है बल्कि पैग़म्बर के अस्तित्व का सबसे ख़ास पहलू उसमें कार्यशील प्रभु का शब्द या कलमा है।

निर्गुणवादी सन्त शब्द या कलमे में लीन होकर शब्द या कलमे का रूप हो गए पूर्ण पुरुष के अतिरिक्त किसी दूसरे को सतगुरु नहीं मानते। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि वह परमात्मा स्वयं को सतगुरु में समाकर उसके द्वारा अपने शब्द या कलमे की दौलत जीवों में बाँटता है, 'गुर महि आपु समोइ सबदु वरताइआ॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1279) हुज़ूर स्वामी जी महाराज फ़रमाते हैं कि सच्चा गुरु वह है जो शब्द की कमाई करता हुआ शब्दरूप हो गया है। जो शब्द की कमाई नहीं करता, वह गुरु कहलाने के योग्य नहीं है:

गुरु सोई जो शब्द सनेही। शब्द बिना दूसर नहिं सेई॥
शब्द कमावे सो गुरु पूरा। उन चरनन की हो जा धूरा॥

(*सारबचन संग्रह*, 13:1:1-2)

(पिछले पृष्ठ का शेष)

"Hazrat Mianji used to say that Ghaus-us-saqlain related, "Our Prophet was in the cave of Hurrah for six years plunged in this meditation of *Sultan-ul-azkar*, and I myself have been in that cave for twelve years engaged in the practice of this meditation, and many wonderful and mighty things have been revealed to me."

Muhammad Dara Shikoh, Risala-i-Haq-Nama (The Compass of Truth), English rendering by Rai Bahadur Srisa Chandra Vasu; Published by The Panini Office, Bhuvaneswari Asrama, Allahabad, 1912, pp. 16-19.

* "One of his names is Word of God (*Amru'llah*) and he is the most sublime and exalted of all existence. In regard to dignity and rank he is supreme."

John A. Subhan, *Sufism-Its Saints and Shrines*: The Lucknow Publishing House, Lucknow, 1960, p. 59

शब्द मारगी गुरू न होवे। तो झूठी गुरुवाई लेवे॥
गुरू सोई जो शब्द सनेही। शब्द बिना दूसर नहिं सेई॥

(*सारबचन संग्रह*, 16:1:4-5)

परम सन्त तुलसी साहिब संकेत करते हैं कि भारत के अनेक पूर्ण सन्तों ने ही नहीं, अनेक मुसलमान कामिल फ़क़ीरों ने भी सुलतान-उल-अज़कार या सुरत को शब्द से जोड़ने का अभ्यास किया और सुरत-शब्द-योग का ही प्रचार किया:

1. सुरति मिलै सब्द में जाई। ये सब संतन पंथ बताई।

(*घट रामायण*, भाग 2, पृ. 99)

2. मनसूर सरमद बू अली और शमस मौलाना हुए।
पहुँचे सभी इस राह से, जिसने कि दिल पुख़ता किया।

कबीर साहिब फ़रमाते हैं कि संसार के सारे ग्रन्थों का सार आत्मा को शब्द से जोड़ना (सुरत को शब्द में लीन करना) है क्योंकि यही परमानन्द परमेश्वर की प्राप्ति का वास्तविक साधन है:

1. कबीर आधी साखि यह, कोटि ग्रंथ करि जान।
नाम सत्त जग झूठ है, सुरत सबद पहिचान॥

2. नाम रटत इस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरत सबद एकै भया, जलही ह्वैगा मीन॥

(*कबीर साखी-संग्रह*, पृ. 103, 92)

गुरु नानक साहिब कहते हैं कि मन को वश में करने और परमात्मा से मिलकर परम आनन्द प्राप्त करने का एकमात्र साधन सुरत को शब्द में लीन करना है, अन्य किसी साधन के विषय में सोचने की आवश्यकता नहीं:

राम नामि मनु बेधिआ अवरु कि करी वीचारु॥
सबद सुरति सुखु ऊपजै प्रभ रातउ सुख सारु॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 62)

पलटू साहिब फ़रमाते हैं:

सुरत सब्द के मिलन में मुझ को भया अनंद॥
मुझ को भया अनंद मिला पानी में पानी।
दोऊ से भा सूत नहीं मिलि कै अलगानी॥
. . . . . .
पलटू सतगुरु साहिब काटौ मेरी बंद।
सुरत सब्द के मिलन में मुझ को भया अनंद॥

(*पलटू साहिब की बानी*, भाग 1, कुण्डली 89)

साईं बुल्लेशाह फ़रमाते हैं कि जब मेरे अन्दर शब्द की गुप्त मुरली का राग प्रकट हो गया तो मन में संसार की नश्वरता और प्रियतम के वियोग की भावना गहरी हो गयी। अनहद शब्द के बाण से मनरूपी चंचल मृग वश में आ गया और मन मस्ती में आकर भगवत् प्रेम का पाठ पढ़ने लगा:

मुरली बाज उठी अणघातां, सुण के भुल्ल गइयां सभ बातां।*
लग्ग गए अनहद बाण न्यारे, झूठी दुनिया कूड़ पसारे।
साईं मुख वेखण दे वणजारे, मैनूं भुल्ल गइयां सभ बातां।
हुण मैं चंचल मिरग फहाया, ओसे मैनूं बंन्ह बहाया।†
सिरफ़ दुगाना इश्क़ पढ़ाया, रह गइयां त्रै चार रकातां।

जैसे-जैसे कलाल (साकी अर्थात् मुर्शिद) अनहद शब्द के जाम भरकर पिलाता है, आत्मा इसकी मस्ती में खो जाती है। उस समय यह प्रियतम का पल भर का वियोग भी सहन नहीं कर सकती:

अनहद वाजा वज्जे सुहाना, मुतरिब सुघड़ां तान तराना।
नमाज़ रोज़ा भुल गया दुगाना, मध प्याला देण कलाल नी।
घड़याली देओ निकाल नी, अज्ज पी घर आया लाल नी।

---

* **अणघातां**=अपने आप, अचानक।

† चंचल मन वश में कर लिया।

ऐसे दरवेश के लिए हिन्दुओं के नाद और मुसलमानों की बाँग के झगड़े समाप्त हो जाते हैं क्योंकि उसे पता लग जाता है कि नाद और बाँग अनहद शब्दरूपी एक ही असलियत के दो नाम हैं:

जब जोगी तुम वसल करोगे, बांग कहो भावें नाद वजावे।
भगति भगत नतारो नाहीं, भगत सोई जेहड़ा मन भावे।

आप इस कलमे या नाद को ही 'रसूल की बाँग' कहते हैं, जिसको सुनकर फूल खिल उठता है अर्थात् सदियों से उलटा पड़ा हृदय-कमल सीधा हो जाता है। फिर मुर्शिद से अन्दर ही मिलाप हो जाता है जो नबी से मिलाप कराता है।* वहाँ पहुँचकर भक्त की आत्मा पल भर के लिए उस स्वरूप का वियोग सहन नहीं करती और सदा के लिए सतगुरु में लीन हो जाती है:

1. मिली है बांग रसूल दी फुल खिड़या मेरा।
   सद्दा होया मैं हाज़री हां हाज़र तेरा।
   हर पल तेरी हाज़री एहो सजदा मेरा।
2. जेहड़ा मन विच लग्गा दूआ रे, एह कौण कहे मैं मूआ रे।
   तन सभ इनायत हूआ रे, फिर बुल्ला नाम धराया ए।

साईं जी ने 'तन सभ इनायत हूआ रे', 'अंदर साडे मुरशद वसदा', 'रांझा रांझा करदी नी मैं आपे रांझा होई', 'हुण मैंनूं मजनूं आखो ना, दिन दिन लैला हुंदा जां' आदि के जो संकेत दिये हैं, इनसे पता लगता है कि मुर्शिद के अस्तित्व का आधार कलमा, नाम या शब्द है और शिष्य के अस्तित्व का आधार सुरत या आत्मा है और दोनों का आधार परमात्मा या उसका शब्द है। सुरत अन्दर शब्द में लीन होकर पहले सतगुरु का और फिर परमात्मा का स्वरूप हो जाती है।

* दारा शिकोह ने भी *रिसाला-ए-हक़-नुमा* के पृष्ठ सात पर संकेत किया है कि जब हम ठीक ढंग से भक्ति में लगे रहते हैं तो रूहानी तरक़्क़ी करते हुए ऐसी अवस्था में पहुँच जाते हैं जिसमें अन्दर सतगुरु का स्वरूप प्रकट हो जाता है, जो साधक की, हज़रत मुहम्मद, उसके ख़लीफ़ाओं, सन्तों, फ़क़ीरों और प्रभु के मित्रों से मुलाक़ात कराता है।

रूहानी करनी का सार: कलमा या शब्द

शिष्य को जो कुछ मिलता है, इस कलमे, शब्द या नाम की कमाई से मिलता है, इसलिए साईं जी ने उसको बार-बार परलोक का धन या चलते समय काम करनेवाला तोसा इकट्ठा करने की ताकीद की है:

1. इक रब्ब दा नां खज़ाना ए, संग चोरां यारां दानां ए।
   ओह रहमत दा खसमाना ए, संग ख़ौफ़ रकीब बणाया ए।
2. बुल्ला एथे रहिण न मिलदा, रोंदे पिटदे चल्ले।
   इक नाम ओसे दा खरची, होर बचया नहीं कुझ पल्ले।
   मैं सुपना सभ जग भी सुपना, होर सुपना लग्गे बिआना।*
   ख़ाकी ख़ाक स्यों रल जाना।
3. क्या सरधन क्या निरधन पौड़े, आपो अपणे वतन को दौड़े।†
   लाहा नाम लै लयो सभारे, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे।
4. बुल्ला बात अनोखी एहा, नच्चण लगी तां घुंघट केहा।
   तुसीं परदा अक्खीं थीं लाहो, तुसीं रल मिल नाम ध्याओ।‡

आप समझाते हैं कि हर प्रकार की तृष्णा को शान्त करनेवाला साधन परमात्मा का नाम है। हर हालत में प्रभु का नाम जपना चाहिये क्योंकि यही मनुष्य-जन्म को सफल बनानेवाला, भवसागर से पार करानेवाला और परलोक को सँवारनेवाला एकमात्र साधन है:

1. भुक्ख मरेंदेंआ नाम अल्ला दा, एहो बात चंगेरी ए।
   दोवें थोक पत्थर थीं भारे, औखी जही एह फेरी ए।
   जे सड़सें तूं इस जग अंदर, अग्गे सरदी पावेंगा।

* **बिआना**=दूसरा, नाम को छोड़कर शेष सबकुछ स्वप्न या झूठा है। गुरु अर्जुन साहिब ने भी फ़रमाया है: 'खोजत खोजत खोजिआ नामै बिनु कूरु' (आदि ग्रन्थ, पृ.811) या 'खोजत खोजत खोजि बीचारिओ राम नामु ततु सारा ' (आदि ग्रन्थ, पृ.611)।

† **सरधन**=धनवान, अमीर; **निरधन**=ग़रीब।

‡ **तुसीं...लाहो**=आँखों से अज्ञान का परदा उठा दो।

2. नाम साईं दे कंढे लवाए, खिड़ पई गुलज़ार।
वाह वाह छिंज पई दरबार।

इस चर्चा की पृष्ठभूमि में पूर्व इतिहास में शब्द, कलमा या कलमे के विषय में पृथक-पृथक धर्मों में हुए महान् सन्तों, फ़क़ीरों द्वारा प्रकट किये गये विचार विशेष ध्यान की माँग करते हैं।

हिन्दू धर्म और शब्द या कलमा

ऋषियों ने इसको शब्द, नाद, वाक्, आकाशवाणी, दिव्य ध्वनि, राम धुन आदि कहा है और इसको सृष्टि का कर्ता माना है।* सामवेद में आता है कि शब्द ही परमात्मा है और शब्द ही कर्ता है: 'शब्द ब्रह्म नि:शब्द ब्रह्म प्रणवों ब्रह्म।' उपनिषद् शब्द, अनहद शब्द, वाक्, उद्गीत और आकाशवाणी की महिमा से भरे पड़े हैं।

प्राचीन यूनानी धर्म और कलमा

प्राचीन यूनानी महात्माओं ने शब्द या कलमे को 'लॉगॉस' कहकर पुकारा है। लॉगॉस की महिमा में कहा गया है, लॉगॉस एक है, सब जगह और एकरस है। प्रत्येक व्यक्ति आपे की पहचान द्वारा अन्तर में इससे जुड़ सकता है। यह ब्रह्माण्ड को चलानेवाला नियम या विधान है; यह परमात्मा का क़ानून,

* (a) "There is a hymn which celebrates *Vac* (speech), as the supporter of the world, as the companion of the gods, and the foundation of religious activity and all its advantages. She appears as impelling the Father in the beginning of the things and again as born in the waters. This idea which, of course, has long ago been compared by Weber with the Greek Logos is ingenious:The Will of the Creator is thus considered as expressed in speech."

Religion and Philosophy of the Vedas, Harvard and Oriental Series, Vol. 32, pp. 435-36.

(शेष अगले पृष्ठ पर)

परमात्मा की इच्छा, परमात्मा की रज़ा है, यह स्वयं परमात्मा है। यह अनादि है, सृष्टि का मूल कारण है पर लोग इसका मर्म नहीं जानते। यह परमात्मा और जीव के बीच मध्यस्थ है। यह सबसे निर्मल और सच्चा मार्ग है। यह सत्य है, जीवन है और सबसे ऊँचे और पवित्र सदाचार की प्रेरणा देनेवाला है। यह परमात्मा के सामने जीवों की ओर से विनती करनेवाला मुख्य पुरोहित और उनको परमात्मा से मिलानेवाला मध्यस्थ है।*

(पिछले पृष्ठ का शेष)

(b) "*Prajapati* certainly was alone (before) this (Universe). The Word (speech) certainly was His only possession:The word was the second. He desired:Let me emit this very Word, it will pervade this whole (space). He emitted the Word and it pervaded this whole (space). It rose upward and spread as a continuous (well-joined) stream of water." (*Tandyabra* 20:14:2) Quoted by Bhagwat Datta in *Story of the Creation*, p. 116.

* **Logos**: It is considered equal to Verbum but whereas in Greek philosophy the word means the Divine Reason, the authors of the *Septuagint* (Greek translation of the old testament) use it to translate the Hebrew *Memra* and its poetic synonyms which mean primarily the spoken word of the Deity.

Heraclitus of Ephesus (535-475 B.C.):

(i) There is one Logos, the same throughout the world which is itself homogenous and one.

(ii) This wisdom we may win by searching within ourselves:'It is open to all men to know themselves and be wise.'

(iii) The divine soul is 'Nature', the cosmic process; it is God; it is the life principle; it is divine law, or will of God.

(iv) It prevails as much as it will and is sufficient for all things.

(v) Logos is the immanent reason of the world; it existeth from all time, yet men are unaware of it, both before they listen and when they hear it.

vi) The Logos...keeps the stars in their courses. It is the hidden harmony which underlines the discords and antagonisms of existence.

Anaxagoras (500 – 428 B.C.)

(a) The Logos is intermediator between God and the world, being the regulating principle of the universe, the divine intelligence.

(शेष अगले पृष्ठ पर)

यहूदी मत और कलमा

हीब्रू भाषा में इस शक्ति को 'मैमरा' कहा गया है जिसको यूनानियों के लॉगॉस, मुसलमानों के अम्र, कलमे, कलाम या कुन का समानार्थक माना गया है। इसका सम्बन्ध आरमीनी भाषा के शब्द 'एमर' (*Amer*) से जोड़ा जाता है, जिसका अर्थ शब्द या वाणी है। इसका प्रयोग यूनानी के लॉगॉस से

(पिछले पृष्ठ का शेष)

(b) The seminal Logos of the stoics, when spoken of as a single power, is God Himself, as the organic principle of the cosmic process which He directs to a rational and moral end.

(c) The stoics distinguished between the potential unmanifested reason and the thought of God expressed in action. This distinction led to a new emphasis being laid on other meaning of Logos, as Word or Speech, and in this way stoicism made it easier for Jewish philosophy to identify the Greek Logos, with the half personified 'Word of Jahweh'.

(d) The Logos Christ may be explained stoically as the indwelling revealer of the Father, with whom He is one, as the vital principle of the universe, as the way, the truth and the life, as the inspirer of the highest morality, and last but not the least, as the living bond of union between the various members of his body. The spirit goes through all things, formless itself, but is the creator of forms. The Logos as World-Idea is also simple. It assumes manifold forms in its plastic self-unfolding. It is identical with Fate.

In Jewish Alexandrian Theology:

The earlier books of the Old Testament connect the operations of the *Memra* with three ideas – creation, providence and salvation. God spoke the Word and the worlds were made. Then at once His spirit or breath, gives life to what the Word creates, and renews the face of the earth. The protecting care of God for the chosen people is attributed by the Jewish commentaries to the *Memra*. Besides this the Word of Lord inspires prophecy and imparts the Law.

Philo: The Logos is declared to be the first born son of God, the prototypal Man in whose image all men are created. The Logos dwells with God as His viceregent. He is the oldest son of God and wisdom is

(शेष अगले पृष्ठ पर)

भी पुराना है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यहूदियों ने यह संकल्प यूनानियों से लिया। इसको दैवी वाणी, दैवी शब्द, दैवी इच्छा, दैवी इच्छा का प्रकट रूप, परमात्मा की सृजनात्मक शक्ति, सृष्टि की रचना का नियम और कर्ता पुरुष परमेश्वर भी कहा गया है। ईसाइयों से भी पहले यहूदियों ने शब्द को अनादि, जगत् का कर्ता और परमात्मा की आज्ञा कह कर पुकारा है। यह संकल्प यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों को रूहानी दृष्टि से एक लड़ी में पिरोनेवाला है।*

(पिछले पृष्ठ का शेष)

His mother. In other places, He is identified with wisdom. Again He is the Idea of Ideas, the whole mind of God going out of itself in creation. He represents the world before God as High-priest Intercessor, Paraclete. Occassionally Philo seems to suggest that the Logos is the God of us, the imperfect, as if from the highest point of view, the Logos were only an appearance of the Absolute.

From all eternity before time began, the Logos was; He is Supra-Temporal, not only the Spirit of the world, He did not become personal either with the creation or at the Incarnation. The Logos is turned towards God. The proposition indicates the closest union, with a sort of transcendental subordination.

The Logos is the light of men as life; that is to say, revelation is vital and dynamic. God reveals Himself as vital law to be obeyed and lived. The cosmic process, including, of course, the spiritual history of mankind and of the individual is the sole field of revelation... "Salvation is not a physical process but a moral growth through union with God; knowledge is not merely speculation but a growing sympathy and insight into the character of God and His laws. The Union of Logos with God is so intimate that we cannot hold (with the Gnostics and some Platonists) that the Father is passive in the work of redemption." Extracted from: *Encyclopaedia of Religion & Ethics*, Vol. VIII, pp. 135-137.

(b) See also: *Dictionary of the Bible* (Ed., James Hastings) Entry: Logos., pp. 549-551.

* *Memra*: God's fiat by which creation came into being and continues to exist, is spoken of as emanating from Him to execute His will. By the

ईसाई मत और कलमा

बाइबल में इसको 'वर्ड', 'लॉगॉस', 'स्पिरिट', 'होली घोस्ट', 'होली स्पिरिट' आदि कई नामों से पुकारा गया है। इन सब शब्दों के अर्थ परमेश्वर की सृष्टि को रचनेवाली और जीव को इस रचना से मुक्त करनेवाली शक्ति है।

बाइबल में कहा गया है: प्रारम्भ में शब्द था, शब्द प्रभु के साथ था और शब्द ही प्रभु था। यही शब्द प्रारम्भ में प्रभु के साथ था। सब वस्तुएँ इसी ने बनायी और कोई वस्तु इसके बिना बनाये नहीं बनी।* इसको पवित्र

(पिछले पृष्ठ का शेष)

Word of Jahweh 'were the heavens made' (*Psalms* 33). *Isaiah* 55 the Word proceeding from God's mouth assumes form and accomplishes His will as His plenipotentiary. In the apocrypha also we meet with a few instances where the Word stands for God: It was the Word that descended on the offspring of the fallen angels to pierce them with the sword (*Jubilations* 5:17); it entered Abraham's heart (12:17); it slew the first born in Egypt; 'Thine all powerful Word leaped from heaven out of the royal throne' (*Wisdom* 18:17).

The Armenian *Memra*, emph. state *memra* from *emar*, to speak... signifies like Logos 'a word', (in certain cases) it also stands for God.

(1) By my *Memra* I have founded the earth and by my strength I have hung up the heavens (*Isaiah* 48:13)

(2) The Israelites said, 'Behold, Jahweh our God has shown us His Glory and his greatness and we have heard the voice of his *Memra*' (*Deuteronomy* 5:24).

(3) The *Memra* gave the law (*Exodus* 20). These are the statutes which Jahweh made between his *Memra* and the children of Israel (*Leviticus* 26:46).

(4) The *Memra*, therefore, is the deity revealed in its activity...

(5) The term is based on *Genesis* I, emphasising the fact that the World came into being by divine command.

Encyclopaedia of Religion & Ethics, Vol. VIII, pp. 542-43.

* In the beginning was the Word, and the Word was with God, and the Word was God. The same was in the beginning with God. All things

(शेष अगले पृष्ठ पर)

आत्मा और सुखदाता भी कहा गया है। हज़रत ईसा कहते हैं, प्रभु एक और सुखदाता भेजेगा जो सदा तुम्हारे अंग-संग रहेगा।* यह सुखदाता पवित्र शब्द है।† ईसा इसी का देहधारी रूप था।‡ इस पवित्र आत्मा या शब्द की भक्ति ही परमात्मा की सच्ची भक्ति है। कोई अन्य भक्ति परमात्मा को नहीं भाती।§ शब्द को सुनने से ही परमात्मा में सच्चा भरोसा पैदा होता है।¶ जो लोग शब्द की शक्तिशाली शरण में आ जाते हैं, वे विनाश से बच जाते हैं।** परन्तु जो लोग शब्द से मुँह मोड़ लेते हैं, जो शब्द की निन्दा करते हैं, उनका यह गुनाह कभी क्षमा नहीं होता।††

पारसी मत और कलमा

पारसी मत में इसको 'सरोश' कहा गया है। 'श्' धातु से निकला होने के कारण इसकी संस्कृत के 'शब्द' और 'श्रुति' से समानता दिखायी गयी है। दूसरी ओर इसको 'वर्ड' या 'लॉगॉस' का समानार्थक माना गया है।‡‡

(पिछले पृष्ठ का शेष)

were made by Him, and without Him was not anything made that was made. In Him was life, and the life was the light of men. (*John* I:1-4)

* And I will pray to the Father, and He shall give you another Comforter that He may abide with you forever. (*John* 14:16)

† But the Comforter, which is the Holy Ghost. (*John* 14:26)

‡ And the Word was made flesh, and dwelt among us. (*John* 1:14)

§ Worship of Spirit is the Worship of Father, no other worship pleases the Father. (*John* 4:24)

¶ So then faith cometh by hearing and hearing by the Word of God. (*Romans* 10:17)

** The Name of the Lord is a strong tower:the righteous runneth into it and is safe. (*Proverbs* XVIII-10)

†† ...blasphemy *against* the *Holy* Ghost shall not be forgiven unto men. (*Matthew* 12:31)

‡‡ (a) From the same root as Skt. *Srutis*. Duncan Greenless, *Gospel of Zarathushtra*, p. 54

(शेष अगले पृष्ठ पर)

शब्द, वर्ड, लॉगॉस, कलाम, अम्र, हुकम, कुन की तरह सरोश सृष्टि के आदि में था। यही महान् दैवी और बुद्धिमान शब्द है जिससे सृष्टि की रचना हुई।*

सरोश जो धरती, अग्नि, वनस्पति और प्रभु के पुत्र मनुष्य से भी पहले था, दैवी हुक्म या परमात्मा की रज़ा का प्रत्यक्ष रूप है। एक ओर यह रचना करता है और दूसरी ओर भाणे का पवित्र पाठ सिखाता है जो रूहानी उन्नति का सबसे सही मार्ग है।† यह आदिकाल से अहुरमज़्द (परमात्मा) के वायसराय के तौर से कार्यशील है। इसकी महानता इस बात से प्रकट है कि हज़रत ज़रदुश्त प्रार्थना करते हैं: हे प्रभु, सरोश उसके पास जाये जिसको तू प्यार करता है।‡ यहाँ इसकी ईसाई मत के होली घोस्ट, होली स्पिरिट और कमफ़र्टर (सुखदाता) आदि से समानता देखने योग्य है।§ यह सरोश या शब्द जो आदि से चला आ रहा है, नेकी, धर्म और रूहानी प्राप्ति का संयुक्त स्रोत है।¶

(पिछले पृष्ठ का शेष)

(b) Julian P. Johnson, *The Path of the Masters*, Radha Soami Satsang Beas, p. 59

* Duncan Greenless, *The Gospel of Zarathushtra*, p. 52

† Duncan Greenless, *The Gospel of Zarathushtra*, p. 52

‡ Duncan Greenless, *The Gospel of Zarathushtra*, p. 52

§ Julian P. Johnson, *The Path of The Masters*, Radha Soami Satsang Beas, p. 60

¶ (a) I the Lord God (4.19:3) pronounced this saying... before the Creation of Heaven (4.19:8) the sacred Word of *Ahunavairya*... the Word which was before the earth, before living beings, before trees, before fire, the son of Lord God, before The Holy Man, before the demons... before all bodily life, even before God's all good creation, which holds the seed of righteousness." (See also *Yasna* 19:9)

(b) The *Ahunavairya* is the beginning of Religion and from it is the foundation of *Nasks* (*D.K.*9:2:2). This Word of Mine chanted ceaselessly and without a break is equal to a hundred other chants. (19:5:21:4:71: 14-15)

चीन का ताओ मत और कलमा

चीन के ताओ मत में ताओ की महानता की महिमा कही गयी है। ताओ अनादि है, इसका शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता।* ताओ को परमात्मा, मार्ग, रास्ता, पथ, शब्द, विवेक, विधान, हुक्म, सर्वज्ञाता, सृष्टि का अज्ञात तत्त्व, मन और माया को गति देनेवाला नियम आदि कहा गया है। यह ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति और संचालन का आधार है।†

ताओ कोई वस्तु या पदार्थ नहीं है परन्तु सब वस्तुएँ एवं पदार्थ इसमें समाये हुए हैं, यह अरूप है पर सब रूपों को लखनेवाला है। जीव मातलोक के नियमों पर चलता है, मातलोक देव-लोक के नियमों पर, देव-लोक ताओ के नियमों पर, ताओ सहज के नियमों पर और ताओ अपना नियम स्वयं है। ताओ सहज, सत्, अनादि एवं अनामी है, परन्तु जब इसने प्रकृति, वस्तुओं और इनके धर्मों को उत्पन्न किया तो यह अनामी से नामी हो गया। यह केवल सृष्टि का मूल कारण ही नहीं, सब पदार्थों के लिये नियम और आदर्श भी है। यह अच्छाई और बुराई से परे सहज आनन्द की उस अवस्था का सूचक है जिसकी प्राप्ति ताओवादी चिन्तन का सार है।‡ ताओ ही सच्चे सदाचार, सच्चे धर्म, सच्ची रूहानियत और सच्ची करनी का एकमात्र सच्चा नियम है। सन्त-महात्मा अपने लिये ताओ का भण्डार जोड़ता है। जितना अधिक वह ताओ को बाँटता है, उतना अधिक उसका भण्डार भरता है।§

जब महान् ताओ की साधना बन्द हो गयी तो नेकी और सदाचार पर ज़ोर हो गया, फिर बुद्धि और चतुराई का राज्य हो गया।¶ परन्तु कोई चीज़ ताओ का स्थान नहीं ले सकती। अपने स्रोत की ओर मुड़ना ही शान्त होना है और यही लक्ष्य प्राप्ति की सूचना है। लक्ष्य सिद्धि की सूचना का यह

---

* Soothhill W.F., *Three Religions of China*, London: Oxford University Press, 1929 (3rd Ed.)

† *Three Religions of China*, p. 16

‡ *Three Religions of China*, p. 48

§ James Legge, *The Texts of Taoism*, Tao Teh King, Part 81:2

¶ James Legge, *The Texts of Taoism*, Tao Teh King, Part 81:1

अटल नियम ताओ है, जो भाणे या रज़ा में रहने की अपार शक्ति प्रदान करता है।*

इसलाम और सूफ़ी मत में कलमा

क़ुरान शरीफ़ में आता है कि अल्लाह का शब्द या कलमा सर्वशक्तिमान् है (9:39)। जो वह कहता है कि हो जा, वह हो जाता है (36:82)। अल्लाह का कौल (वाक्य, शब्द, अम्र) सत् (हक़) है (6:73)। और अपने जिस सेवक पर वह प्रसन्न होता है अपने हुक्म (अम्र) द्वारा उसके पास अपना कलमा, कौल या शब्द भेजता है (40:15)। अल्लाह का नाम मुबारक है, पवित्र है, यह मान-बड़ाई का स्वामी है। (55:78)। इसलिये उस अल्लाह तआला (परमात्मा) के नाम की बड़ाई करो। (56:74;78)।

सूफ़ी फ़क़ीरों ने कलमे, कलाम या सौत से संसार की रचना मानी है। क़ुरान मजीद में कुन या अम्र† से संसार की रचना का होना माना

* James Legge, *The Texts of Taoism* Tao Teh King, Part 16 :1

† *Amr.* "According to the longer version of the Theology, the *amr* is one of the designations of the Word (*Kalma*) of God, also called His will which is an intermediary between the creator and the first intelligence and the immediate cause of the latter. In a certain sense it can also be called 'nothing' (*Iaysa*), as it transcends movement and rest, Intellect which is the first created thing, is so intimately united with the word that it is identical with it.

This theory recurs in an identical or almost identical form among the *Isma-iliyya*, for instance in the *Khwan-i-Kwan*, attributed to Nasir-i-Khusraw...Another Ismaili author, Hamir-al-al Kirmani seems to have regarded the *amr* as an influx coming from God and united to the intellect.... In common with other Ismaili theologians, he considers it identical with divine will. In the *Rawdat al-Taslim*, or *Tasawwurat* ed. W. the doctrine of divine *amr* is connected with the notion that at the psychic level, the ascension marked by the stages of the sense-perception, estimation (*Wahm*), soul (*nafs*) and intellect, ends in *amr*. There is a

(शेष अगले पृष्ठ पर)

गया है जो कलमे या शब्द के ही समानार्थक शब्द हैं। सूफ़ी दरवेशों ने इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। हज़रत शम्स तब्रेज़ कहते हैं कि सारा जगत् सौत (शब्द, कलमे) से अस्तित्व में आया और सारा नूर उससे ही फैला है।*

हज़रत अब्दुल रज़ाक काशी कहते हैं, इस्मे आज़म (बड़ा नाम) सब नामों का स्रोत या कर्ता है और वही सब वस्तुओं की आन्तरिक असलियत है। वह समुद्र है और संसार उसकी मौज या लहर है पर इस बात की समझ केवल उसको आ सकती है जो हमारे परिवार में से हो अर्थात् कलमे या शब्द की आराधना करनेवाले साधक या फ़क़ीर ही इस भेद को समझ सकते हैं।†

हज़रत शाह निआज़ फ़रमाते हैं, सारी सृष्टि ध्वनि या आवाज़ से भरपूर है। इस ध्वनि को सुनने के लिए आन्तरिक कान खोलो। अन्तर में वह निरन्तर धुन सुनायी देगी, जिसको पाकर तुम आदि, अन्त और मौत की सीमा पार

(पिछले पृष्ठ का शेष)

certain similarity between these Ismaili doctrines and the concept of *amr* found in the theological dialogue commonly called *Kusari*, by the Jewish thinker Judah Halewi. On the one hand he seems to postulate or at least to consider as admissable the identity of the *amr* with the will (ed., *Hireshfeld* 76); on the other he calls divine *amr* the power which is given to the prophet as an inherent faculty and which is superior to the intellect (eg. 42 ff.).

On the basis of *Quran*, vii:53, *amr* is sometimes opposed to *Khalq*: the first term designates the creation of the spiritual substances, or these substances, themselves, while the second refers to the creation of the material substances or the material substances themselves. Another them often treated by the Sufis, is the contradiction assumed by some as possible, between the *amr*, God's command to perform an action, and the divine will which prevents it." Extracted from: *Encyclopaedia of Islam*, Vol I. (New Edition), pp. 449-450.

* आलम अज़ सौत ज़हूर ग्रिफ़त, अज़ हज़ूरश बसाते नूर ग्रिफ़त।

† इस्मे आज़म जामाए इसमा बंवद, सूरते ऊ माअनीए अशया बुवद।
इस्म दरीआओ तईअन मौजे ऊ, ईं कसे दानद कि ऊ अज़ मा बुवद।

कर जाओगे।*

यह कलाम असीम है जिसके कारण इसका नाम अनहद पड़ गया।†

मौलाना रूम ने इसको 'नाम', 'इस्मे-आज़म' और 'अल्ला का ज़ाती नाम' कहा है। आप कहते हैं कि सच्चा नाम इतना मीठा है कि इससे मेरी सारी हस्ती मीठी हो जाती है। यह इतना स्वादिष्ट है कि इसका कण-कण जीवन को मस्ती देनेवाला है।‡

यह नाम या शब्द ही बड़ा नाम है और यही बड़ा परमात्मा है। यह जानों की जान, अर्थात् मानवीय अस्तित्व का आधार है। यह मुर्दा हड्डी को जीवित करनेवाला है अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन में पड़ी आत्मा को अमर जीवन देनेवाला है। मैं इस नाम से मस्त हूँ और मेरी रग-रग से इसका नशा टपक रहा है।§

यह उस प्रभु का निजी नाम है। यह उस पावन प्रभु का रूप है और यह इस्मे आज़म ही उस प्रभु की निकटता का साधन है।¶

हज़रत सुलतान बाहू ने जिह्वा से बोले जानेवाले कलमे को सिफ़ाती या 'सिफ़त सनाई कलमा'** कहा है और आन्तरिक सच्चे कलमे को 'ज़ाती इस्म', 'दिल का कलमा', 'इस्मे आज़म', 'अल्ला का इस्म'†† आदि नामों से पुकारा है। वह ज़बानी पढ़नेवाला नहीं अपने आप दिल में हो

---

* हमा आलम पुर असल अज़ आवाज़, नेक दरहाए गोशे ख़ुद कुन बाज़।
बिशनवी यक कलामे-ला-मकतूअ, अज़ हदूसो फ़ना बवद मरफ़ूअ।

† अवलो आख़र चूं बेहद शुद, ज़ आं सबब नाम ऊ अनहद शुद।

‡ अल्ला अल्ला ईं चिह शीरींस्त नाम, शीरो शक्कर भी शवद जानम तमाम।
अल्ला-अल्ला ईं चिह नाम-ए-ख़ुश मज़ाक, हरफ़ हरफ़श मीदहद जां रा रबाक।

§ इस्मे-आज़म हसत अल्ला-अल-अज़ीम,
जाने-जां व मुहईए अज़मे रमीम।

¶ अल्ला अल्ला इसमे-ज़ाते पाक दोस्त,
इस्मे आज़म अज़ बराए कुरब ओस्त।

** जिस ने अलिफ़ मुतालया कीता, बे दा बाब न पढ़दा हू।
छोड़ सिफ़ाती जिस लधयोस ज़ाती, आमी दूर चा करदा हू।

†† सबक़ सिफ़ाती सोई पढ़दे, जो वत है नहीं ज़ाती हू।
इल्मों-अमल उन्हां नूं होया, असली ते अस्बाती हू।

रहा कलमा है जो सच्चे आशिक़ मुर्शिद की हिदायत के अनुसार अन्दर पढ़ते हैं:

1. काने कप्प-कप्प क़लम बणवण, लिख न सक्कण कलमा हू।
2. ज़े ज़बानी हर कोई पढ़दा, दिल दा कलमा कोई हू।
   जित्थे कलमा दिल दा पढ़िए, मिले ज़बां न ढोई हू।
   दिल दा कलमा आरिफ़ पढ़दे, जाणे की गलोई हू।
   कलमा मैनूं पीर पढ़ाया, सदा सुहागण होई हू।

यही दिल को साफ़ करनेवाला साबुन है और इसका सिमरन ही परमात्मा का सच्चा प्रेम है:

1. कलमे दा तूं ज़िकर कमावें, कलमे नाल न्हावें हू।
2. आशिक़ राज़ माही दे कोलों, होण कदीं न वांदे हू।
   नींद हराम तिन्हां ते जेहड़े, ज़ाती इस्म कमांदे हू।
3. करदे वुज़ू इस्म आज़म दा, दरिया वहदत न्हाते हू।
4. आशिक़ पढ़न नमाज़ पिरम दी, जैं विच हरफ़ न कोई हू।
   जीभ न हिल्ले होंठ ना फड़कण, ख़ास नमाज़ी सोई हू।

यह कलमा सारी सृष्टि को पैदा करनेवाला है और संसार के सब धर्म-ग्रन्थ इसमें से निकले हैं:

1. कलमे दी कल तदां पयोसे, जद कल कलमे वंज खोली हू।
   चौदां तबक़ कलमे दे अंदर, की जाणे ख़लक़त भोली हू।
2. चौदां तबक़े कलमे अंदर, छड्ड किताबां इलमां हू।

लोक और परलोक की कोई दौलत कलमे का मुक़ाबला नहीं कर सकती:

1. कलमे जही न दौलत बाहू, अंदर दोई सराईं हू।

2. कलमा हीरे, लाल, जवाहर, कलमा हट्ट पसारी हू।
   एथे ओथे दोहीं जहानीं, कलमा दौलत सारी हू।

कलमा आत्मा की जन्म-जन्मान्तर की मलिनता को काटकर इसको निर्मल करनेवाला और नरकों की अग्नि को शान्त करनेवाला है:

1. कलमे नाल बुझाए दोज़ख, जिथ अग्ग बले अज़गाही हू।
2. कलमे नाल बहिश्तीं जाणा, कलमा करे सफ़ाई हू।
3. होर दवा न दिल दी कारी, कलमा दिल दी कारी हू।
   कलमा दूर ज़ंगार करेंदा, कलमे मैल उतारी हू।
4. अल्ला तैनूं पाक करे, जे ज़ाती इस्म कमावें हू।

यह कलमा वह चम्पा का पौधा है जो खिलकर तन और मन को दैविक प्रेम या रूहानियत की सुगन्धि से भर देता है:

अलिफ़-अल्ला चम्बे दी बूटी, मुर्शिद मन विच लाई हू।
नफ़ी इस्बात दा पाणी मिलयोस, हर रगे हर जाई हू।
अंदर बूटी मुश्क मचाया, जां फुल्लां ते आई हू।
जीवे मुर्शिद कामिल बाहू, जैं एह बूटी लाई हू।

कलमा मरने से पहले मरने की युक्ति सिखाता है, कलमा द्वैत के कुफ़्र को तोड़कर अद्वैत के सच्चे ईमान में लाता है। कलमे ने करोड़ों पापी तार दिये और कलमे ने साधारण यात्रियों को वली-पैग़म्बर और सन्त-महात्मा बना दिया:

1. मूतु वाली मौत न मिलसी, जैं विच मौत हयाती हू।
   मौत विसाल थियोसे हिक्का, जद इस्म पढ़ीवे ज़ाती हू।
2. कलमे दी कल तदां पई, जद कलमे दिल नूं फड़या हू।
   कुफ़र इस्लाम दा पता लग्गा, जद भंन जिगर विच वड़या हू।
3. कलमे लक्ख करोड़ां तारे, वली कीते सै राहीं हू।

इस कलमे की दौलत परमात्मा ने हरएक मनुष्य के अन्दर छिपाकर रखी हुई है। यह दौलत पूर्ण सतगुरु की बख़्शिश से मिलती है और यह आत्मा को कलमे से जोड़कर सदा के लिए सुहागिन बना देती है:

1. कलमे दी कल तदां पई, जद मुर्शिद कलमा दसया हू।
   सारी उमर कुफ़र विच जाली, बिन मुर्शिद दे दसया हू।
2. काने कप्प-कप्प क़लम बणावण, लिख न सक्कण कलमा हू।
   कलमा मैंनूं पीर पढ़ाया, ज़रा न रहियां अलमां हू।
3. कलमा मैनूं पीर पढ़ाया, सदा सुहागण होई हू।

जो मनुष्य सैकड़ों वर्ष मनमरज़ी की भक्ति करता है परन्तु आत्मा को अन्तर में सच्चे सतगुरु के बताये हुए शब्द में लीन नहीं करता, वह मूर्तिपूजक है क्योंकि उसका ख़याल संसार और शरीर के नौ द्वारों में क़ैद है। ऐसा व्यक्ति काफ़िर, मूर्ख और अज्ञानी है। वह कभी सच्चे प्रभु से मिलाप नहीं कर सकता:

इल्मों बाझ जे फ़कर कमावे, काफिर मरे दीवाना हू।
सै वर्हयां दी करे इबादत, अल्ला थीं बेगाना हू।
ग़फ़लत थीं न खुलसन परदे, दिल जाहिल बुतख़ाना हू।
मैं क़ुरबान तिन्हां तों, जिन्हां मिलया यार यगाना हू।

आत्मा, शब्द और परमात्मा की एक ही जाति है। कलमे की आवाज़ में चुम्बकीय आकर्षण है और इसके प्रकाश में हर प्रकार की गन्दगी का नाश करने की शक्ति है। जो सच्चा साधक पूर्ण सतगुरु की आज्ञानुसार आत्मा को कलमे में लीन कर देता है, उसकी ज़ात (आत्मा) संसार और शरीर में से पलटकर उस ज़ाती (परमात्मा) से मिल जाती है और वह सही अर्थों में बा+हू (हू वाला) अर्थात् कलमेवाला या परमात्मावाला बन जाता है:

यार यगाना मिलसी तां जे, सिर दी बाज़ी लाएं हू।
इश्क़ अल्ला विच हो मस्ताना, हू हू सदा अलाएं हू।

नाल तसव्वर इस्म अल्ला दे, दम नूं कैद लगाएं हू।*
ज़ाते नाल जे ज़ाती रल्ले, तद बाहू नाम सदाएं हू।

सन्तमत और कलमा

निर्गुणवादी सन्तों-महात्माओं के कलाम और उपदेश का आधार ही शब्द की महिमा और शब्द की आराधना है। गुरु साहिबान कहते हैं कि सृष्टि को बनाने और नष्ट करनेवाली शक्ति शब्द है जो घट-घट में समाया हुआ है:

1. सबदै धरती सबदै अकासु। सबदै सबद होआ परगासु॥
   सारी स्रिसटि सबद कै पाछै। नानक सबद घटै घटि आछै॥
   (*श्री प्राण संगली*, पृ. 103)

2. उतपति परलउ सबदे होवै॥ सबदे ही फिरि ओपति होवै॥
   (आदि ग्रन्थ, पृ. 117)

सन्त दादू दयाल जी कहते हैं कि जो कुछ है, शब्द से पैदा हुआ है और जो कुछ है शब्द में समा जाता है। सबकुछ शब्द से एक बार पैदा हुआ है, किसी वस्तु के पहले और पीछे होने का प्रश्न तो तब पैदा हो यदि शब्द सर्वशक्तिमान् न हो:

दादू सबदैं बंध्या सब रहै, सबदैं सब ही जाइ।
सबदैं ही सब ऊपजै, सबदैं सबै समाइ॥
एक सबद सब कुछ कीया, ऐसा समरथ सोइ।
आगैं पीछैं तौ करै, जो बल-हीणा होइ॥

---

* ध्यान देने की आवश्यकता है कि योगी एवं वेदान्तियों की भाँति कुछ सूफ़ी हब्से-दम या प्राणायाम द्वारा आत्मा को शरीर से समेटकर आँखों के पीछे ले जाने का अभ्यास करते थे। प्राण चिदाकाश में से निकलते हैं और चिदाकाश में ही समा जाते हैं, जिसके कारण प्राणायाम या हब्से-दम का अभ्यास करनेवाले अभ्यासियों की आत्मा इससे आगे नहीं जा सकती थी। हज़रत सुलतान बाहू समझाते हैं कि हब्से-दम कामिल फ़क़ीरों का साधन नहीं है। कामिल फ़क़ीर इस्मे आज़म या कलमे के विरद से आत्मा को शरीर से समेटकर आँखों के पीछे लाते हैं, जिससे प्राण स्वयं अन्दर की ओर पलट जाते हैं।

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं कि गुरु-घर के उपदेश का सार शब्द या नाम की कमाई है, 'नानक कै घरि केवल नामु' (आदि ग्रन्थ, पृ, 1136)। गुरु अमर दास जी कहते हैं कि शब्द ही चारों युगों से भवसागर से पार होने का एकमात्र साधन चला आ रहा है, 'एक नामि जुग चारि उधारे सबदे नाम विसाहा हे॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1055) गुरु साहिब फिर फ़रमाते हैं कि परमात्मा ने सारे संसार के पार उतारे का एकमात्र साधन शब्द या नाम रखा है जिसकी प्राप्ति परमात्मा की दया व मेहर से पूरे सतगुरु के द्वारा होती है:

एकु नामु तारे संसारु॥ गुर परसादी नाम पिआरु॥
बिनु नामै मुकति किनै न पाई॥ पूरे गुर ते नामु पलै पाई॥
सो बूझै जिसु आपि बुझाए॥ सतिगुर सेवा नामु द्रिढ़ाए॥
जिन इकु जाता से जन परवाणु॥ नानक नामि रते दरि नीसाणु॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1175)

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं कि संसार के सब धर्म केवल नाम की प्राप्ति का उपदेश देते हैं, 'सगल मतांत केवल हरि नाम॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 296) आप कहते हैं कि सब धर्मों से उत्तम धर्म और कर्मों से निर्मल कर्म नाम से लिव जोड़ना है:

सरब धरम महि स्रेसट धरमु॥ हरि को नामु जपि निरमल करमु॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 266)

यह नाम सब दु:खों को हरनेवाला और सब सुखों का दाता है:

सुखमनी सुख अंम्रित प्रभ नामु॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 262)

सरब रोग का अउखदु नामु॥ कलिआण रूप मंगल गुण गाम॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 274)

नाम की कमाई के बिना कोई सांसारिक और आध्यात्मिक कर्म किसी लेखे में नहीं आता:

अवरि काज तेरै कितै न काम॥
मिलु साधसंगति भजु केवल नाम॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 378)

दरिया साहिब ने भी फ़रमाया है कि तीनों लोकों और सब धर्मों के लिए मुक्ति का एकमात्र साधन नाम है:

मुसलमान हिंदू कहा, षट दरसन रंक राव।
जन दरिया निज नाम बिन, सब पर जम का दाव॥
सुर्ग मिर्त पाताल कह, कह तीन लोक बिस्तार।
जन दरिया निज नाम बिन, सभी काल को चार॥

(*दरिया साहिब (मारवाड़) की बानी*, पृ. 10)

इस शक्ति को सन्त नामदेव, कबीर साहिब, गुरु नानक, जगजीवन साहिब, पलटू साहिब, दरिया साहिब, तुलसी साहिब, हुजूर स्वामी जी महाराज आदि ने शब्द, नाम, सच्ची वाणी, अनहद शब्द, अनहद वाणी, निर्मल नाद, मूल कलाम, अमर, हुक्म, अकथ-कथा आदि अनेक नामों से पुकारा है। हुजूर महाराज सावन सिंह जी इसको 'अलिखित क़ानून' और 'अनबोली भाषा' कहकर याद किया करते थे, क्योंकि यह शब्द न मनुष्य द्वारा बनाया गया है और न ही इन्द्रियों का विषय है। यह प्रभु की सृष्टि की रचना है और जीव के कल्याण का अनादि नियम है जो हर प्रकार के परिवर्तन से परे है।

बुल्लेशाह और कलमा

प्रत्यक्ष है कि कामिल फ़क़ीरों का कलमे, कलाम, अम्र, हुकम, कुन, शब्द या नाम से भाव किसी भाषा के विशेष शब्द या वाक्य से नहीं, उस परमपिता परमात्मा की सृष्टि की रचना करनेवाली और सृष्टि में आये जीव को दोबारा अपने साथ मिलानेवाली शक्ति से है। साईं जी का कलमा इस शक्ति के वर्णन से ओतप्रोत है। आपने इस शक्ति को कलमा, बाँग, कुन, आवाज़ कहा

है और इसको नाम, अनहद नाद, शब्द, अनहद शब्द, अनहद का बाजा, आरिफ़ का बाजा, अनहद की मुरली , अनहद की बाँसुरी, अनहद की तार, नाहुन अक़रब की बाँसुरी, गंजे मख़फ़ी की मुरली, कुन फ़यीकून की आवाज़ आदि बहुत-से नामों से पुकारा है। इन नामों में देशी, विदेशी, इसलामी और हिन्दू दोनों स्रोतों के शब्दों के प्रयोग से पता लगता है कि आप इनके द्वारा उस सर्वसामान्य शक्ति की ओर संकेत कर रहे हैं जो आत्मा को अन्तर में परमात्मा से मिलानेवाला एकमात्र प्राकृतिक साधन है।

सतगुरु या हादी

सतगुरु की आवश्यकता

बुल्ला शौह दी सुणे हकायत, हादी फड़या होग हदायत।
मेरा साईं शाह इनायत, ओहो लंघावे पार।

परमात्मा भी अन्दर है, आत्मा भी अन्दर है और आत्मा को परमात्मा से जोड़नेवाली रस्सी कलमा, शब्द या नाम भी अन्दर है। परन्तु परमात्मा या कलमे रूपी 'गंजे मख़फ़ी' (गुप्त ख़ज़ाने) का भेद खोलनेवाला और इस तक पहुँच करानेवाला साधन पूरा सतगुरु है:

जो कोई उस नूं लखणा चाहे, बाझ वसीले लखया न जाए।
शाह इनायत भेत बताए, तां खुल्ले सभ इसरार।

मुर्शिद भवसागर के किनारे खड़ी अबला आत्मा को पार करानेवाला मल्लाह है। वह वियोग के रोग से पीड़ित विरहिणी के रोग का उपचार करनेवाला योग्य हकीम है:

1. नदियों पार मुलक सज्जन दा, लोभ लहर ने घेरी।
   सतगुर बेड़ी फड़ी खलोते, तैं क्यों लाई ए देरी।
2. झबदे बहुड़ीं वे तबीबा नहीं ते मैं मर गइआं।

मुर्शिद का वास्तविक कार्य आन्तरिक कलमे का भेद देना और आत्मा को इसके अभ्यास में सहायता देना है, क्योंकि इस कलमे, शब्द या नाम

के बिना पार उतरने का कोई साधन नहीं। साईं बुल्लेशाह मुर्शिद के आगे विनती करते हैं, 'नाम अल्ला पैगाम सुणाईं, मुख देखण नूं न तरसाईं।' आप 'ढिलक गई मेरे चरखे दी हत्थी, कत्तया मूल न जावे' काफ़ी में संकेत करते हैं कि नौ द्वारों में क़ैद आत्मा को दसवें दरवाज़े में पहुँचने, इसको नफ़्स या शैतान के हथकण्डों से बचाने और आन्तरिक रूहानी सफ़र के उतार-चढ़ाव को पार करने में मुर्शिद बेहिसाब सहायता करता है। वास्तव में मुर्शिद की दया सौ मन कातने से अधिक है अर्थात् सतगुरु की दया व मेहर हर प्रकार की करनी से ऊँचा दर्जा रखती है:

ढिलक गई मेरे चरखे दी हत्थी, कत्तया मूल न जावे।
हुण दिन चढ़या कद गुज़रे, मैनूं राते मुँह दिखलावे।
तकले नूं वल पै पै जांदे, कौण लुहार लयावे।
तकले तों वल लाहीं लुहारा, तंदी टुट-टुट जावे।
घड़ी-घड़ी एह झोले खांदा, छल्ली इक न लाह्वे।
सै मणां दा कत्त लेआ बुल्लया, मैंनूं शौह गल लावे।

प्रसिद्ध सूफ़ी दरवेश शेख़ शहाबुद्दीन सुहरावर्दी (जन्म 1145) *अवारिफ़-उल-मुआरिफ़* में *क़ुरान शरीफ़* की आयतों के उद्धरण से लिखते हैं कि सूफ़ी मत का आधार पुस्तकीय या स्कूली विद्या नहीं, आन्तरिक रूहानी अनुभव है। यह अनुभव वलियों व पैग़ंबरों की दौलत है, और केवल उनसे ही प्राप्त हो सकती है।*

रिज़वी सूफ़ी मत में मुर्शिद और तालिब, गुरु और शिष्य के सम्बन्धों के विषय में वर्णन करते हुए लिखता है कि शिष्य का मुर्शिद से नाम की दात पाना बहुत कठिन मामला है। पूर्ण सतगुरु हर शिष्य की रूहानी दशा के अनुसार उसको अमली साधना के मार्ग पर डालता था। सिमरन और ध्यान का काम, सतगुरु की देखरेख में चलता था। शिष्य को अभ्यास के समय सिमटाव या एकाग्रता में आन्तरिक प्रकाश आदि के जो अनुभव होते थे, मुर्शिद उनसे

* *A History of Sufism in India*, Vol.I, p.89

जानकार होता था। गुरु को पता होता था कि शिष्य को प्राप्त कौन-सा अनुभव सच्चा है और कौन-सा छलावा मात्र है। शिष्य अपने रूहानी अनुभव केवल गुरु को ही बता सकता था।* मुर्शिद से नामदान मिलने के समय शिष्य का गुरु से अटूट रूहानी सम्बन्ध जुड़ जाता था और गुरु शिष्य को अपनी शरण में लेने की निशानी के तौर पर उसके सिर पर हाथ रखता था।†

सूफ़ियों का दृढ़ विश्वास है कि गुरु का पल्ला पकड़ना प्रभु की दया के दायरे में दाख़िल हो जाना है। साईं बुल्लेशाह ने अपनी वाणी में बार-बार इस बात की ओर संकेत किया है कि ईश्वरीय दया-मेहर गुरु द्वारा प्रकट होती है। आप फ़रमाते हैं कि गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलने से आसा-मनसा से छुटकारा मिलता है, मन निर्मल होता है और मनुष्य निश्चिन्त होकर सच्चे आनन्द का भागीदार बन जाता है:

फड़ मुरशद आबद ख़ुदाई हो, विच मस्ती बेपरवाही हो।
बेख़ाहश बेनवाई हो, विच दिल दे ख़ूब सफ़ाई हो।
कदी गल्ल सच्ची वी लुकदी ए, इक नुकते विच गल्ल मुकदी ए।

सतगुरु जीते-जी भी सहायता करता है और अन्त समय भी सच्चे भक्त को हर प्रकार के संकटों से बचाकर धुर-दरगाह पहुँचाने के लिए वचन-बद्ध होता है:

इक औखा वेला आवेगा, सब साक सैण भज जावेगा।
कर मदद पार लंघावेगा, ओह बुल्ले दा सुल्तान कुड़े।
कर कत्तण वल्ल ध्यान कुड़े।

मुर्शिद इन दु:खों और ख़तरों की घाटी से पार कराके आत्मा का मालिके-कुल (परमपिता परमात्मा) से मिलाप करा देता है और उसको उस मुक़ाम पर पहुँचा देता है, जहाँ कोई नहीं पहुँच सकता:

* *A History of Sufism in India*, Vol. I, p. 99

† *A History of Sufism in India*, Vol. I, p. 102

1. बुल्ला शौह मेरे घर आवसी, मेरी बलदी भा बुझावसी।
   इनायत दम दम नाल चितारया, सानूं आ मिल यार प्यारया।
2. हादी मैंनूं सबक पढ़ाया, ओथे ग़ैर न आया जाया।
   मुतलक ज़ात जमाल विखाया, वहदत पाया नी शोर।

मौलाना रूम ने फ़रमाया है, उस मित्र (प्रभु) का मार्ग बहुत बारीक और तंग है। बुद्धिमान (सन्त-महात्मा) के बिना इस पर कौन सीधा चल सकता है? इस कठिन मार्ग में दुर्गम घाटियाँ हैं जो पथ-प्रदर्शक के बिना पार नहीं की जा सकतीं। इसलिए उस दयालु शाह (हज़रत मुहम्मद) ने फ़रमाया है कि यात्रा का साथी पहले है और यात्रा का तय होना बाद में है। कोई पथ-प्रदर्शक खोज ले ताकि तू सीधे मार्ग पर चल सके, वरन् मार्ग में बहुत-से कुएँ और गढ़े हैं। तू परकार की भाँति सदा एक ही स्थान पर चक्कर काट रहा है, इसलिए जहाँ था, वहीं है। तूने वर्षों रोज़े रखे और नमाज़ पढ़ी, परन्तु दिल का हाल जो पहले था, वही रहा। तू उस पथ-प्रदर्शक पर विश्वास कर, ताकि तू ला-कलाम मंज़िल (अनामी देश) तक पहुँच जाये। पीर की आज्ञा को न मानना, बिना कमान के तीर चलाने के सदृश्य है। तूने बिना कमान के कोई तीर कभी निशाने पर या निशाने के आस-पास पहुँचता देखा है?*

पूरा सतगुरु

यह बात कहने की आवश्यकता नहीं कि रूहानी उन्नति के लिए सतगुरु का अर्थ परमात्मा से मिलाप करके उसका रूप हो चुके सच्चे सतगुरु से है क्योंकि केवल परमात्मा या परमात्मा में समाकर परमात्मा बन चुका मनुष्य ही परमात्मा से मिलाप का साधन बन सकता है। साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि मुर्शिद में परमात्मा और मनुष्य दोनों की सन्धि या मेल है:

1. ढोला आदमी बण आया।
2. मौला आदमी बण आया।

* *मसनवी मौलाना रूम।*

पानी में मिश्री घोलते जायें तो यहाँ तक पहुँच जायेगा कि पानी नाममात्र ही रह जायेगा, उसमें मिश्री की सारी खूबियाँ समा जायेंगी। इसी प्रकार जिसके अन्दर परमात्मा का नूर घर कर गया है और जिस पर ईश्वरीय कृपा के द्वार खुल चुके हैं, उसमें और परमात्मा में वास्तव में कोई अन्तर नहीं होता। ऐसे कामिल मनुष्य द्वारा ही परमात्मा की दया दूसरों को पार उतारती है:

वाह जिस पर करम अवेहा है, तसदीक ओह भी तैं जेहा है।
सच सही रवायत एहा है, तेरी नज़र मेहर तर जाइदा।

परमेश्वर का सच्चा भक्त परमेश्वररूपी समुद्र में से उठी ऐसी लहर है जो समुद्र में से उठती है, सदा समुद्र का भाग रहती है और समुद्र में ही समा जाती है। लहर कभी समुद्र से अलग नहीं होती। लहर की जड़ें समुद्र में होती हैं:

हरि का सेवकु सो हरि जेहा॥ भेदु न जाणहु माणस देहा॥
जिउ जल तरंग उठहि बहु भाती फिरि सललै सलल समाइदा॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1076)

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि मुर्शिद बाहर से देखने को 'चाक' अराईं या योगी लगता है परन्तु वास्तव में प्रभु के पावन प्रकाश की साक्षात् मूर्ति है। वह जीता-जागता, चलता-फिरता दयालु प्रभु है। उसका दर्शन परमात्मा का दर्शन है जो सब रोगों की अचूक औषधि है:

1. माही नहीं कोई नूर इलाही, अनहद दी जिस मुरली वाही।
2. मुठिओस सु हीर सयाल, डाहडे कामण पा के।*
3. बुल्लया दूरों चल के आया जी, ओहदी सूरत ने भरमाया जी।
   ओसे पाक जमाल दिखाया जी, ओह हिक्क दम न भुलेंदा।†

* **मुठिओस**=लूट ली, भरमा ली; **कामण...के**=जादू करके।

† पवित्र नूर दिखाया अर्थात् परमात्मा के दर्शन कराये।

4. बाग़ बहारां तां तूं देखें चाकर थीवें राईं दा।
   बुल्लया इस नूं देख हमेशा एह है दरशन साईं दा।
5. माही वे तैं मिलयां सभ दुक्ख होवण दूर।
   लोकां दे भाणे चाक चकेटा साडा रब ग़फ़ूर।*

इश्क़े-मजाज़ी और इश्क़े-हक़ीक़ी

सूफ़ी दरवेशों ने कामिल मुर्शिद को निराकार प्रभु तक पहुँचने की सीढ़ी और वह पारदर्शी शीशा कहा है जिसमें से दूसरी ओर का प्रकाश स्पष्ट दिखायी देता है। साईं बुल्लेशाह इश्क़े-मजाज़ी को इश्क़े-हक़ीक़ी से जोड़नेवाला पुल कहते हैं। इश्क़े-मजाज़ी का अर्थ सतगुरु के रूप में मजाज़ या देह का चोला पहनकर आयी हक़ीक़त का इश्क़ है। आप बड़े सुन्दर ढंग से कहते हैं कि जब तक रूप का प्रेम न हो, अरूप का प्रेम किस प्रकार जागेगा? आकार के प्रेम का धागा न हो तो सूई निराकार के प्रेम का जामा कैसे सिये? जब तक मजाज़ (देह-स्वरूप सतगुरु) दाता बनकर न आये, दैविक प्रेम की दात कैसे मिले? सतगुरु की ज़ात का इश्क़ ही दैवी इश्क़ का माता-पिता अर्थात् जन्मदाता है क्योंकि केवल इसके द्वारा ही हम जीते-जी मरकर आन्तरिक सत्य से मिलाप करने के योग्य बन सकते हैं:

जिचर न इश्क़ मजाज़ी लागे,
सूई सीवे न बिन धागे।
इश्क़ मजाज़ी दाता है,
जिस पिच्छे मस्त हो जाता है।
इश्क़ जिन्हां दी हड्डीं पैंदा,
सोई नर जीवत मर जांदा।
इश्क़ पिता ते माता ए,
जिस पिच्छे मस्त हो जाता ए।

* **रब ग़फ़ूर**=दयालु परमात्मा।

शरीर में क़ैद आत्मा अदृष्ट और अगोचर प्रभु को प्यार नहीं कर सकती। परन्तु जब सतगुरु द्वारा दैवी प्रकाश सामने झरता है तो जीव का सहज ही उससे प्यार हो जाता है।* इसी कारण कामिल फ़क़ीरों ने सतगुरु बनकर आये परमात्मा की बहुत महिमा कही है।†

मौलाना जामी फ़रमाते हैं कि यदि कामिल मुर्शिद की देह का प्यार अन्तर में पैदा हो जाये तो बड़े सौभाग्य की बात है क्योंकि इश्क़े-हक़ीक़ी तक पहुँचने का साधन इश्क़े-मजाज़ी ही है।‡

---

* नदरी आवै तिसु सिउ मोहु॥ किउ मिलीऐ प्रभ अबिनासी तोहि॥
करि किरपा मोहि मारगि पावहु॥ साधसंगति कै अंचलि लावहु॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 801)

† (क) गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, का के लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दियो बताय॥
(*कबीर साखी-संग्रह*, पृ. 2)

(ख) कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाइ।
कहै कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होत सहाय॥
(*कबीर साखी-संग्रह*, पृ. 4)

(ग) राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ। गुरु के सम हरि कूँ न निहारूँ॥
हरि ने जन्म दियो जग माहीं। गुरु ने आवागवन छुटाहीं॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा॥
हरि ने कुटँब जाल मैं गेरी। गुरु ने काटी ममता बेरी॥
हरि ने रोग भोग उरझायौ। गुरु जोगी कर सबै छुटायौ॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ। गुरु ने आतम रूप लखायौ॥
हरि ने मो सूँ आप छिपायौ। गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ॥
फिर हरि बंधमुक्ति गति लाये। गुरु ने सबही भर्म मिटाये॥
चरनदास पर तन मन वारूँ। गुरु न तजूँ हरि कूँ तजि डारूँ॥
सब परबत स्याही करूँ, घोलूँ समुँदर जाय।
धरती का कागद करूँ, गुरु अस्तुति न समाय॥
(*सहजोबाई की बानी*, पृ. 6)

‡ ग़नीमत दां अगर इश्क़े मजाज़ीसत, कि अज़ बहिरे हकीकी कारसीज़ीसत।
उद्धरण, *क़ानूने इश्क़*, अनवर अली रोहतकी, पृ. 50, अनवर अली रोहतकी ने इश्क़े-मजाज़ी और इश्क़े-हक़ीक़ी की सविस्तार व्याख्या की है।

डॉ. इकबाल ने कहा है कि हे गुप्त या निराकार हक़ीक़त (सत्य), तू कभी मजाज़ (देह) का चोला पहनकर सामने आ क्योंकि तेरे इस रूप की प्रतीक्षा में हज़ारों सजदे तड़प रहे हैं:

कभी ऐ हकीकते मुंतज़र नज़र आ लिबासे मजाज़ में,
कि हज़ारों सजदे तड़प रहे हैं मेरी जबीने निआज़ में।

कोई ऐसा प्रकट प्रकाश सामने होना चाहिये, जिसका प्रेम प्रेमी को भी प्रकाश का रूप बना दे:

सरापा नूर हो जाए जिसका आश्के सादक,
भला ऐ दिल हसीं ऐसा भी है कोई हसीनों में।

इसी प्रसंग में साईं जी की कुछ काफ़ियाँ ध्यान देने योग्य हैं। 'रांझा जोगीड़ा बण आया' में आप आत्मा और परमात्मा का वास्तविक सम्बन्ध दिखाते हैं। सतगुरु की आँखें प्रभुरूपी हीरे को दर्शाती हैं। उसकी शक्ल से यूसुफ़ (परमात्मा) की झलक झलकती है। मूल रूप में आत्मा निराकार और प्रकाशमय है परन्तु मन व माया के देश में वह योगिन बनकर आयी है अर्थात् माया के जगत् में आत्मा देह का चोला धारकर आयी है। यही कारण है कि राँझा (परमात्मा) को भी संसार में योगी बनकर आना पड़ता है। परन्तु जब हीर को योगी के नक़्शों (विशेषताओं) में से राँझा के नक़्शों की झलक दिखायी देती है तो वह स्वत: योगी की ओर खिंची चली जाती है। उसके अन्दर सदियों से सोयी दैवी प्रीति जाग उठती है बल्कि उसको पश्चात्ताप होता है कि योगी के प्रेम से पहले की आयु व्यर्थ चली गयी। जब उसका योगी में विश्वास पक्का हो जाता है तो योगी उसको साथ लेकर तख़्त हज़ारे (अपने वास्तविक रूहानी देश) की ओर चल देता है:

रांझा जोगीड़ा बण आया, वाह सांगी सांग रचाया।
एस जोगी दे नैण कटोरे, बाज़ां वांगूं लैंदे डोरे।
मुख डिट्ठयां दुख जावण झोरे, इन्हां अक्खियां लाल लखाया।

एस जोगी दी की निशानी, कंन विच मुंदरां गल विच गानी।
सूरत इस दी यूसुफ़ सानी, एस अलफ़ों अहद बणाया।
रांझा जोगी ते मैं जुगयाणी, इस दी ख़ातर भरसां पाणी।
ऐवें पिछली उमर विहाणी, एस हुण मैनूं भरमाया।
बुल्ला शौह दी हुण गत पाई, प्रीत पुराणी शोर मचाई।
एह गल्ल कीकूं छुपे छुपाई, लै तख़त हज़ारे नूं धाया।
रांझा जोगीड़ा बण आया, वाह सांगी सांग रचाया।

'मेरे क्यों चिर लाया माही' और 'मैं विच मैं न रह गई' में भी यही अलंकार है। इन काफ़ियों में कहते हैं कि संसार की रचना का हुक्म (कुन फ़यीकून) देते ही राँझा हीर को लेने के लिए तख़्त हज़ारे (सचखण्ड) से चल देता है। राँझा वास्तव में साहिब-सफ़ाई (परमात्मा) था, पर चूचक और मलकी (मन व माया) के देश में आकर उसको, उनकी सेवा का स्वाँग भरना पड़ा। परन्तु जब हीर को ज़बरदस्ती खेड़े (अहं या शैतान) के साथ भेजा गया तो राँझा को योगी का भेष बदलकर उसके पीछे जाना पड़ा। खेड़ों की नगरी में योगी केवल अपने मतलब से घर आता है अर्थात् जो आत्मा ख़ुशी-ख़ुशी खेड़ों के देश बसना चाहती है, योगी उसकी ओर ध्यान नहीं देता। परन्तु जो आत्मा खेड़ों के हर प्रकार के साज़ो-सामान (इन्द्रियों के भोगों) को ठुकराकर राँझा के लिए व्याकुल होती है, योगी उसके द्वार पर अवश्य पहुँचता है। योगी के पास कौन-सा मन्त्र है? वह हीर के दरवाज़े पर नाद बजाता है, अर्थात् उसको अन्दर कलमे, शब्द या नाम से जोड़ देता है। योगी हीर के द्वार पर चीना (एक प्रकार का अनाज) बिखेरकर बैठ जाता है परन्तु चीना चुगते (सांसारिक कार्य-व्यवहार करते) हुए योगी की दृष्टि सदा हीर (आत्मा) पर रहती है। जब हीर योगी के नयनों में राँझा के नयन पहचान लेती है तो धुर-दरगाह में हुई बख़्शिश से योगी उसको साथ लेकर तख़्त हज़ारे (धुरधाम) की ओर चल देता है:

1. मेरे क्यों चिर लाया माही, नी मैं उस तों घोल घुमाई।
   कुन फ़यीकून आवाज़ा आया, तख़्त हज़ारयों रांझा धाया।

   चूचक दा उस चाक सदाया, ओह आहा साहिब सफ़ाई।*
   मेरे क्यों चिर लाया माही।

2. जोगी शहर खेड़यां दे आवे, जिस घर मतलब सो घर पावे।
   बूहे जा के नाद वजावे, आपे होया फ़ज़ल इलाही।
   बूहे पै खुड़बिआ धिगाने, टुट पया खप्पर डुल पए दाणे।†
   इस दे वल छल कौण पछाणे, चीना रुल गया विच पाही।
   चीना चुण चुण झोली पावे, बैठा हीरे तरफ़ तकावे।
   जो कुझ लिखया लेख सो पावे, रो रो लड़दे नैण सिपाही
   मेरे क्यों चिर लाया माही।

आपकी काफ़ी 'मैं वैसां जोगी दे नाल मत्थे तिलक लगा के' भी इसी रंग में लिखी गयी है। इस काफ़ी में इश्क़े-मजाज़ी द्वारा इश्क़े-हक़ीक़ी तक पहुँचने का जो सुन्दर वर्णन मिलता है, वह अपना उदाहरण आप है। इसमें आप जोगी (सतगुरु) को दैवी प्रकाश की मूरत और अनहद की मुरली बजानेवाला ऐसा जादूगर कहते हैं जो अपनी विशेषताओं से हीर स्याल का दिल मोह लेता है। वह हीर (आत्मा) के मन में इस प्रकार घर कर लेता है कि हीर को अपनी और संसार की कोई सुध-बुध नहीं रहती। वह योगी के प्रेम में मग्न होकर, योगी के पीछे-पीछे उसके देश में चली जाती है। 'कौण आया पहन लिबास कुड़े' काफ़ी में भी सतगुरु के शारीरिक चोले के पीछे छिपी उसकी दैवी असलियत की पहचान करने की हिदायत की गयी है। एक स्थान पर साईं जी ने मुर्शिद को अनहद द्वार का 'गवरीआ' या 'ग्वाला' कहा है जो हीर की प्रीति के लिए – 'मोहे प्रीती को' – योगी का रूप धारकर संसार में आता है:

अनहद द्वार का आया गवरीआ कंगण दसत चढ़ाई।
मूंड मुंडा मोहे प्रीती को रेन कंना में पाई।

---

* **आहा**=था।

† **खुड़बिआ**=झगड़ा; **धिगाने**=बिना कारण के।

बाँसुरीवाले (शब्दवाले) योगी, राँझे या कान्ह का सुर हीर से मिला हुआ है। इसलिए वह सहज ही उसकी सुरत को अपने साथ मिला सकता है:

बंसी वालया चाका रांझा, तेरा सुर सभ नाल है सांझा।
तेरियां मौजां साडा मांझा, साडी सुरती आप मिलाई।

सतगुरु की आवश्यकता: एक दैवी नियम

उपर्युक्त वर्णन इस नियम की ओर इशारा करते हैं कि सृष्टि की रचना के समय से ही कुल-मालिक ने अपने हुक्म (कुन) से भेजी हुई आत्मा को अपने साथ मिलाने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले रखी है। यह उत्तरदायित्व दूसरा कौन ले सकता है?

संसार की सम्पूर्ण रूहानियत इस एक नियम पर आधारित है कि परमात्मा की प्राप्ति का साधन परमात्मा द्वारा स्वयं सृजन किया गया है। वह साधन यह है कि परमात्मा-रूप सतगुरु, जीव को अन्तर में कलमे, शब्द या नाम से जोड़कर रचना से मुक्त करके वापस धुरधाम ले जाता है।*

ध्यानपूर्वक देखा जाये तो ब्रह्माण्ड के सब नियम ही निरन्तर अटल और अचूक हैं। हर बीज से एक विशेष फल पैदा होता है। सन्तान की उत्पत्ति से लेकर सूर्य, चाँद और तारों की गर्दिश तक सब नियम सृष्टि की रचना के समय ही बना दिये जाते हैं। उनमें आज तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आश्चर्य की बात है कि स्वयं को सृष्टि का सिरमौर और सबसे अधिक

* (क) धुरि खसमै का हुकमु पइआ विणु सतिगुर चेतिआ न जाइ॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 556)

(ख) गुरमुखि जाता करमि बिधाता॥ जुग चारे गुर सबदि पछाता॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1054-55)

(ग) गुरमुखि भगति जुग चारे होई॥ होरतु भगति न पाए कोई॥
नानक नामु गुर भगती पाईऐ गुर चरणी चितु लावणिआ॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 122)

बुद्धिमान कहलानेवाला मनुष्य सृष्टि के शेष सब नियमों को ख़ूब अच्छी प्रकार समझता, पहचानता और मानता है, परन्तु इस अनादि नियम को समझना या मानना तो दूर रहा, इस पर गम्भीरता से विचार करने के लिए भी तैयार नहीं होता।

सन्तान स्त्री व पुरुष के संयोग से उत्पन्न होती है, रोग डॉक्टर की दवाई खाने से दूर होता है और हर प्रकार की कला का वास्तविक ज्ञान उस कला के ज्ञाता से मिलता है। इसी प्रकार परमेश्वर प्राप्ति की युक्ति प्रभु से मिलाप कर चुके किसी पूर्ण मनुष्य से मिलती है।

अपने समय का पूर्ण सतगुरु

हम लोग प्राचीन समय में हुए पीरों, पैग़म्बरों, गुरुओं, अवतारों आदि में, जिनको उस समय अनेक यातनाएँ दी गयी थीं, विश्वास करने के लिए तैयार हो जाते हैं परन्तु अपने समय के कामिल फ़क़ीरों में विश्वास रखने के लिए तैयार नहीं होते।

यह उसी प्रकार है कि जैसे कोई स्त्री सदियों पहले हुए पुरुष के ख़याल से सन्तान पैदा करना चाहे, कोई रोगी आज लुकमान या धन्वन्तरि के ख़याल से रोग से मुक्त होना चाहे या कोई छात्र अरस्तू और प्लेटो में भरोसा रखकर विद्वान बनना चाहे। प्रत्येक दशा में समय का पति, समय का डॉक्टर, समय का शिक्षक और समय के आध्यात्मिक गुरु की आवश्यकता होती है। संसार में हर समय, हर स्थान पर महान् डॉक्टर, संगीतकार, सेनाध्यक्ष, चित्रकार, दार्शनिक और वैज्ञानिक पैदा हो सकते हैं तो कामिल फ़क़ीर या सन्त-सतगुरु के आगमन को किसी विशेष समय, स्थान, क़ौम या धर्म तक ही कैसे सीमित रखा जा सकता है?

सिरदार इकबाल अली शाह के अनुसार सूफ़ी दरवेशों का विश्वास है कि जिस प्रभु ने संसार के हर वक़्त के लोगों को बिना किसी मतभेद के हवा, पानी, धरती, प्रकाश की नियामतें बाँटी हैं, वह उनके रूहानी विकास के लिए भी अपनी दया व मेहर समान रूप से बाँटता है। जिस प्रकार संसार

को पदार्थिक गुत्थियों के हल के लिए अनेक प्रकार के महापुरुष हर समय जन्म लेते रहते हैं, उसी प्रकार लोगों की रूहानी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी समय-समय पर पीर-पैग़म्बर संसार में आते रहते हैं।*

सिरदार इकबाल अली शाह के अनुसार कई सूफ़ी दरवेशों ने अपने विचारों की पुष्टि के लिए *क़ुरान शरीफ़* की उन आयतों के उद्धरण दिये हैं, जिनमें कहा गया है कि परमात्मा ने सब क़ौमों के रूहानी कल्याण के लिए अपने पैग़म्बर भेजे हैं। *क़ुरान शरीफ़* में हिदायत की गयी है कि उस ख़ालिक़ के द्वारा अलग-अलग क़ौमों और समय के लिए भेजे गये पैग़म्बरों में किसी प्रकार का अन्तर न करो और अपनी मति को छोड़कर परमात्मा के बनाये क़ानून के अनुसार उसकी खोज करो।†

---

* "A Sufi believing in the Islamic religion must have complete submission to divine control in the mode and conduct of life and implicit and unreserved obedience to laws revealed to man by God in preference to all our prepossessions, inclinations or judgement and believe that his religion is a religion which embraces all such religions that have been preached by teachers inspired by God in various ages and different countries." Thus the *Quran* says in this respect:"Say, we believe in God and in what has been revealed to us, as well as to Abraham , Ishmael, Issac, Jacob and their descendants; we also believe in what was given to Moses, Jesus, and to all the prophets raised by the Creator of the universe, we accept all of them, without making any distinction among them."

Sirdar Ikbal Ali Shah, *Islamic Sufism*, Samuel Weiser Inc., New York, 1971, p. 35.

† "Moreover, the development of human faculties and complications of evils – a necessary sequel to earthly civilization – called for new orders for things. This emergency brought forth prophet after prophet, thinks the Sufi,who came and restored truths already revealed and made necessary additions to meet the requirements of the age. As different races of mankind were distantly located and separated from each other by natural barriers, with very limited means of intercourse between them, each nation needed its own prophet and so was it blessed – as *Al-Quran* says:

(शेष अगले पृष्ठ पर)

अली बिन-अल हुसैन अल हकीम अलतिरमीज़ कहते हैं, कोई कारण नहीं कि ख़लीफ़ा अबूबक्र और अली के बाद आनेवाले सन्त उन जैसे या उनसे ऊँचे न हो सकें। प्रभु-कृपा को ऐसे समय के लोगों पर बरसाने से कौन रोक सकता है? लोग यह क्यों सोचते हैं कि आज कोई सिद्दीक़ मुक़र्रब, मुज्तबा या मुस्तफ़ा संसार में नहीं है।*

इब्न-अल अरबी कहते हैं कि वली प्रभु का एक नाम है, जिस कारण प्रभु की तरह वली कभी ख़त्म नहीं होता। यह एक निरन्तर प्रवाह है। सन्त-जन या वली अल्ला अपने अहं का नाश करके पूर्ण पुरुष बन चुका होता है। वह परमात्मा का ही रूप होता है और संसार से वली कभी समाप्त नहीं होता।†

प्राचीनकाल के कामिल फ़क़ीर

प्राचीनकाल में हुए कामिल मुर्शिद, पीर-पैग़म्बर, सन्त-सतगुरु आज कहाँ हैं? वे अवश्य कुल-मालिक में समा चुके हैं। आज उन पर विश्वास रखने के स्थान पर सीधा परमात्मा पर विश्वास क्यों न किया जाये, क्योंकि वह भी तो उसमें ही समाये हुए हैं और हमारा वास्तविक उद्देश्य भी उसमें समा जाना है। परन्तु यदि हम आज परमात्मा से सीधी सहायता प्राप्त कर सकते हैं तो प्राचीनकाल में हुए लोग क्यों नहीं कर सकते थे? उस समय किसी पीर या

(पिछले पृष्ठ का शेष)

"There was no nation but had its teacher." Again the *Quran* (XXXV, 24; X.47) says:"Every nation had its guide", and "a divine messenger was sent to every class of men."

Sirdar Ikbal Ali Shah, *Islamic Sufism*, Samuel Weiser Inc., New York, 1971, pp. 38, 39.

* "Who can prevent the mercy of God from prevailing over people even in these modern times? Nobody can check it, for it is continuous. Do they think that there is no *siddiq*, no *muqarrab*, no *mujtaba*, no *mustafa* nowadays?"

A History of Sufism in India, Vol. I, p. 41

† *A History of Sufism in India*, Vol. I, p. 108

मुर्शिद के आने की क्या आवश्यकता थी? किसी एक समय बादलों द्वारा वर्षा होने का अर्थ है कि वर्षा केवल बादलों द्वारा ही हो सकती है और किसी एक समय किसी आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता का अर्थ है कि मनुष्य केवल अपने समय के रूहानी रहबर से ही लाभान्वित हो सकता है। नबी, रसूल, कामिल मुर्शिद या सच्चे भक्त का अस्तित्व उसके शरीर और दूसरे माद्दी हालात (सांसारिक अवस्थाओं) तक सीमित नहीं हैं। उसकी असलियत उसके अन्दर कार्यशील ईश्वरीय प्रकाश है जो किसी समय, किसी स्थान पर, किसी भी मनुष्य शरीर के अन्दर बैठकर अपना कार्य कर सकती है।

रिज़वी सूफ़ी सिलसिलों* के बारे में लिखता है कि पीर अपना चोला त्यागने से पूर्व अपना रूहानी उत्तराधिकारी नियुक्त करता था और उसको अपना सज्जादा (गद्दी), डण्डा और ख़िर्क़ा (चोला) स्मृति-चिह्न के रूप में देता था। उसके स्थान पर बैठनेवाला पीर सज्जादा-नशीन (गद्दीनशीन) कहलाता था।† दूसरे सन्तों की भी कई-कई गद्दियाँ चली हैं।

सत्ते और बलवंडे ने अपनी राग रामकली की वार में, जो आदि ग्रन्थ में दी गयी है, गुरु नानक साहिब से गुरु अर्जुन साहिब तक गुरु-गद्दी पहुँचने का वृत्तान्त वर्णन करते हुए लिखा है:

1. जोति ओहा जुगति साइ सहि काइआ फेरि पलटीऐ॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 966)

नानकु तू लहणा तूहै गुरु अमरु तू वीचारिआ॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 968)

यही विचार भाई गुरदास जी ने अपनी वारों में गुरु नानक से गुरु हरगोबिन्द तक गुरु-गद्दी के पहुँचने और भाई नन्दलाल गोया ने अपनी रचना 'जोत विकास' में गुरु नानक साहिब से गुरु गोबिन्द सिंह तक गुरु-गद्दी के पहुँचने के सम्बन्ध में लिखा है:

* जैसे कबीर साहिब और गुरु नानक साहिब की कई गद्दियाँ हुई हैं, उसी प्रकार सूफ़ी दरवेशों की कई-कई गद्दियाँ चलती हैं। हर गद्दी को एक सिलसिला कहते हैं।

† *A History of Sufism in India*, Vol. I, p. 4

1. निरंकारु नानक देउ निरंकारि आकार बणाइआ।
गुरु अंगदु गुरु अंग ते गंगहु जाणु तरंग उठाइआ।
अमरदासु गुरु अंगदहु जोति सरूप चलतु वरताइआ।
गुरु अमरहु गुरु रामदासु अनहद नादहु सबदु सुणाइआ।
रामदासहु अरजनु गुरू दरसनु दरपनि विचि दिखाइआ।
हरि गोबिंद गुर अरजनहु गुरु गोबिंदु नाउं सदवाइआ।
गुरमूरति गुर सबदु है साध संगति विचि परगटी आइआ।
पैरी पाइ सभ जगतु तराहिआ॥

(वार 24: पौड़ी 25)

2. वाह वाह गुरू समरथ पूरनं। वाह वाह गुर सच्चा सूरनं।
वाह वाह गुर कबह न झूरनं। वाह वाह गुर कला संपूरनं।
नानक सो अंगद गुर देवनं। सो अमरदास हर सेवनं।
सो रामदास जो अरजनं। सो हरिगोबिंद हरि परसनं।
सो करता हरि राइ दातारनं। सो हरि किशन अगंम अपारनं।
सो तेग़ बहादर सत सरूपनं। सो गुर गोबिंदसिंह हरि का रूपनं।
सब एको एको एकनं। नहीं भेद ना कुछ भी पेखनं।

(*जोत विकास* – भाई नन्दलाल)

भाई गुरदास और भाई नन्दलाल के उपर्युक्त उद्धरण ध्यान आकर्षित करते हैं। भाई गुरदास ने गुरु साहिबान के गुरुत्व को विशेष देही तक सीमित नहीं किया बल्कि उस देही द्वारा कार्य कर रही निरंकार की ज्योति से जोड़ा है। आप गुरु को निराकार का आकार कहते हैं और पारब्रह्म परमेश्वररूपी गंगा की तरंग कहते हैं। आप गुरुत्व के एक गुरु-व्यक्ति से दूसरे गुरु-व्यक्ति में पहुँचने के क्रम को अनहद शब्द के एक गुरु से दूसरे गुरु में प्रकाशित होने का नाम देते हैं, क्योंकि गुरु का वास्तविक स्वरूप उसके अन्दर काम कर रहा परमात्मा का शब्द है, 'गुरमूरति गुर सबदु है।' इसी प्रकार भाई नन्दलाल गुरु को पूर्ण परमात्मा की कला (कला संपूरनं), हरि की छोह (हरि परसनं) और हरि का रूप (हरि का रूपनं) कहते हैं। गुरु अपनी देह के कारण नहीं,

उस देह द्वारा कार्यशील कर्ता-पुरुष की शक्ति के कारण ही कर्ता है, दाता है, अगम, अपार है और प्रभु का रूप है। इस मूल की एकता के कारण ही सब गुरु एक हैं अर्थात् हरि का रूप हैं।

गुरु रामदास जी समझाते हैं कि सतगुरु की पीढ़ी या परम्परा हर युग में सदा चलती रहती है। युग-युग क़ायम रहनेवाली तत्त्व वस्तु परमात्मा की ज्योति है। कोई शरीर युग-युगान्तर तक नहीं चल सकता परन्तु ज्योति सदा चल सकती है। इससे भी यही संकेत मिलता है कि गुरुत्व का आधार देह न होकर उसमें काम करनेवाली परमात्मा की अमर शक्ति है:

हरि जुगह जुगो जुग जुगह जुगो सद पीड़ी गुरू चलंदी॥
जुगि जुगि पीड़ी चलै सतिगुर की जिनी गुरमुखि नामु धिआइआ॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 79)

एक सतगुरु से दूसरे सतगुरु का बनना दीपक से दीपक का प्रकाशमान होना है क्योंकि सतगुरु में काम करनेवाली शक्ति परमात्मा का शब्द या कलमा है। जो शिष्य या सेवक सतगुरु द्वारा इस हरि-तत्त्व का संग्रह करते हैं वे भी हरि-चरणों से जुड़ जाते हैं:

आपि नराइणु कला धारि जग महि परवरियउ॥
निरंकारि आकारु जोति जग मंडलि करियउ॥
जह कह तह भरपूरु सबदु दीपकि दीपायउ॥
जिह सिखह संग्रहिओ ततु हरि चरण मिलायउ॥
नानक कुलि निंमलु अवतर्यिउ अंगद लहणे संगि हुअ॥
गुर अमरदास तारण तरण जनम जनम पा सरणि तुअ॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1395)

इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि गुरु या मुर्शिद का होना ही काफ़ी नहीं है, गुरु का प्रभु-रूप होना आवश्यक है। नियम यह नहीं है कि मुक्ति गुरु द्वारा होगी, नियम यह है कि मुक्ति पूरे गुरु, सच्चे गुरु, कामिल मुर्शिद द्वारा होगी। नि:सन्देह ऐसे कामिल मुर्शिद, पूरे और सच्चे गुरु विरले हैं।

कबीर साहिब, दादू साहिब आदि अनेक महात्माओं की अनेक गद्दियाँ चली हैं क्योंकि कामिल फ़क़ीर नश्वर शरीर का त्याग करते समय उसमें पड़े अमर प्रकाश को दूसरे शरीर में हस्तान्तरित कर देते हैं। शरीर नये से नया हो सकता है परन्तु प्रकाश सनातन से सनातन है क्योंकि प्रकाश पवित्र प्रभु का है। साईं बुल्लेशाह ने अपने कलाम में मुर्शिद और ख़ुदा के लिए राँझा, पुन्नू, महीवाल, ढोला, सस्सी, राम, कृष्ण, कान्ह और ईसा के जो संकेत प्रयुक्त किये हैं और जिस प्रकार मंसूर, ज़करीया, सरमद, बू-अली आदि अनेक फ़क़ीरों की रूहानी महानता के गीत गाये हैं, उससे इस बात के विषय में कोई सन्देह नहीं रहता कि आप सतगुरु की हस्ती को किसी विशेष क़ौम, मज़हब, मुल्क, समय या स्थान तक सीमित नहीं करते, बल्कि उसको एक अनादि नियम, एक अविनाशी अस्तित्व और समर्थ शक्ति के रूप में चित्रित करते हैं जो किसी समय, किसी स्थान, किसी भी शरीर में प्रकाशमान हो सकती है।

हज़रत ईसा ने कहा है, जब तक मैं संसार में हूँ, मैं संसार का प्रकाश हूँ।* आप अपना काम दिन में कर लें† क्योंकि जब रात आती है तो कुछ नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ है कि अपने समय के पूर्ण सतगुरु से प्रभु की सच्ची भक्ति का भेद लेकर जीते-जी रूहानी सफ़र तय कर लेना चाहिये।

साईं बुल्लेशाह मुर्शिद को सौदागर और लालों का व्यापारी कहते हुए जीव को सावधान करते हैं कि जब तक तू शरीर में है और मुर्शिद का पाँच तत्त्वों का शरीर क़ायम है, तू कलमे, शब्द या नाम का व्यापार कर ले। मुर्शिद के चले जाने के बाद न कलमे का भेद मिल सकता है और न ही किसी से अन्त समय कलमे की कमाई हो सकती है:

कर सौदा पास सौदागर है, एह वेला हत्थ न आवीगा।
वणज वणोला नाल शिताबी, वणजारा उठ जावीगा।
उस दिन कुझ न हो सकसी, जद कूच नगारा लावीगा।
हिजाब करें दरेवशी कोलों, कद तक हुकम चलावेंगा।

---

* As long as I am in the world, I am the light of the world. (*John* 9:5)

† I must work the works of Him that sent me: while it is day. (*John* 9:4)

इसी कारण आपने अपने मुर्शिद हज़रत इनायत शाह में प्राचीन कामिल दरवेशों वाले सारे गुण भी दिखाये हैं और उसको राँझा या परमात्मा का रूप ही माना है। आप कहते हैं कि मेरा मुर्शिद ही काबा (मक्का में पूजनीय स्थल) है और मुर्शिद ही किबला (ख़ुदावन्द करीम, परमात्मा) है। मुर्शिद ही पति है और वही पति से मिलाप के सुन्दर वस्त्र पहनानेवाला साधन है। मुर्शिद ही सच्चा ज्ञान देनेवाला ज्ञानी है और वही गुप्त दैवी भेदों को खोलनेवाला आरिफ़ है। वही प्रभु के नाम, शब्द या कलमे का सन्देशवाहक है, वही लोहे को सोना बनानेवाला पारस है और वही इस ओर खड़ी आत्मा को पार करनेवाला खेवट है। सच्ची बात तो यह है कि मुर्शिद नबी और वली ही नहीं, स्वयं दयालु प्रभु है:

(क) एसे इश्क़े दी झंगी विच मोर बुलेंदा।
सानूं किबला काअबा सोहणा यार दखेंदा।
सानूं घायल करके ख़बर न लइया।
तेरे इश्क़ नचाइआं कर थइआ थइआ।

(ख) बुल्ला शौह ने आंदा मैनूं इनाइत दे बूहे।
जिस ने मैनूं पवाए चोले सावे ते सूहे।
जां मैं मारी है अड्डी मिल पया है वहीआ।
तेरे इश्क़ नचाइआं कर थइआ थइआ।

(ग) जो रंग रंगया गूढ़ा रंगया,
मुरशद वाली लाली ओ यार।

(घ) वेखो नी शाह इनायत साईं, मैं नाल करदा किवें अदाईं।
कदी आवे कदी आवे नाहीं, त्यों त्यों मैनूं भड़कण भाहीं।
नाम अल्ला पैग़ाम सुणाईं, मुख वेखण नूं न तरसाईं।

(ङ) बुल्ला शौह 'इनायत' आरफ़ है, ओह दिल मेरे दा वारस है।
मैं लोहा ते ओह पारस है, तुसीं ओसे दे संग घसदे हो।
कीहनूं लामकानी दसदे हो, तुसी हर रंग दे विच वसदे हो।

इसलिए साईं बुल्लेशाह सतगुरु बनकर आये हुए परमात्मा को बार-बार याद कराते हैं कि तू सृष्टि की रचना के समय किया वायदा याद कर कि तुझे रचना से वापस लाने के लिए मैं स्वयं संसार में आऊँगा। आप परमात्मा द्वारा आत्मा को जगत् में भेजने की घटना को परमात्मा का 'कारा' और रचना में आकर प्रभु रूप सतगुरु द्वारा आत्मा का हाथ पकड़ने को मुर्शिद का 'कारा' कहते हुए ताना देते हैं कि तू हमारे गुणों-अवगुणों को मत देख। तू उस कारे या वायदे को याद कर और अपने हुक्म से संसार में भेजे जीवों को अपनी दया से इस भवसागर से निकाल ले क्योंकि आत्माएँ कुसुंभड़े के देश में रहती हुई थक गयी हैं और तख़्त हज़ारे (सचखण्ड) को वापस जाने के लिए बेचैन हैं:

1. नाल रूहां दे लारा लाया, तुसीं चल्लो मैं नाले आया।
ऐथे परदा चा बणाया, मैं भरम भुलाया फिरदा हां।
मैं गल्ल ओथे दी करदा हां।

2. औगुण वेख न भुल मिआं रांझा,
याद करीं उस कारे नूं। दिल लोचे तख़त हज़ारे नूं।

3. अलसत केहा जद अक्खियां लाईआं,
हुण क्यों यार विसारी। मैं कुसुंबड़ा चुण चुण हारी।

साईं बुल्लेशाह के कलाम और उपर्युक्त चर्चा के सन्दर्भ में कुछ कामिल फ़क़ीरों के मुर्शिद की ज़ात के विषय में प्रकट किये गये विचार देखने से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि पूर्ण सतगुरु परमात्मा से अभेद होता है। वह दैवी प्रकाश देह का चोला केवल इसलिए धारण करता है कि मनुष्य के स्तर पर आकर और उस जैसा होकर उसके अन्दर अपना प्यार पैदा कर सके और अन्त में अपनी अँगुली पकड़ाकर उसको निज-घर वापस ले जा सके।

विद्या और आध्यात्मिकता

विद्वान और ब्रह्मज्ञानी

अलफ़ अल्ला नाल रत्ता दिल मेरा, मैनूं 'बे' दी ख़बर न काई।*
'बे' पढ़दयां मैनूं समझ न आवे, लज़्ज़त अलफ़ दी आई।†
'ऐन' ते 'ग़ैन' नूँ समझ न जाणा, गल्ल अलफ़ समझाई।‡
बुल्लया कौल अलफ़ दे पूरे, जेहड़े दिल दी करन सफ़ाई।§
असां पढ़या इलम तहकीकी ए, ओथे इक्को हरफ़ हकीकी ए।
होर झगड़ा सभ वधीकी ए, ऐवें रौला पा पा बैह्न्दी ए।
मुँह आई बात न रैह्न्दी ए।

अन्य कामिल फ़क़ीरों की भाँति साईं बुल्लेशाह ने वेद-कतेब, ग्रन्थों-पोथियों, शास्त्रों के ज्ञान और निजी रूहानी अनुभव की विस्तार से परस्पर तुलना की

* 'अलिफ़' अरबी, फ़ारसी और उर्दू वर्णमाला का पहला अक्षर है जिसका संकेत एक परमात्मा या पूर्ण अद्वैत की ओर है।

† **'बे'** वर्णमाला का दूसरा अक्षर है। परमात्मा के अतिरिक्त शेष जो कुछ है, सबको **'बे'** या दूसरा कहा जाता है।

‡ अरबी व फ़ारसी वर्णमाला में ऐन और गैन में केवल इतना अन्तर होता है कि ऐन पर बिन्दी लगाने से गैन बन जाता है। आपका इससे भाव है कि मुझे केवल परमात्मा की पूर्ण एकता का ज्ञान हुआ है। मैं ऐन और गैन अर्थात् अनेकता को नहीं मानता।

§ वे लोग ही अलिफ़ के पूर्ण क़ौल (वचन, हुक्म, शब्द) को समझ सकते हैं जो दिल की सफ़ाई करते हैं।

है। आप स्वयं बहुत बड़े विद्वान थे परन्तु आपको रूहानियत की दौलत उस अराईं फ़क़ीर से मिली जो बाहर से देखने में प्याज़ों की पनीरी लगाने का काम करता था परन्तु वास्तव में सत्य के सच्चे अभिलाषियों के हृदय में उसके* कलमे, शब्द या नाम का पौधा लगाने में निपुण था।

साईं जी के सामने अपने मुर्शिद की रूहानी बड़ाई और पवित्र व उच्च रहनी का जीवित उदाहरण था। विद्वान अपनी विद्या को धन-दौलत और मान-बड़ाई की प्राप्ति का साधन बना रहे थे, परन्तु हज़रत इनायत शाह हक़-हलाल की कमाई करते हुए अपने ज्ञान और रूहानियत की उच्च व निर्मल दौलत को मुफ़्त बाँट रहे थे। संसार के महान् सूफ़ी विद्वान् मौलाना रूम ने फ़रमाया था कि शम्स तब्रेज़ का दास बने बिना रूमी कभी मौलाना रूम नहीं बन सकता था: 'मौलवी हरगिज़ न शूद मौलाए रूम, चूं गुलामे शमस तबरेजी न शुद।' साईं बुल्लेशाह ने भी डंके की चोट से घोषणा की है:

जे तूं लोड़ें बाग बहारां, चाकर रहो अराइयां दा।

इल्मे-सीना और इल्मे-सफ़ीना

यह इल्मे-सीना† की इल्मे-सफ़ीना‡ पर विजय का ज्वलन्त उदाहरण है। साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि ग्रन्थों-पोथियों का बिना अभ्यास का कोरा ज्ञान दु:खों की गठरी है। विद्वान लोग धर्म-ग्रन्थों की व्याख्या करते समय बाल की खाल उतारते हैं परन्तु वे आन्तरिक भेदों से अनभिज्ञ हैं। उनको न तो वास्तविकता का निजी ज्ञान है और न ही वे ग्रन्थों-पोथियों में वर्णित उपदेशों के अनुसार अपनी रहनी ढालने का प्रयत्न करते हैं। विद्या का उद्देश्य सत्य का मार्ग दिखाना और उसकी प्राप्ति में सहयोग देना है। जिस विद्या से न नीयत साफ़ हो, न मन वश में आये और न ही रहनी पवित्र हो, उस विद्या का क्या लाभ है? आप कहते हैं:

* **उसके**=उस ईश्वर के।

† **इल्मे-सीना**=सहज ज्ञान जो रूहानी अभ्यास द्वारा सीधा अन्तर में मिलता है।

‡ **इल्मे-सफ़ीना**=बहिर्मुखी विद्या।

क्यों पढ़ना ए गड्ड किताबां दी, सिर चाना एं पंड अज़ाबां दी।
बण हाफ़ज़ हिफ़ज़ कुरान करें। पढ़ पढ़ के साफ़ ज़बान करें।
फिर नेअमत विच ध्यान करें, मन फिरदा ज्यों हलकारा ए।

हकीम सनाई का कथन है कि जो विद्या हक़ीक़त की मंज़िल पर नहीं पहुँचाती, उससे तो मूढ़ता अच्छी है।*

गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा' (आदि ग्रन्थ, पृ. 140) क्योंकि 'पड़िऐ नाही भेदु बुझिऐ पावणा॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 148) प्रभु के दरबार में काम आनेवाली वस्तु परमात्मा की सच्ची भक्ति है, विद्या का भण्डार नहीं:

पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ॥
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात॥
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास॥
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास॥
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 467)

इस प्रकार के वाचक ज्ञानी की 'दीपक तले अँधेरा' वाली दशा होती है। वह दूसरों को उपदेश देता है और फ़तवे (मुसलमानों का दण्ड-पत्र) जारी करता है, परन्तु उसके अपने अन्दर भ्रमों व शंकाओं के ढेर लगे हुए हैं। उसकी रहनी और करनी में समानता नहीं है। इल्मे-सीना के जानकार कामिल मुर्शिद के बिना वह बाहर ही ठोकरें खाता रहता है:

पढ़ पढ़ मसले रोज़ सुणावें,
खाना शक शुबह दा खावें।
दस्सें होर ते होर कमावें,
अंदर खोट बाहर सचयार।
इल्मों बस करीं ओ यार।

* इल्म कज़ तू तुरा न बस्तानद, जहल ज़ां इल्म ब बवद बिसयार।

पढ़ पढ़ इल्म लगावें ढेर,
कुरान किताबां चार चुफेर।
गिरदे चानण विच अनेर,
बाझों रहबर ख़बर न सार।
इल्मों बस करीं ओ यार।

साईं जी ने फ़रमाया है कि पण्डित और मशालची लोगों को प्रकाश दिखाते हैं परन्तु स्वयं अँधेरे में रहते हैं:

बुल्लया मुल्लां अते मशालची दोहां इक्को चित्त।
लोकां करदे चानणा आप हनेरे नित्त।

जो विद्वान दूसरों को उपदेश देते हैं, पर स्वयं मोह और माया का शिकार हैं अर्थात् नाम की भक्ति नहीं करते, वे दरगाह में सज़ा पाते हैं:

पड़ि पड़ि पंडित बेद वखाणहि माइआ मोह सुआइ॥
दूजै भाइ हरि नामु विसारिआ मन मूरख मिलै सजाइ॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 85)

पलटू साहिब भी संकेत करते हैं कि जिस पण्डित ने सारा ज्ञान प्राप्त किया, परन्तु अपने आपको न पहचाना, उसके ज्ञान का एक कौड़ी भी मूल्य नहीं। सच्चा पण्डित वह है जो लोगों को उपदेश देने की अपेक्षा मन व इन्द्रियों को वश में करके आत्मा की पहचान करता है:

पढ़ि पढ़ि क्या तुम कीन्हा पंडित, अपना रूप न चीन्हा॥
औरन को तुम ज्ञान बताओ, तुम को परै न बूझी।
जस मसालची सबहिं दिखावै, वा को परै न सूझी॥
अपनी खबर नहीं है तुमको, औरन को परमोधो।
पढ़ना गुनना छोड़ि के पाँड़े, अपनी काया सोधो॥
इन्द्रिन से आजिज तुम रहते, इन्द्री मारि गिराओ।*

* तू इन्द्रियों का मारा हुआ है; तू इन्द्रियों (विषयों-विकारों) को वश में कर।

माया खातिर बकि बकि मरते, मन अपनो समुझाओ॥
बुद्धि मँहै परबीन चतुर हौ, खाँड़ धूरि में सानौ।*
पलटूदास कहै सुनु पाँड़े, बचन हमारा मानौ॥

(*पलटू साहिब की बानी*, भाग 3, शब्द 99)

साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि संसार में परमात्मा की प्राप्ति की बहुत चर्चा है। विद्वानों ने संसार में शोर मचा रखा है। ऐसी दशा में लोगों को सत्य का पता व ठिकाना कैसे लग सकता है:

होर ने सभों गल्लड़ियां अल्लाह अल्लाह दी गल्ल।
कुझ रौला पाया आलमां, कुझ काग़ज़ां पाया झल्ल।

कबीर साहिब कहते हैं कि ग्रन्थों-शास्त्रों की काग़ज़ की कोठरी को कर्मकाण्ड की स्याही के ताले लगे हुए हैं। पत्थरों की मूर्तियों ने संसार को भ्रमों की नदी में डुबो दिया है और ब्राह्मणों ने लोगों को लूटकर खा लिया है। इस बात की आवश्यकता है कि मानव इस भ्रम-जाल को तोड़कर मन को परमात्मा के चरण-कमलों से जोड़े:

कबीर कागद की ओबरी मसु के करम कपाट॥
पाहन बोरी पिरथमी पंडित पाड़ी बाट॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1371)

कबीर संसा दूरि करु कागद देह बिहाइ॥
बावन अखर सोधि कै हरि चरनी चितु लाइ॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1373)

पलटू साहिब कहते हैं कि पण्डित व पुरोहित ग्रन्थों की गूढ़ टीका करते हैं परन्तु स्वयं मन और माया के हाथों बिके हुए हैं। उन्होंने स्वयं कभी दैवी प्रकाश की एक किरण भी नहीं देखी, परन्तु दूसरों को परमात्मा से मिलाप करने का उपदेश देते रहते हैं। वे इस भ्रम के शिकार हैं कि शायद काग़ज़ों में ही परमात्मा मिल जायेगा:

* **परबीन**=समझदार।

बेद पुरान पंडित बाँचै, करता अपनी दूकान है जी।
अरथ को बूझि के टीका करै, माया में मन बिकान है जी।
औरन को परमोध करै, खाली आपना मकान है जी।
पलटू कागद में खोजत है, साहिब कहीं लुकान है जी।

(*पलटू साहिब की बानी*, भाग 2, झूलना 59)

बहिर्मुखी विद्या या मन और बुद्धि परमात्मा की प्राप्ति का साधन नहीं हैं, 'सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1)। मन और बुद्धि के प्रयत्न और वेदों-शास्त्रों, ग्रन्थों-पोथियों का पाठ परमात्मा से मिलाने के स्थान पर अहं की मैल में वृद्धि करके परमात्मा से और अधिक दूर ले जाता है:

मनहठ बुधी केतीआ केते बेद बीचार॥
केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोख दुआर॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 62)

मन और बुद्धि सीमित हैं जो उस असीम दयालु प्रभु की प्राप्ति का साधन नहीं बन सकते।* ग्रन्थ-शास्त्र सन्तों-महात्माओं द्वारा प्राप्त किए रूहानी अनुभव बयान करते हैं। हमारा कल्याण दूसरों के रूहानी अनुभव पढ़ने से नहीं, स्वयं वह अनुभव प्राप्त करने में है। प्यास पानी पीने से बुझती है, पानी की महिमा के सुन्दर वर्णन पढ़ने से नहीं।

विद्या, विवेक और करनी

साईं जी कहते हैं कि ज्ञान का वास्तविक कार्य हमारी विवेक शक्ति में वृद्धि करना है। ज्ञान झूठ और सत्य, ग़लत और सही, भले और बुरे में अन्तर करना सिखाता है परन्तु वे विद्वान जो स्वयं को आँखों वाले होने का दावा करते हैं, वास्तव में अकल के अन्धे हैं। वे भले-बुरे, गुरुमुख-मनमुख की

* अकल गो आस्तां से दूर नहीं। इसकी तकदीर में हज़ूर नहीं।

(डॉ. इकबाल)

पहचान नहीं कर सकते, जिस कारण वे अपने लोक और परलोक दोनों को बिगाड़ लेते हैं। जिस विद्या से आशा-तृष्णा शान्त होने के स्थान पर ईर्ष्या की अग्नि अधिक प्रचण्ड हो जाये या जो विद्या ईमानदारी के स्थान पर पराये धन में नीयत रखना सिखाये, परमात्मा ऐसी विद्या से प्रसन्न नहीं होता। वह तो सन्तोष और ईमानदारी पर प्रसन्न होता है, तृष्णा और बेईमानी की लपटें भड़कानेवाली विद्या पर नहीं। मन के खोटे विद्वानों की अपेक्षा पवित्र हृदय वाले और अनपढ़ हज़ार दर्जे अच्छे हैं:

1. इल्मों पए कज़ीए होर, अक्खीं वाले अन्ने कोर।
   फड़े साध ते छड्डे चोर, दोहीं जहानी होया खुआर।
   इल्मों बस करीं ओ यार।
2. पढ़ पढ़ मुल्लां होय काज़ी, अल्लाह इल्मां बाझों राज़ी।
   होवे हिरस दिनों-दिन ताज़ी, नफ़ा नीअत विच गुज़ार।
   इल्मों बस करीं ओ यार।

गुरु नानक साहिब ने भी समझाया है कि विद्वान द्वारा किये गये पापों की सज़ा उसको स्वयं भोगनी पड़ती है, अनपढ़ साधु को नहीं। उस दरगाह में करनी देखी जाती है, विद्या नहीं:

पड़िआ होवै गुनहगारु ता ओमी साधु न मारीऐ॥
जेहा घाले घालणा तेवेहो नाउ पचारीऐ॥
ऐसी कला न खेडीऐ जितु दरगह गइआ हारीऐ॥
पड़िआ अतै ओमीआ वीचारु अगै वीचारीऐ॥
मुहि चलै सु अगै मारीऐ।॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 469-70)

प्रसिद्ध सूफ़ी दरवेश ख़्वाजा अबू इस्माइल अब्दुल्ला अनसारी (1005-1090) लिखते हैं: एक मनुष्य सत्तर वर्ष विद्या ग्रहण करता रहता है, परन्तु अन्दर ज्योति प्रकट नहीं कर सकता। दूसरा इनसान सारी उम्र कुछ नहीं सीखता। वह केवल एक शब्द या कलमा सुनता है और उस शब्द या कलमे

में ही लीन हो जाता है। इस मार्ग पर तर्क-वितर्क कुछ नहीं करता। आप तलाश करें तो शायद आपको हक़ीक़त के दर्शन हो जायेंगे।*

ख़्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं कि भक्ति-विहीन विद्वानों का उपदेश न सुनना अच्छा है। ऐसे उपदेशकों की सभा से कन्नी काटकर मयख़ाना (भाव कामिल मुर्शिद के सत्संग) में जाना चाहिये।†

उस सच्ची दरगाह में विद्या का नहीं वरन् अमल का मान है। वह परमात्मा अनपढ़, आमिलों, साधकों और आशिक़ों को अपने पास बिठाता है परन्तु जिन विद्वानों के अमल उनकी विद्या के अनुकूल नहीं, उनको दूर ही रखता है:

बुल्लया हरिमंदर में आए के, कहो लेख दियो बता।
पढ़े पंडित पांधे दूर कीए, अहमक लीए बुला।

जिस पण्डित के अपने घर में विकारों की आग लगी हुई है और वह दूसरों को उपदेश करता है, वह कभी भी आवागमन के चक्र से मुक्त नहीं हो सकता:

1. पड़ि पंडितु अवरा समझाए॥ घर जलते की खबरि न पाए॥
   (आदि ग्रन्थ, पृ. 1046)
2. अवर उपदेसै आपि न करै॥ आवत जावत जनमै मरै॥
   (आदि ग्रन्थ, पृ. 269)

आध्यात्मिकता में सफलता की कुंजी मन की कोमलता, हृदय की विशालता, प्रीति-प्रतीति और नम्रता है। इसमें मनमत को त्यागकर गुरु के कथनानुसार चलना पड़ता है और मनमरज़ी त्यागकर कुल-मालिक की रज़ा और भाणे में आना पड़ता है। इसके विपरीत, वाचक ज्ञान अहंकार, द्वैत, वाद-विवाद और घृणा पैदा करके मन को गन्दा कर देता है। साईं जी संकेत

---

* *The Persian Mystics*: Ansari: p. 36 (tr. by Sardar Sir Jogindra Singh).

† अनां बमैकदा ख़ाहेम ताफ़त ज़ीं मजलिस,
कि आवज़े बेअमलां वाजब अस्त ना शुदीदन।

करते हैं कि हुक्म न माननेवाला और अहं पैदा करनेवाली विद्या लाभ के स्थान पर हानि का कारण बनती है:

बहुता इल्म अज़ाज़ील ने पढ़या, झुग्गा झाहा ओसे दा सड़या।
गल विच तौक लाअनत दा पड़या, आख़िर गया ओह बाज़ी हार।
इल्मों बस करीं ओ यार।

धर्म-ग्रन्थों का वास्तविक उद्देश्य हमें वाचक-ज्ञानी या विद्वान बनाना नहीं, आमिल और साधक बनाना है। साईं बुल्लेशाह ने एक नहीं बल्कि अनेक काफ़ियों में इस बात पर ज़ोर दिया है कि परमात्मा के घर पहुँचने के लिए परमात्मा, सतगुरु और शब्द के प्रेम के एक 'अलिफ़' को छोड़ किसी दूसरी 'बे', 'पे' या 'ते' की आवश्यकता नहीं:

1. इक नुक़ता यार पढ़ाया है।
2. इक अलफ़ पढ़ो छुटकारा ए।
3. इल्मों बस करीं ओ यार।
   इक्को अलफ़ तेरे दरकार।

वाचक ज्ञान और सहज ज्ञान

संसार के सब सन्त-महात्मा इस एक अलिफ़ के अमल को हर प्रकार की विद्या से बड़ा मानते हैं। इस अमल से आन्तरिक सहज ज्ञान के अथाह ख़ज़ाने खुल जाते हैं। इस विद्या में एक अलिफ़ (परमात्मा) और एक मीम (सतगुरु) के बिना दूसरी किसी वस्तु की आवश्यकता ही नहीं:

बुल्ला न राफ़जी है न सुंनी, आलम फ़ाज़ल न आलम जुंनी।
इक्को पढ़या इलम लदुंनी, वाहद अलिफ़ मीम दरकार।*

* **इलम लदुंनी**=आन्तरिक समाधि की अवस्था से प्राप्त होनेवाले सहजज्ञान को इल्मे-लुदंनी कहा जाता है जो लिखने, पढ़ने और बोलने का विषय नहीं है।

हुज़ूर स्वामी जी महाराज द्वारा की गयी विद्या और सुरत-शब्द के अभ्यास की परस्पर तुलना को इस विषय पर अन्तिम निर्णय कहा जा सकता है। आप फ़रमाते हैं कि रूहानियत में सहायता करनेवाली वस्तु विद्या या अविद्या नहीं, परमात्मा तथा उसके नाम का सच्चा प्रेम है। प्रेम-भक्ति और सुरत-शब्द की साधना द्वारा अन्तर में घट की पोथी पढ़ने और साक्षात् रूहानी अनुभव प्राप्त करने के मुक़ाबले में ग्रन्थों-शास्त्रों के वाचक ज्ञान का एक कौड़ी भी मूल्य नहीं:

हे बिद्या तू बड़ी अबिद्या। संतन की तैं क़दर न जानी॥
उनकी प्रेम अनुभवी बानी। तू बुद्धी संग रहत खपानी॥
बानी बन में रहे भुलाने। पढ़ पढ़ पोथी जन्म बितानी॥
बाहरमुखी ग्रन्थ नित पढ़ते। घट की पोथी पढ़ें न पढ़ानी॥
संत गगन में सुरत चढ़ावें। वे सुनते नित वहाँ की बानी॥
संत न बिद्या पढ़ते कोई। उनके अनुभव समुँद समानी॥
सब परकार प्रेम की महिमा। बिद्या अबिद्या दोनों हानी॥
जिनका प्रेम शब्द में नाहीं। उनको बिद्या ख़्वार करानी॥
कथनी बदनी काम न आवे। भक्ति बिना जम के सहे डानी॥
शब्द कमाई करो प्रेम से। राधास्वामी कहत बखानी॥

(*सारबचन संग्रह*, 24:3:1-41)*

एक सूफ़ी दरवेश कहता है कि अपने दिल की पुस्तक पढ़ो, इससे अच्छी कोई अन्य पुस्तक नहीं, 'दर मसहफ़े दिले खुद बीं कि किताबे बअज़ी नेस्त।' दादू साहिब लिखते हैं कि लोग सुनी-सुनायी बातें करते हैं परन्तु मैं आन्तरिक आँख से देखी हक़ीक़त बयान करता हूँ:

दादू देखा दीदा, सब कोइ कहत सुनीदा॥

(*घट रामायण*, भाग 2, पृ. 8)

* इस शब्द की 41 पंक्तियों में से केवल दस पंक्तियाँ ही यहाँ दी गयी हैं।

संसार के महान् ग्रन्थ वाचक-ज्ञानियों ने नहीं, अन्दर जाकर सत्य के साक्षात् दर्शन करनेवाले महापुरुषों ने रचे हैं। उनके ग्रन्थ आन्तरिक निजी अनुभव पर आधारित हैं, ग्रन्थों-शास्त्रों के पाठ-विचार पर नहीं। गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं कि संसार के सब वेद-शास्त्र राम-नाम की लिव से निकले हैं:

बेद पुरान सिंम्रिति सुधाख्यर॥ कीने राम नाम इक आख्यर॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 262)

हज़रत सुलतान बाहू कहते हैं कि *चौदह तबक़ों, क़ुरान शरीफ़* और सब दूसरी रूहानी पुस्तकें उस कलमे, शब्द या नाम में शामिल हैं जो लिखने, पढ़ने और बोलने का विषय नहीं है:

अंदर कलमा कल कल करदा, इश्क़ सिखाया कलमा हू।
चौदां तबक़े कलमे अंदर, छड्ड कताबां इलमां हू।

आप आलिमों और परमात्मा के सच्चे आशिक़ों की तुलना करते हुए कहते हैं:

पढ़ पढ़ इलम हज़ार कताबां, आलिम होए भारे हू।
हरफ़ इक इश्क़ दा पढ़ न जाणन, भुल्ले फिरन विचारे हू।
इक निगाह जे आशिक़ वेखे, लख हज़ारां तारे हू।
लक्ख निगाह जे आलिम वेखे, किसे न कद्धी चाढ़े हू।
इश्क़ अक़ल विच मंज़ल भारी, सैआं कोहां दे पाड़े हू।
जिन्हां इश्क़ ख़रीद न कीता, दोहीं जहानीं मारे हू।

साईं बुल्लेशाह ने सतगुरु से यही एक पाठ पढ़ा जिससे आत्मा अद्वैत के समुद्र की तैराक हो गयी:

जद मैं सबक इश्क़ दा पढ़या, दरया वेख वहदत दा वड़या।
घुंमण घेरां दे विच अड़या, शाह इनाइत लाया पार।

विद्या के विषय में उपरोक्त विचारों से यह ख़याल नहीं बनना चाहिये कि कामिल मुर्शिद धर्म-ग्रन्थों के पाठ-विचार के विरुद्ध हैं। सन्तों-महात्माओं ने स्वयं जीवन के अनेक अमूल्य वर्ष व्यतीत करके हमारे लाभ के लिए धर्म-ग्रन्थों की रचना की है। परन्तु इन ग्रन्थों में ही उन्होंने लिखा है कि हमारा छुटकारा धर्म-ग्रन्थों के पाठ-विचार से नहीं, परमात्मा की सच्ची भक्ति, सच्चे प्रेम और कलमे या शब्द की कमाई से होगा। एक लम्बी व अँधेरी सुरंग में बैठा मनुष्य चाहे सारी आयु सूर्य के प्रकाश की महिमा के गुणगान करता रहे, उसको उसका कोई अमली लाभ नहीं है। अमली लाभ सुरंग से बाहर निकलकर सूर्य के प्रकाश में आने से मिलेगा। परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास रखकर सारी आयु ग्रन्थों-शास्त्रों में उसकी महिमा पढ़ते रहने का कोई अमली लाभ नहीं होगा। परमात्मा में विश्वास होने और ग्रन्थों-शास्त्रों में उसकी महिमा पढ़ने का वास्तविक लाभ परमात्मा से मिलाप करके ही हो सकता है।

खोज की दृष्टि से, सत्य के विषय में जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि से, शंका, भ्रम-निवारण करने और रूहानियत के विषय में सैद्धान्तिक जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि से ग्रन्थों-शास्त्रों की भारी महिमा है परन्तु इनसे प्राप्त हुए ज्ञान का वास्तविक लाभ तभी है जब हम इस ज्ञान के अनुसार जीवन को ढालें और जिस सत्य का इनमें वर्णन है, उसका साक्षात् दर्शन कर लें।

धर्म-ग्रन्थों और रूहानी सिद्धान्तों का ज्ञान हमारी प्रारम्भिक अवस्था है, अन्तिम नहीं। विज्ञान के सिद्धान्त, प्रयोगों में ढलकर ही सत्य का रूप धारण करते हैं। इसलिए सन्तों-महात्माओं ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि ग्रन्थों-शास्त्रों में वर्णित ज्ञान दूसरों का अनुभव है, परन्तु हमारे लिए केवल सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को रूहानी अभ्यास द्वारा अपने लिए ठीक सिद्ध करना ही हमारा वास्तविक उद्देश्य है।

कर्मकाण्ड और आध्यात्मिकता

इश्क़ शरआ की नाता

इश्क हक़ीक़ी ने मुट्ठी कुड़े, मैनूं दस्सो पिया का देस।
मापयां दे घर बाल इयाणी, प्रीत लगा करक लुट्टी कुड़े।
मनतक मअने कंनज़ कदूरी, मैं पढ़-पढ़ इलम विगुची कुड़े।*
नमाज़ रोज़ा ओह्नां की करना, जिन्हां प्रेम सुराही लुट्टी कुड़े।
बुल्ला शौह दी मजलस बह के, सभ करनी मेरी छुट्टी कुड़े।

सच्ची आध्यात्मिकता के निष्पक्ष खोजी के लिए आवश्यक है कि कामिल फ़क़ीरों द्वारा की गयी शरीअत या कर्मकाण्ड की आलोचना को अपनी बन चुकी धारणाओं से मुक्त होकर उदार हृदय से विचार करें ताकि उसको असलियत की तह तक पहुँचने में कठिनाई न हो।

संसार में अनगिनत कर्मकाण्ड प्रचलित हैं। हर धर्म अपने कर्मकाण्ड को उत्तम मानता है। परन्तु कामिल फ़क़ीर समदर्शी होते हैं। हज़रत जुनैद कहते हैं कि परमात्मा की दया से अद्वैत में पहुँच चुका ब्रह्मज्ञानी धरती के समान है, जिस पर अच्छे और बुरे, सब लोग एक तरह चल-फिर सकते हैं। वे उन बादलों के समान हैं जो सब पर एक जैसी छाया करते हैं। वे उस वर्षा-जल के समान हैं जो किसी भेद-भाव के बिना सब पर एक जैसा

* **मनतक**=दलीलबाज़ी, तर्क-वितर्क; **कदूरी**=इसलामी फ़िक़अ (इसलामी धर्मशास्त्र) की पुस्तक।

बरसता है।* कुल-मालिक सारे संसार के लिए है। वह रब्बुलआलमीन है। परमात्मा का रूप बन चुके कामिल फ़क़ीर भी लोगों के सर्वहितैषी होते हैं, इसलिए वे किसी विशेष धर्म के कर्मकाण्ड से नहीं बँध सकते।

कामिल फ़क़ीर परमात्मा से मिलाप के सच्चे मार्ग की सराहना करने के लिए और अधूरे या ग़लत मार्ग की आलोचना करने के लिए विवश होते हैं ताकि लोग ग़लती का शिकार होकर मनुष्य-जन्म के अमूल्य अवसर को व्यर्थ न खो दें। वे जन-कल्याण के लिए अनेक प्रकार के संकट झेलकर भी सत्य की मशाल जलाते हैं। साईं जी संसार की संकीर्णता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि लोग सत्य को प्रकट करनेवाले फ़क़ीरों के रक्त के प्यासे हो जाते हैं, परन्तु फ़क़ीर संकेत से या स्पष्टता से सत्य का वर्णन करने के लिए विवश होते हैं ताकि हक़ीक़त के जिज्ञासुओं को असलियत का संकेत मिल जाये:

1. झूठ आखां ते कुझ बच्चदा ए, सच आखयां भांबड़ मचदा ए।
   जी दोहां गल्लां तों जच्चदा ए, जच्च जच्च के जिहबा कैह्न्दी ए।
   मुँह आई बात न रैह्न्दी ए।
2. जे ज़ाहर करां असरार ताईं, सभ भुल्ल जावण तकरार ताईं।†
   फिर मारन बुल्ले यार ताईं, एथे मख़फ़ी बात सोहेंदी ए।‡

साईं जी की कर्मकाण्ड की सबसे कड़ी आलोचना इस प्रकार है:

भट्ठ नमाज़ां ते चिक्कड़ रोज़े, कलमे ते फिर गई सयाही।
बुल्ले शाह शौह अंदरों मिलया, भुल्ली फिरे लोकाई।

कर्मकाण्ड और रूहानी सत्य दोनों के पूर्ण ज्ञाता द्वारा की गयी इस आलोचना को पल भर के लिए एक ओर रखकर यह सोचना चाहिये कि

* *A History of Sufism in India*, Vol. I, pp. 56-57

† **असरार**=भेद; **तकरार**=झगड़े।

‡ **मख़फ़ी**=गुप्त, छिपाकर या संकेत से की गयी बात।

सब लोग परमात्मा की प्राप्ति के लिए ही सारी आयु मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों आदि की पूजा-पाठ, अरदास, आरती, नमाज़ आदि करते हैं। हम इस उद्देश्य के लिए ही तीर्थ-यात्रा या हज करते हैं, रोज़े या व्रत रखते हैं और अनेक प्रकार के जप-तप, दान-पुण्य, ग्रन्थों-शास्त्रों के पाठ तथा कई हठ कर्म करते हैं। क्या हमें कभी इन साधनों द्वारा दैवी प्रकाश की एक किरण भी दिखायी दी है या हमारी आत्मा तनिक अन्दर की ओर गयी है? इसके विपरीत, साईं जी कहते हैं, 'बुल्ले शाह शौह अंदरों मिलया।' आप सत्य के सच्चे प्रेमियों को समझाते हैं कि परमात्मा भी अन्दर है, उसके मिलने का मार्ग और साधन भी अन्दर है। यह मार्ग या साधन हर धर्म के हर प्रकार के कर्मकाण्ड से मुक्त है। आप कहते हैं कि जब तक मन साफ़ नहीं होता और प्रभु से मिलाप नहीं होता, हमारी दिखावे की धार्मिक रहनी का क्या लाभ है?

उमर गवाई विच मसीती, अन्दर भरया नाल पलीती।
कदे नमाज़ तौहीद न कीती, हुण की करनां एं शोर पुकार।
इश्क़ दी नवीयों नवीं बहार।

एक जर्मन विद्वान लिखता है कि जब कोई सत्य का जानकार हमारी किसी पुरानी कमज़ोरी की ओर संकेत करता है तो हमारे अन्दर ज़बरदस्त रोष पैदा होता है। हम अहं वश यह सोच नहीं सकते कि हम सचमुच वर्षों ग़लती का शिकार रहे हैं। अपने अहं और अज्ञान के कारण हम ज्ञानी की सही बात को भी ग़लत सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। इसके विपरीत, जो लोग ज्ञानी के सच्चे वचनों का वार सहन करके विवेक से काम लेते हैं, उनके अन्दर ग़लती का अहसास पश्चात्ताप में, पश्चात्ताप गलती के त्याग में और सत्य को धारण करने की दिलेरी में बदल जाता है। इस प्रकार वह व्यक्ति अन्धकार से प्रकाश में पहुँच जाता है।

सन्त-महात्मा, कामिल फ़क़ीर या सच्चे ब्रह्मज्ञानी उस डॉक्टर के समान हैं जो जीव के मन पर बने हुए अज्ञान के फोड़े पर नश्तर लगाने के लिए विवश होते हैं। जो लोग यह नश्तर सहन कर लेते हैं उनके अन्दर से गन्दा

माद्दा निकल जाता है, जिसके बाद सतगुरु ज़ख़्म पर परमात्मा के प्रेम का मरहम लगाकर उसको सदा के लिए आरोग्य कर देते हैं। यही कारण है कि केवल सूफ़ी फ़क़ीरों ने ही नहीं, सन्त नामदेव, कबीर साहिब, गुरु नानक साहिब, दादू साहिब, पलटू साहिब, तुलसी साहिब और हुज़ूर स्वामी जी महाराज आदि अनेक सन्तों ने संसार के अनेक प्रकार के कर्मकाण्डों की आलोचना की है।

इन सब पूर्ण सन्तों-महात्माओं की भाँति साईं जी की कर्मकाण्ड की आलोचना का वास्तविक उद्देश्य विरोध, ईर्ष्या या निन्दा नहीं, परन्तु लोगों का रूहानी हित है। साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि परमात्मा के सच्चे भक्त चौथे पद अर्थात् सचखण्ड का भेद खोलते हैं, 'गल्ल चौथे पद दी खोलें हैं।' उनके अन्दर से सत्य की सुगन्ध बरबस बाहर निकलती है। अज्ञानी लोग उनकी ऊँची रूहानी अवस्था को तो समझ नहीं सकते, उनकी जान के दुश्मन अवश्य बन जाते हैं, 'सच्च आखीए तां गल पैंदे नी।' आप कहते हैं कि प्रियतम के मिलाप की माला गूँथ चुकी सच्ची सुहागिन वहमों, भ्रमों आदि के माया-जाल से मुक्त हो जाती है। अज्ञानी की बड़ी निशानी ही यह है कि वह ज्ञानी को अज्ञानी समझता है। आप कहते हैं कि सन्तों-महात्माओं की बात सुनकर सच्चे प्रेमियों के हृदय फूल की तरह खिल उठते हैं परन्तु आध्यात्मिक भेदों से अनभिज्ञ कर्मकाण्डों के क़ैदी लोग, सन्तों का विरोध करने के लिए मैदान में कूद पड़ते हैं:

चुप्प करके करीं गुज़ारे नूं।
सच्च सुण के लोक न सैह्न्दे नी, सच्च आखीए तां गल पैंदे नी।
फिर सच्चे पास न बैह्न्दे नी, सच्च मिट्ठा आशिक प्यारे नूं।

सच्च शरआ करे बर्बादी ए, सच्च आशिक दे घर शादी ए।
सच्च करदा नईं आबादी ए, जिहा शरआ तरीकत हारे नूं।

चुप्प आशिक तों न हुंदी ए, जिस आई सच्च सुगन्धी ए।
जिस माह्ल सुहाग दी गुंदी ए, छड्ड दुनियां कूड़ पसारे नूं।

बुल्ला शाह सच्च हुण बोले हैं, सच्च शरआ तरीकत फोले हैं।
गल्ल चौथे पद दी खोले हैं, जेहा शरआ तरीकत हारे नूं।*
चुप्प करके करीं गुज़ारे नूं।

साईं बुल्लेशाह कहते हैं:

शरीअत साडी दाई ए, तरीक़त साडी माई ए।
अग्गों हक़ हक़ीक़त आई ए, अते मारफ़तों कुझ पाया ए।

आपका अभिप्राय है कि प्रत्येक मनुष्य का जन्म किसी न किसी विशेष धर्म में होता है। उसको उसकी धर्म विधियाँ उत्तराधिकार में मिलती हैं। परन्तु रूहानी विकास के लिए आवश्यक है कि मनुष्य दाई से माई की गोद में जाये और इससे आगे बढ़े अर्थात् उसके लिए आवश्यक है कि वह सन्तोष,

* चौथा पद सन्तों-महात्माओं की सबसे ऊँची रूहानी अवस्था का नाम है, जहाँ आत्मा परमात्मा में समा जाती है। सन्तों ने तीनों गुणों की रचना को भ्रमों की घाटी कहा है और चौथे पद को विशुद्ध हक़ीक़त का देश कहा है। साईं जी तीनों गुणों की रचना को कूड़ का पसारा कहते हैं, 'छड्ड दुनियां कूड़ पसारे नूं।' आप चौथे पद को हक़ीक़त की घाटी कहते हैं। गुरु अमर दास जी कहते हैं कि तीनों गुण भ्रमों से भरे हुए हैं। सहज-अवस्था सतगुरु की कृपा द्वारा चौथे पद में जाकर मिलती है:

त्रिहु गुणा विचि सहजु न पाईऐ त्रै गुण भरमि भुलाइ॥
पड़ीऐ गुणीऐ किआ कथीऐ जा मुंढहु घुथा जाइ॥
चउथे पद महि सहजु है गुरमुखि पलै पाइ॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 68)

कबीर साहिब फ़रमाते हैं कि सन्त-जन चौथे पद के निवासी होते हैं और उनका रखवाला उस धाम का स्वामी वह कुल-मालिक परमात्मा होता है:

कहि कबीर हमरा गोबिंदु॥ चउथे पद महि जन की जिंदु॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 871)

हुज़ूर स्वामी जी महाराज संकेत करते हैं कि वह प्रभु जो शब्द या नाम-रूप है, चौथे पद का रहनेवाला है:

तीन लोक में बसता काल। चौथे में रहे नाम दयाल॥

(*सारबचन संग्रह*, 38:3:17)

क्षमा, सहनशीलता आदि नेक गुणों को धारण करता हुआ अमली रूहानी अभ्यास की ओर ध्यान दे और कलमे की कमाई के मार्ग पर उन्नति करता हुआ अहं या मन को त्यागकर हक़ीक़त में समा जाये। गुरु नानक साहिब ने *जपुजी* में पाँच खण्डों का वर्णन करते हुए और सूफ़ी दरवेशों ने नासूत, मलकूत, जबरूत, लाहूत और हूत में आत्मा की चढ़ाई का वर्णन बयान करते हुए जीव के तरीक़त और मारफ़त की सहायता से हक़ीक़त में पहुँचने का संकेत दिया है। कर्मकाण्ड पूरने या पहाड़े के समान है। इसका वास्तविक मनोरथ धार्मिक और पारलौकिक वृत्ति पैदा करना है, परन्तु सत्य की प्राप्ति का साधन हृदय की निर्मलता और शब्द की कमाई है।

गुरु अर्जुन साहिब ने अपने शब्द 'अलह अगम खुदाई बंदे' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1083) में समझाया है कि मालिक के सच्चे भक्तों की शरीअत धार्मिक लोगों की शरीअत से बिलकुल अलग प्रकार की होती है। मालिक के प्रेमी सत्य की नमाज़ पढ़ते हैं और मनरूपी मौलाना को देहरूपी मस्जिद में खड़ा करके अन्दर परमात्मा के सच्चे कलमे से जोड़ते हैं। ऐसे प्रेमियों की तरीक़त अन्दर कुल-मालिक की खोज करना है। उनकी मारफ़त मन-इन्द्रियों को वश में करना है और हक़ीक़त परमात्मा के साथ मिलाप करके आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाना है। दया व मेहर ऐसे सच्चे आशिक़ों का मक्का है, नम्रता रोज़ा है और मुर्शिद की आज्ञा का पालन करना उनका बिहिश्त है। परमात्मा की महिमा, सब्र, शुक्र, नम्रता, दया और पाँचों विकारों को जीतना, उनकी पाँच नमाज़ें हैं। उनकी मुसलमानी दिल की कोमलता और दुनिया के इश्क़ के स्थान पर परमात्मा के इश्क़ में लीन होना है:

सचु निवाज यकीन मुसला॥ मनसा मारि निवारिहु आसा॥
देह मसीति मनु मउलाणा कलम खुदाई पाकु खरा॥
सरा सरीअति ले कंमावहु॥ तरीकति तरक खोजि टोलावहु॥
मारफति मनु मारहु अबदाला मिलहु हकीकति जितु फिरि न मरा॥
कुराणु कतेब दिल माहि कमाही॥ दस अउरात रखहु बद राही॥*

* दस इन्द्रियों को वश में करना अन्दर *क़ुरान शरीफ़* की शिक्षा पर अमल करना है।

पंच मरद सिदकि ले बाधहु खैरि सबूरी कबूल परा॥*
मका मिहर रोजा पै खाका॥ भिसतु पीर लफज कमाइ अंदाजा॥
हूर नूर मुसकु खुदाइआ बंदगी अलह आला हुजरा॥†
सचु कमावै सोई काजी॥ जो दिलु सोधै सोई हाजी॥
सो मुला मलऊन निवारै सो दरवेसु जिसु सिफति धरा॥‡
सभे वखत सभे करि वेला॥ खालकु यादि दिलै महि मउला॥
तसबी यादि करहु दस मरदनु सुंनति सीलु बंधानि बरा॥§
. . . . . .
अवलि सिफति दूजी साबूरी॥ तीजै हलेमी चउथै खैरी॥
पंजवै पंजे इकतु मुकामै एहि पंजि वखत तेरे अपरपरा॥
. . . . . .
हकु हलालु बखोरहु खाणा॥ दिल दरीआउ धोवहु मैलाणा॥
पीरु पछाणै भिसती सोई अजराईलु न दोज ठरा॥
. . . . . .
मुसलमाणु मोम दिलि होवै॥ अंतर की मलु दिल ते धोवै॥
दुनिआ रंग न आवै नेड़ै जिउ कुसम पाटु घिउ पाकु हरा॥¶
. . . . . .
कुदरति कादर करण करीमा॥ सिफति मुहबति अथाह रहीमा॥
हकु हुकमु सचु खुदाइआ बुझि नानक बंदि खलास तरा॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1083-84)

---

* पाँचों विकारों को दूर करके अन्दर शुभ गुण पैदा करो।

† परमात्मा के नूर का अन्तर में मिलना हूरों (अप्सराओं) के मिलने से अच्छा है और अन्तर में भक्ति करना ही उत्तम मन्दिर या मस्जिद में जाना है।

‡ **सो...निवारै**=असल मौलाना वही है जो शैतान या अहं को मारता है।

§ ख़ुदा की याद सच्ची तसबीह है। दस इन्द्रियों को मारकर संयमी हो जाना सच्ची सुन्नत है।

¶ जिस प्रकार फूल, रेशम, घी और मृगछाला कभी अपवित्र नहीं होते, सच्चा मुसलमान वह है जो दिल को संसार की अपवित्रता से बचाकर रखे।

अधिक विस्तार के लिए देखिये: *सन्तमत प्रकाश*, भाग 4 में इस शब्द की हुज़ूर महाराज सावन सिंह जी द्वारा की गयी सत्संग में व्याख्या।

प्रसिद्ध सूफ़ी शेख़ गुजदवानी सच्चे सूफ़ी साधक के लिए जो आदेश देते हैं, उनमें सम्पूर्ण जीवन को ऐसी कठिन साधना के अधीन किया गया है कि संसार के कठोर से कठोर कर्मकाण्ड का रंग उसके सामने पीला पड़ जाता है। ये आठ हिदायतें इस प्रकार हैं:

1. **होश दर दम**: प्रत्येक साँस परमात्मा की विद्यमानता को अनुभव करते हुए लेना।
2. **नज़र बर कदम**: प्रत्येक क़दम परमात्मा की विद्यमानता को अनुभव करते हुए उठाना।
3. **सफ़र दर वतन**: सदा निज-घर वापस जाने का ध्यान रखना।
4. **खिलवत दर अंजमन**: संसार में रहते हुए अन्दर अकेले रहना और सदा ज़िक्र या सिमरन में लगे रहना।
5. **याद करद**: जिह्वा या आत्मा की ज़बान से सदा सिमरन करते रहना।
6. **बाज़ गश्त**: मन को अच्छे-बुरे ख़यालों से पवित्र रखते हुए सिमरन में लगे रहना।
7. **निगाह दाश्त**: बुरे ख़यालों को मन में दाखिल होने से रोकना।
8. **याददाश्त**: सदा परमात्मा की उपस्थिति में होने का जीवित अहसास होना।*

इसके विपरीत, व्यवसायी और स्वार्थी लोग भोले-भाले लोगों को अनेक प्रकार के भ्रमों में फँसाकर सच्ची रूहानियत से गुमराह कर देते हैं। साईं जी के कलाम और सूफ़ी साहित्य में ही नहीं, बल्कि सारे रूहानी साहित्य में आपकी काफ़ी 'गल्ल रौले लोकां पाई ए' विशेष महत्त्व रखती है:

गल्ल रौले लोकां पाई ए।
सच्च आख मनां क्यों डरना एं, इस सच्च पिच्छे तूं तरना एं।
सच्च सदा अबादी करना एं, सच्च वस्तं अचम्भा आई ए।
ब्राह्मण आण जजमान डराए, पितर पीड़ दस भर्म दुड़ाए।
आपे दस्स के यत्न कराए, पूजा शुरू कराई ए।

---

* *A History of Sufism in India*, Vol. I, pp. 95-96

पितर तुसां दे उपर पीड़ा, गुड़ चावल मंगाओ लीड़ा।
जंजू पाओ लाहो बीड़ा, चुल्ली तुरत पवाई ए।

पीड़ नहीं ऐवें निकलण लग्गी, रोक रुपइया भांडे ढग्गी।
होवे लाखी दरुस्त न बग्गी, बुल्ला एह बात बणाई ए।

प्रिथम जंडी मात बणाई, जिस नूं पूजे सर्ब लोकाई।
पाछे वड्ड के जंज चढ़ाई, डोली ठुम ठुम आई ए।

भुल खुदा नूं जान खुआई, बुत्तां अग्गे सीस निवाई।
जेहड़े घड़ के आप बणाई, शर्म रत्ता न आई ए।

वेखो तुलसी मात बणाई, सालग रामी संग परनाई।
हस हस डोली चा चढ़ाई, साला सहुरा बणे जवाई ए।

धीआं भैणां सभ विआहवण, परदे अपणे आप कजावण।
बुल्ला शाह की आखण आवण, न माता किसे विआही ए।

शाह रग थीं रब दिसदा नेड़े, लोकां पाए लम्बे झेड़े।
वां के झगड़े कौण नबेड़े, भज भज उमर गवाई ए।

वृक्ष बाग़ विच नहीं जुदाई, बंदा रब्ब तिवें बन आई।
पिछले सोते ते खिड़ आई, दुविधा आण मिटाईए॥

बुल्ला आपे भुल भुलाया, आपे चिल्लया विच दबाया।
आपे होका दे सुणाया, मुझ में भेत न काई ए।

गरम सर्द हो जिसनूं पाला, हरकत कीता चेहरा काला।
तिस नूं आखण 'जी सुखाला', इस दीकरो दवाई ए।

अक्खियां पक्कियां आखण 'आईयां', अलसी सुख के औणी माईयां।
आपे भुल गईयां हुण साईयां, हुण तीर्थ पास सुधाई ए।

पोस्ती आखे मिले अफीम, बंदा भाले कादर करीम।
न कोई दिस्से ज्ञान हकीम, अकल तुसाडी जाई ए।

जो कोई दिसदा ओहो प्यारा, बुल्ला आपे वेखणहारा।
आपे बेद क़ुरान पुकारा, जो सुपने वस्त भुलाई ए।

इस काफ़ी में साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि लोगों को सत्य कड़वा अवश्य लगेगा परन्तु सत्य धुर-दरगाह में प्यारा है। इसलिए मैं सच्ची बात कह देता हूँ।

आप कहते हैं, ब्राह्मण यजमानों के मन में भय पैदा करते हैं कि तुम्हारे पूर्वजों के सिर पर भारी कष्ट है। इस प्रकार वे उनको अनेक प्रकार की पूजा में फँसाकर गुड़, चावल, वस्त्र, धन-दौलत, बर्तन, पशु और रुपया-पैसा दान में ले लेते हैं। इसी प्रकार वे भोले-भाले लोगों के मन में यह भ्रम पैदा कर देते हैं कि जब तक पूजा न कराओगे, तुम्हारी गाय, बछड़े, घोड़े, घोड़ियाँ आदि निरोग न होंगी। ये पण्डित या पुरोहित सीधे-सादे लोगों को परमेश्वर की सच्ची भक्ति से हटाकर माता और हाथों से बनाये हुए ठाकुरों की पूजा में लगा देते हैं। वे तुलसी माता का सालिगराम से विवाह रचाते हैं। कोई भला मानस यह सोचने का प्रयत्न नहीं करता कि कभी पुत्र भी माता की शादी कर सकते हैं।

यदि कोई ज्वर से पीड़ित हो जाये तो कहते हैं कि इसका 'जी सुखाला' अर्थात् झाड़ा कराओ। आँखें आ जायें तो कई मन्नते मानी जाती हैं, भूल बख़्शायी जाती है और तीर्थों की यात्रा की जाती है। आप कहते हैं कि लोग भ्रमों की अफ़ीम के शिकार हो चुके हैं क्योंकि संसार में सच्चे व निर्मल ज्ञान और सच्चे ज्ञानियों का अभाव है।

लोग परमात्मा की खोज में बहिर्मुखी भटक रहे हैं जब कि वह प्रिय प्रियतम हरएक की शाहरग में बैठा है। जीव और परमात्मा का वृक्ष और बाग़ वाला क़ुदरती सम्बन्ध है और जीव भ्रमों का नाश करके अन्दर ही परमात्मा से मिलाप कर सकता है।

साईं जी द्वारा प्रकट किये गए विचार हर धर्म के कर्मकाण्डी पुरोहितों, मुल्लाओं, पादरियों और भाइयों पर पूरे उतरते हैं जो अपने पेट के लिए भोली-भाली जनता को अनेक प्रकार के कर्मकाण्डों में फँसाकर सच्ची

रूहानियत से वंचित कर देते हैं। प्रत्येक धर्म में धर्म के ऐसे ठेकेदार पैदा हो जाते हैं जो अपने सामाजिक, आर्थिक और अन्य कई प्रकार के हितों के कारण भ्रमों के अनेक तरह के जाल बुन देते हैं। ये भलेमानस ही अपने स्वार्थ के कारण लोगों में मतभेद पैदा करनेवाले और विरोध उत्पन्न करनेवाले धर्म और कर्म जारी करते हैं। ये ही अपने स्वार्थ के लिए लोगों को सच्चे सन्तों-महात्माओं, पीरों-फ़क़ीरों के विरुद्ध भड़काते हैं। यदि गुरु नानक कुराहिया (कुमार्गी) था तो सही मार्ग पर चलनेवाला कौन है? यदि हज़रत ईसा, हज़रत मुहम्मद, गुरु अर्जुन, नामदेव, कबीर साहिब, दादू साहिब, पलटू साहिब धर्म के विरोधी थे तो संसार में सच्चा धार्मिक व्यक्ति कौन हुआ है? परन्तु इन सबको अनेक प्रकार की यातनाएँ दी गयीं क्योंकि सन्तों से भय धर्म को नहीं, धर्म के पुरोहितों को होता है। मानवता के साथ इससे बड़ा मज़ाक़ और क्या हो सकता है कि धर्म के सच्चे हितैषी और मानवता के सच्चे उपकारियों को ही धर्म और मानवता के विरोधी सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है? यह सबकुछ पुरोहित-गण करते हैं। आश्चर्य की बात यह कि अलग-अलग धर्मों के पुरोहित एक-दूसरे के धर्म के विरोधी होते हैं परन्तु सन्तों-महात्माओं और पीरों-पैग़म्बरों के विरोध के लिए इकट्ठे हो जाते हैं क्योंकि उनको कामिल फ़क़ीरों के सच्चे ज्ञान के कारण अपनी रोटी और मान-बड़ाई ख़तरे में दिखायी देती है।

गुरु नानक साहिब अपने शब्द 'राम नामि मनु बेधिआ' में कहते हैं कि हवन-यज्ञ में सामग्री के स्थान पर शरीर के अंग-अंग कटवाकर इसकी आहुति देने से, शरीर को आरे के नीचे चिरवा देने से, हठ-कर्मों द्वारा अपना शरीर हिमालय की बर्फ़ में गला लेने से, सोने के क़िले, हाथी, घोड़े, भूमि आदि का दान देने से या ग्रन्थों-पोथियों, वेदों, शास्त्रों के पाठ-विचार से परमात्मा नहीं मिल सकता। परमात्मा से मिलने का साधन इस प्रकार के बहिर्मुखी कर्म न होकर, हर मनुष्य के अन्दर रखा शब्द, नाम या कलमा है। ऊपर बताये गये हर प्रकार के कर्मकाण्ड व्यर्थ हैं क्योंकि परमात्मा से मिलाप का सच्चा आनन्द सुरत को अन्दर शब्द से जोड़ने पर ही प्राप्त होता है:

राम नामि मनु बेधिआ अवरु कि करी वीचारु॥
. . . . . .
तनु बैसंतरि होमीऐ इक रती तोलि कटाइ॥*
तनु मनु समधा जे करी अनदिनु अगनि जलाइ॥†
हरि नामै तुलि न पुजई जे लख कोटी करम कमाइ॥‡
अरध सरीरु कटाईऐ सिरि करवतु धराइ॥§
तनु हैमंचलि गालीऐ भी मन ते रोगु न जाइ॥¶
हरि नामै तुलि न पुजई सभ डिठी ठोकि वजाइ॥**
कंचन के कोट दतु करी बहु हैवर गैवर दानु॥††
भूमि दानु गऊआ घणी भी अंतरि गरबु गुमानु॥‡‡
राम नामि मनु बेधिआ गुरि दीआ सचु दानु॥§§
मनहठ बुधी केतीआ केते बेद बीचार॥¶¶

---

* शरीर को रत्ती-रत्ती करके हवन की अग्नि में सामग्री के स्थान पर जला दो।

† हवन में लकड़ी के स्थान पर तन और मन को जला दो।

‡ चाहे ऐसे लाखों व करोड़ों कर्मकाण्ड कर लो, यह आत्मा को अन्दर शब्द, नाम या कलमे से जोड़ने का मुक़ाबला नहीं कर सकते।

§ शरीर को आरे से चिरवा लिया जाये। बनारस में एक आरा होता था। पाण्डे भोले-भाले यात्रियों को यह कहकर आरे से चिरवा देते थे कि तुम जो मनोकामना लेकर अपने आपको आरे से चिरवाओगे, तुम्हारी मनोकामना पूरी हो जायेगी और तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी।

¶ शरीर को हिमालय की बर्फ़ में गला दो, फिर भी मन से हौंमैं, ख़ुदी या तकब्बुर का रोग दूर न होगा।

** हर प्रकार के कर्मकाण्ड को ठोक बजाकर देख लिया है, कोई वस्तु नाम, शब्द या कलमे की कमाई का मुक़ाबला नहीं कर सकती।

†† सोने के क़िले और हाथी-घोड़े दान में दे दो।

‡‡ बहुत-सी भूमि और बहुत-सी गौएँ दान में दे दो, फिर भी अन्दर से अहंकार दूर न होगा।

§§ मन को वश में करनेवाली वस्तु वह नाम, शब्द या कलमा है, जिसका भेद कामिल मुर्शिद सतगुरु से मिलता है।

¶¶ मन, बुद्धि से जो मरज़ी कर्म कर लो, जितने मरज़ी हठ-कर्म कर लो और वेदों-शास्त्रों का जितनी इच्छा हो पाठ कर लो, मन वश में नहीं आयेगा और परमात्मा से मिलाप न होगा।

केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोख दुआर॥*
सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु॥।†

(आदि ग्रन्थ, पृ. 62)

गुरु नानक साहिब ने अपनी प्रसिद्ध रचना *आसा की वार* में हिन्दुओं, जैनियों, बौद्धों, मुसलमानों और योगियों की अनेक प्रकार की बहिर्मुखी शरीअत की कड़ी आलोचना की है और हर प्रकार के कर्मकाण्ड को कलमे, शब्द या नाम की कमाई के मुक़ाबले में तुच्छ या व्यर्थ कहा है। आपने तन्त्र-मन्त्र, देव-पूजा, तीर्थ-व्रत, धर्म-पुस्तकों के पाठ, माला, तिलक, वनों के भ्रमण, भस्म लगाने, धूनियाँ रमाने, नंगे फिरने, जागरण करने, मौन धारण करने, व्रत रखने आदि अनेक प्रकार के साधनों को फोकट कर्म कहा है, 'सभि फोकट निसचउ करमं' (*आसा की वार*, पृ. 470)।

पलटू साहिब कहते हैं कि भेखी लोग परमात्मा की भक्ति के समाचार से नहीं, उदर-पूर्ति के प्रबन्ध से प्रसन्न होकर यजमानों की प्रशंसा करते हैं:

भरि भरि पेट खिलाइये तब रीझैगा भेष॥
तब रीझैगा भेष जगत में करै बड़ाई।
लाख भगत जो होय खाये बिनु निंदत जाई॥
रहनि लखै नहिं कोय नाहिं टकसार बिचारै।
भाव भक्ति ना लखै खोजत सब फिरै अहारै॥
भेष में नाहिं बिबेक भये दस बीस बिबेकी।
कोटिन में दस बीस सन्त तिन रहनी देखी॥
पलटू रहै अपान में आन में मारै मेख।
भरि भरि पेट खिलाइये तब रीझैगा भेष॥

(*पलटू साहिब की बानी*, भाग 1, कुण्डली 243)

---

* इस प्रकार के सब कर्म आत्मा को बन्धनों में जकड़नेवाले हैं। आत्मा को बन्धनों से मुक्त करनेवाली युक्ति का गुरुमुखों अर्थात् मालिक के सच्चे भक्तों या कामिल फ़क़ीरों से पता चलता है।

† बाक़ी सब कर्म-धर्म शब्द, नाम या कलमे रूपी सत्य को धारण करने से नीचे हैं, सबसे ऊँची करनी आत्मा को नाम, शब्द या कलमे से जोड़ना है।

साईं जी कहते हैं कि व्यवसायी लोगों ने धर्म-स्थानों को अपनी उदर-पूर्ति का साधन बना लिया है। जब तक दिल में से सच्ची विनती नहीं निकलती, मन्दिरों व मस्जिदों में माथे रगड़ने से क्या लाभ है?

1. बुल्ले नूँ लोकीं मत्तीं देंदे, बुल्लया तू जा बहो विच मसीती।
   विच मसीतां की कुझ हुंदा, जे दिलों नमाज़ ना कीती।
2. बुल्लया धरमसाला धड़वाई रैह्न्दे, ठाकर-द्वारे ठग।
   विच मसीतां कुसत्तीए रैह्न्दे, आशिक़ रहण अलग।

हज़रत ईसा ने भी कहा था कि जो लोग मन्दिरों में क्रय-विक्रय करते हैं, उनको मन्दिरों से बाहर निकाल दो क्योंकि परमात्मा का घर परमात्मा की पूजा के लिए है, दुकानदारी के लिए नहीं।*

ख़्वाजा अबू इस्माइल अब्दुल्ला अनसारी अपनी प्रसिद्ध रचना *मुनाजात* में लिखते हैं कि बाहर का काबा तो हज़रत इब्राहीम ने बनवाया परन्तु हृदय का काबा परमात्मा के प्रकाश से पवित्र हो चुका है।† आप फ़रमाते हैं, रोज़ा रखना अनाज की बचत करना है। बहिर्मुखी पूजा और नमाज़ स्त्रियों और वृद्ध लोगों का काम है, हज या तीर्थ-यात्रा संसार का स्वाद लेना है, तू मन को जीतने का प्रयत्न कर क्योंकि वास्तविक विजय यही है। सूफ़ी दरवेश नौशाह कहते हैं, हमारी मस्जिद वह नहीं जहाँ मुल्ला रहता है, वास्तविक मस्जिद वह है, जहाँ परमात्मा मिलता है।‡

हम अपने आस-पास दृष्टि डालकर देख सकते हैं कि आज हमारे धर्म-स्थानों की क्या दशा है? सब धर्मों के धर्म-स्थान मालिक की भक्ति के वास्तविक उद्देश्य से बहुत दूर जा रहे हैं। फिर जो शरीररूपी मक्का,

---

* Cast out them all that sold and bought in the temple, and overthrow the tables of money-changers and the seats of them that sold doves. It is written, my house shall be called the house of prayer, but ye have made it a den of thieves. (*Matthew* 21:12-15)

† *A History of Sufism in India*, Vol. I, p. 782

‡ *A History of Sufism in India*, Vol. II, p. 440

हरि-मन्दिर, ठाकुरद्वारा, मस्जिद, गिरजा या सिनागॉग है, वह भी कुमार्गी बन चुका है क्योंकि हम अन्दर प्रवेश करके मालिक की सच्ची भक्ति करने के स्थान पर, संसार में बाहर ही बाहर भटकते फिरते हैं।

हज़रत सुलतान बाहू फ़रमाते हैं कि कामिल मुर्शिद अन्तर में प्रियतम से मिलाप करने की वह युक्ति समझाता है, जिससे अन्दर ही प्रभु के नाम का पौधा मिल जाता है, अन्दर ही परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं और किसी प्रकार की बहिर्मुखी करनी की कोई आवश्यकता नहीं रहती।*

साईं बुल्लेशाह जी फ़रमाते हैं कि मुल्ला और क़ाज़ी अपना भ्रम-जाल फैलाकर संसार को गुमराह करने का प्रयत्न करते हैं। वे बहिर्मुखी कर्मकाण्ड को ही सच्चा धर्म सिद्ध करने की कोशिश करते हैं और सच्ची रूहानी उन्नति के मार्ग में रुकावटें खड़ी करते हैं। वे लोगों को जात-पाँत, काफ़िर-मोमिन की क़ैद में बन्द करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु इस प्रियतम प्यारे का सच्चा प्रेम, इस प्रकार के बनावटी बन्धनों में कैसे बँध सकता है?

मुल्लां काज़ी राह बतावण, देण धर्म दे फेरे।
इह तां ठग ने जग दे झीवर, लावण जाल चुफ़ेरे।
करम शरआ दे धरम बतावण, संगल पावण पैरीं।
जात मज़हब एह इश्क़ न पुछदा, इश्क़ शरआ दा वैरी।

मौलाना रूम ने फ़रमाया है कि परमात्मा के सच्चे भक्तों का एक ही धर्म है – अपने अहं को वश में करके परमात्मा में समा जाना, वे दूसरा कोई धर्म-कर्म नहीं जानते, 'आशिकां रा मज़हबे मिल्लत नेस्ती।'

---

* नफ़ल नमाज़ां कम्मं ज़नाना रोज़े सरफा रोटी हू।
मक्के दे वल सोई जांदे, धरों जिन्हां तरोटी हू।
उच्चियां बांगां सोई देवन, नीयत जिन्हां दी खोटी हू।
की परवाह तिन्हां नूं, जिन्हां घर विच लद्दी बूटी हू।

नां रब्ब अरश मु-अल्ला उत्ते न रब्ब ख़ाने काबे हू।
नां रब्ब इलम किताबीं लब्भा न रब्ब विच महराबे हू।
गंगा तीरथ मूल ना मिलया पैंडे बे हिसाबे हू।
जद दा मुर्शिद फड़या बाहू छुट्टे सब अज़ाबे हू।

अपनी काफ़ी 'इक नुक़ते विच गल्ल मुकदी ए' में साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि मनुष्य का वास्तविक उद्देश्य हृदय की सफ़ाई और परमात्मा के नाम की कमाई का है। जब तक दिल की सफ़ाई नहीं होती, मन्दिरों और मस्जिदों में पूजा या नमाज़ें करने और माथा रगड़ने का क्या लाभ है? आप आश्चर्य प्रकट करते हैं कि लोग अपने हज के पुण्य को लेकर बेच देते हैं।* कुछ लोग लम्बे रोज़े रखते हैं और शरीर को कई प्रकार की यातनाएँ देते हैं। वे भले लोग यह नहीं समझते कि परमात्मा की भक्ति का सम्बन्ध मन और आत्मा से है, शरीर को कष्ट देने से कोई लाभ नहीं। सतगुरु की बतायी हुई युक्ति के अनुसार मन को हर प्रकार की मलिनता से पवित्र और साफ़ करने की आवश्यकता है, हठ-कर्मों द्वारा शरीर को कष्ट देने की नहीं।

पलटू साहिब कहते हैं कि उस परमात्मा के दरबार में न धर्म पहुँचते हैं और न ही किसी के कर्मकाण्ड:

---

* ख़्वाजा हाफ़िज़ फ़रमाते हैं कि अपने प्यारे के प्याले के बिना किसी अन्य वस्तु को मत चूमो। भक्ति बेचनेवालों के हाथों का बोसा लेना बड़ा गुनाह है:

मबोस जुज़ लबे माशूक व जाम हाफ़िज़,
कि दसति ज़हूद फ़रोसा गुनाह अस्त बोसीदन।

गुरु नानक साहिब ने भी फ़रमाया है कि जो लोग अपनी भक्ति का मूल्य ले लेते हैं, उनका जीवन धिक्कार है। जिनकी खेती ही उजड़ जाये, उनका खलिहान क्या सजेगा? अर्थात् उनके लोक और परलोक दोनों बरबाद हो जाते हैं:

धिगु तिना का जीविआ जि लिखि लिखि वेचहि नाउ॥
खेती जिन की उजड़ै खलवाड़े किआ थाउ॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1245)

कबीर साहिब ने फ़रमाया है कि कबीर का वंश डूब गया है क्योंकि उनके घर में कमाल जैसा पुत्र पैदा हो गया है जो हरि के सिमरन जैसी अमर वस्तु के बदले में संसार की नश्वर दौलत घर ले आया है:

बूडा बंसु कबीर का उपजिओ पूतु कमालु॥
हरि का सिमरनु छाडि कै घरि ले आया मालु॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1370)

वह दरबारा भारा साधो, हिन्दू मुसलमान से न्यारा।
मक्के रहे न ठाकुरद्वारा, है सब में सब खोजनहारा।
नहिं दरगाह न तीरथ संगा, गंगा नीर न तुलसी भंगा।
सालिगराम न महजिद कोई, उहाँ जनेव न सुन्नत होई।
पढ़ै निवाज न लावै पूजा, पंडित काजी बसै न दूजा।
फेरै न तसबी जपै न माला, ना मुरदा ना करै हलाला।
मारै न सुवर जिबहे ना गाई, कलमा भजन न राम खुदाई।
एकादसी न रोजा करई, डंडवत करै न सिरदा परई।
पलटूदास दुई की किस्ती, दोजख नर्क बैकुंठ न भिस्ती।
(*पलटू साहिब की बानी*, भाग 3, शब्द 101)

साईं बुल्लेशाह संकेत करते हैं कि हर प्रकार की धार्मिक करनी का मूल मनोरथ प्रियतम का मिलाप है। जब मेरा प्रियतम से मिलाप हो गया तो मुझे किसी भी साधन की क्या आवश्यकता है:

रोज़े हज्ज नमाज़ नी माए, मैंनूं पिया ने आण भुलाए।
जद पिया दीआं खबरां पईयां, मंतक नहिव सब्भे भुल्ल गईआं।*
उस अनहद तार वजाए।

जां पिया मेरे घर आया, भुल्ल गया मैनूं शराअ वकाया।†
हर मज़हर विच ऊहा दिसदा, अंदर बाहर जलवा जिसदा।‡
लोकां खबर न काई।

आप अपनी काफ़ी 'माए न मुड़दा इश्क़ दीवाना, शौह नाल प्रीतां ला के' में इश्क़ और शरीअत का आपसी सम्बन्ध बहुत सुन्दर ढंग से विस्तारपूर्वक समझाते हैं। इस काफ़ी में आये वर्णन 'यार सुत्ती गल ला के', 'वहदत दे विच आ के', 'वसल करां मैं नाल सज्जण दे' और 'सिर देही नाल मिल

* **मंतक...गईआं**=मन्त्र, जादू-टोने आदि भूल गये हैं।
† **भुल्ल...वकाया**=शरीअत की भी सुध-बुध नहीं रही।
‡ **हर...दिसदा**=हर क़ालिब (शरीर) में उसी प्रियतम का दीदार होता है।

गई सिर देही' संकेत करते हैं कि आप प्रियतम से पूर्ण अभेदता की अवस्था में पहुँच चुके थे। लड़कियाँ गुड़ियों और गुड्डों से उतनी देर खेलती हैं जब तक उनकी शादी नहीं हो जाती। विवाह के पश्चात् गुड़ियाँ या गुड्डे तो क्या सखी-सहेलियाँ और माता-पिता भी भूल जाते हैं। आप कहते हैं कि लोग मुझे काफ़िर कहकर ताने देते हैं कि तेरे अन्दर शैतान का निवास है। मेरी यह दशा है कि मैं अहंरूपी पति और द्वैतरूपी शत्रु दोनों को मारकर पूर्ण अद्वैत में पहुँच गया हूँ। इस अवस्था में न केवल कर्मकाण्ड ही बच्चों के खेल और अज्ञानियों के झगड़े प्रतीत होते हैं अपितु मैंने चोली, चुनरी और कुर्ता भी जला दिया है अर्थात् मैंने संसार की हर प्रकार की लोकलाज और सूफ़ियों की शरीअत का भी त्याग कर दिया है:

माए न मुड़दा इश्क़ दीवाना, शौह नाल प्रीतां ला के।
इश्क शरआ दी लग्ग गई बाज़ी, खेडां मैं दाओ लगा के।

मारन बोली ते बोली, न बोलां सुणां न कंन ला के।
वेहड़े विच शैतान नचेंदा, उसनूं रख समझा के।

तोड़ शराअ नूँ जित्त लई बाज़ी, फिरदी नक्क वढा के।
मैं वे अंजाणी खेड वगुच्चीआं, खेडां मैं आके-बाके।

एह खेड़ां हुण लगदीआं झेडां, घर पीआ दे आ के।
सईआं नाल मैं पावां गिद्धा, दिलबर लुक-लुक झाके।

पुच्छो नी एह क्यों शरमांदा, जांदा न भेत बता के।
काफ़र काफ़र आखण मैंनूं, सारे लोक सुणा के।*

मोमन काफ़र मैनूं दोवें न दिसदे, वहदत दे विच आ के।
चोली चुंनी ते फूकया झुग्गा, धूनी शिरक जला के।†

वारया कुफ़र वड्डा मैं दिल थीं, तली ते सीस टिका के।
मैं वडभागी मारया खाविंद, हत्थीं ज़हर पिला के।

* लोग ताने देते हैं कि तेरे अन्दर शैतान का प्रवेश है। वे मुझे काफ़िर कहते हैं।
† परमात्मा के बिना किसी दूसरे की भक्ति करना शिर्क़ है। मैंने उसको जला दिया है।

वसल करां मैं नाल सज्जण दे, शर्म हया गंवा के।
विच चमन मैं पलंघ बिछाया, यार सुत्ती गल ला के।

सिर देही नाल मिल गई सिर देही, बुल्ला शौह नूं पा के।
माए न मुड़दा इश्क दीवाना, शौह नाल प्रीतां ला के।

कर्मकाण्ड तस्वीर के फ्रेम, गत्ते और शीशे की भाँति तस्वीर की रक्षा के लिए हैं, परन्तु फ्रेम और शीशा ही तस्वीर नहीं है। डिब्बा आभूषणों की सँभाल के लिए होता है, वह आभूषणों का स्थान नहीं ले सकता। कर्मकाण्ड का मोल रूहानियत से है। मारफ़त और हक़ीक़त से ख़ाली शरीअत ख़ाली डिब्बे के समान है। मामूली या टूटे हुए टिन के डिब्बे में भी क़ीमती आभूषणों का मूल्य कम नहीं होता, परन्तु सीपियों आदि से भरा मख़मल का डिब्बा किस काम का है?

छिलका फल के गूदे और रस की रक्षा के लिए होता है, परन्तु छिलका ही फल नहीं बन जाता। इसी प्रकार कर्मकाण्ड केवल उतना ठीक है जितना सत्य की प्राप्ति में सहायता देता है परन्तु कर्मकाण्ड सत्य का विकल्प नहीं है। जहाँ परमात्मा और सतगुरु का प्रेम कलमे, शब्द या नाम का प्रेम नहीं है, वहाँ सुन्दर से सुन्दर और बारीक से बारीक कर्मकाण्ड भी बेकार है, परन्तु जहाँ हृदय की सफ़ाई है, परमात्मा, सतगुरु और कलमे का प्यार है, वहाँ कर्मकाण्ड है तो मुबारक है, नहीं है तो हानि भी नहीं है। साईं बुल्लेशाह बड़े सुन्दर ढंग से कहते हैं कि सत्य में पहुँच चुका साधक समाज और कर्मकाण्ड के बन्धनों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। उसको जीवित अनुभव हो जाता है कि पार करनेवाली वस्तु प्रभु, सतगुरु और शब्द का प्रेम है, कर्मकाण्ड नहीं। सच्चे प्रेमी सत्य के मार्ग में रुकावट बननेवाली किसी बाधा को कैसे सहन कर सकते हैं?

1. बुल्लया सभ मजाज़ी पौड़ीआं तूं हाल हकीकत वेख।
   जो कोई ओत्थे पहुँचया, चाहे भुल्ल जाए सलाम अलेक।
2. नी मैं हुण सुणया इश्क़ शराअ की नाता।
   मुहब्बत दा इक प्याला पी के, भुल्ल जावण सब बातां।

घर घर साईं है, ओह साईं हर हर नाल पछाता।
अंदर साडे मुर्शिद वसदा, नेहों लग्गा तां जाता।

मंतक माअने कंनज़ कदूरी, पढ़या इलम गवाता।*
नमाज रोज़ा ओस की करना, जिस मद पीता मदमाता।†

पढ़ पढ़ पंडित मुल्लां हारे, किसे न भेद पछाता।
ज़री बाफ़री कदर की जाणे, छट्ट ओन्हां जत काता।‡

बुल्ला शौह दी मजलस बहके, हो गया गुँगा बाता।§
नी मैं हुण सुणया, इश्क़ शरआ की नाता।

---

* **मंतक**=दलील, तर्क, वाद-विवाद या शास्त्रार्थ से रूहानी ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना; **माअने**=धर्म-ग्रन्थों के गूढ़ भावों के अर्थ या टीका करना; **कंनज़**=विद्या का भण्डार; **कदूरी**=विद्वानों का इकट्ठे होकर इसलाम की धार्मिक समस्याओं को बुद्धि, हदीसों और क़यास (speculation) की सहायता से हल करने का प्रयत्न करना।

† **मद**=शराब; **मदमाता**=मस्त, शराबी। जिसने हक़ीक़त की शराब पी, वह उसी मस्ती में खोकर शरीअत से बेनिआज़ (दूर) हो गया।

‡ **ज़री**=सुनहरी तारों से बुना क़ीमती कपड़ा; **बाफ़री**=रेशमी कपड़ा, **जत काता**=जिन्होंने काता। जिन्होंने मोटे खुरदरे कपड़े बुने हों, उनको ज़री, बाफ़री की क्या पहचान हो सकती है?

§ परमात्मा से मिलाप हुआ तो ज़बान बन्द हो गयी। इसी अवस्था को सन्तों-महात्माओं ने गूँगे का गुड़ कहकर पुकारा है।

उपसंहार

यहाँ साईं बुल्लेशाह की वाणी की दूसरे कई पूर्ण सन्तों, पीरों और फ़क़ीरों की वाणी से तुलना करके विचार करने का प्रयत्न किया गया है क्योंकि सब क़ौमों, मज़हबों, मुल्कों और वक़्त में हुए कामिल फ़क़ीर एक ही रूहानियत का प्रचार करते हैं। हुज़ूर स्वामी जी महाराज फ़रमाते हैं, 'संत फक़र बोली जुगलु पद दोउ एक अखंड॥' (*सारबचन संग्रह,* 38:6:32) अर्थात् सन्तों और फ़क़ीरों की बोली अलग-अलग है परन्तु वे वर्णन एक ही अनश्वर सत्य का करते हैं।

आज के वैज्ञानिक युग में यह बात समझनी कठिन नहीं कि जिस प्रकार एक वस्तु को अंग्रेज़ी, फ्राँसीसी, चीनी, रूसी, हिन्दी और जर्मन आदि भाषाओं में अलग-अलग नाम दिये जाते हैं, उसी प्रकार हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी, चीनी और यूनानी कामिल फ़क़ीरों ने एक ही रूहानी सत्य को अपनी-अपनी भाषा में अनेक प्रकार से प्रकट करने का प्रयत्न किया है। परमात्मा, परमात्मा की सृजनात्मक शक्ति और मुक्ति-दाता शक्ति को ही सन्तों-महात्माओं ने सच्चा कलमा, सच्चा नाम, सच्चा शब्द, सरोश, मैमरा, ताओ आदि अनेक नामों से पुकारा है। भाषा का छिलका उतारकर सत्य की गिरी तक पहुँचने की आवश्यकता है।

जिस प्रकार भाखड़ा नंगल आदि बिजली पैदा करनेवाले बड़े बिजली-घर, शहरों व क़स्बों में लगे बिजली-घर और छोटे-से बल्ब में कार्यशील बिजली की शक्ति एक ही है परन्तु उसके कार्यशील होने का स्तर और रूप भिन्न-भिन्न हैं, उसी प्रकार कर्तापुरुष, सतगुरु और आत्मा तीनों में कार्यशील शक्ति एक है, परन्तु उसके कार्यशील होने के स्तर और रूप भिन्न-भिन्न हैं। जिस प्रकार समुद्र, लहर और क़तरे का मूल एक है, उसी

प्रकार परमात्मा सतगुरु और आत्मा का मूल एक है। इस एक मूल तत्त्व के कारण ही बूँद (आत्मा), लहर (सतगुरु) से मिलकर सागर (परमात्मा) में समा सकती है।

शहर में फैले हुए बिजली के अथाह जाल और घर में लगी बिजली से तभी लाभ उठा सकते हैं जब रेडियो, पंखे या बल्ब का तार बिजली घर से आ रहे तार से जुड़ा हो। इसी प्रकार प्रभु सृष्टि के कण-कण और हर शरीर के अन्दर समान रूप से उपस्थित है, परन्तु उससे विशेष लाभ वे जीव ही प्राप्त कर सकते हैं, जो अपनी लिव, सुरत, आत्मा या आत्मा के तार को शक्ति, ज्ञान और आनन्द के अथाह भण्डार, उस परमपिता परमेश्वर से जोड़ लेते हैं।

पूर्ण सतगुरु अपने स्रोत से टूटी आत्मा, लिव या सुरत को दोबारा उससे जोड़नेवाला कुशल इंजीनियर है। रूहानी उन्नति आत्मा को अन्दर कलमे, शब्द या नाम से जोड़ने से होती है, परन्तु शब्द से लिव पूरे सतगुरु की सहायता से जुड़ती है। गुरु रामदास जी कहते हैं कि संसार में आयी आत्मा माया के प्रभाव से अपने मूल से टूट चुकी है जिस कारण यह आशा-तृष्णा की कभी न शान्त होनेवाली आग में जल रही है:

जैसी अगनि उदर महि तैसी बाहरि माइआ॥
माइआ अगनि सभ इको जेही करतै खेलु रचाइआ॥
जा तिसु भाणा ता जंमिआ परवारि भला भाइआ॥
लिव छुड़की लगी त्रिसना माइआ अमरु वरताइआ॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 921)

आप कहते हैं कि अपने मूल से टूटी लिव सतगुरु की कृपा से दोबारा अन्दर जुड़ जाये तो जीव माया में रहते हुए भी इसके प्रभाव से निर्लेप हो जाता है और परमात्मा से मिलकर सदा के लिए सुख प्राप्त कर लेता है:

एह माइआ जितु हरि विसरै मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ॥
कहै नानकु गुर परसादी जिना लिव लागी तिनी विचे माइआ पाइआ॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 921)

परमात्मा ने प्रत्येक जीव के अन्दर शक्ति, ज्ञान और आनन्द के अथाह भण्डार रखे हैं, परन्तु जीव अनाथों की भाँति बाहर ठोकरें खा रहा है। हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी सत्संग में अक्सर फ़रमाते थे कि जिस मनुष्य के घर के अन्दर करोड़ों रुपयों का ख़ज़ाना दबा हो और वह सड़कों पर कौड़ियाँ माँगता फिरे तो उस भलेमानस को समझदार कौन कहेगा? भीखा साहिब समझाते हैं कि आन्तरिक दौलत प्राप्त करने की युक्ति से अनजान होने के कारण ही संसार में परेशान हो रहे हैं:

भीखा भूखा को नहीं, सब की गठड़ी लाल।
गिरह खोल न जानसी, ताते भए कंगाल॥

कामिल फ़क़ीर या सन्त-महात्मा इस गुप्त ख़ज़ाने को प्राप्त करने का भेद समझाते हैं। वे मन और माया के बन्धनों में फँसे जीवों को इन बन्धनों से मुक्त होने की युक्ति सिखाते हैं ताकि वे जीते-जी पूर्ण शक्ति, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द के देश पहुँच जायें, और दीन तथा दुनिया, लोक तथा परलोक दोनों सँवार लें। दुःख इस बात का है कि लोग उनकी बात समझने, मानने और उनके उपदेश पर अमल करने के लिए तैयार नहीं होते।

साईं बुल्लेशाह अपनी काफ़ी 'रैन गई लटके सभ तारे' में संकेत करते हैं कि संसार में इसकी असलियत को समझकर रहना चाहिये और संसार में आकर यहाँ आने के वास्तविक उद्देश्य को सदा आँखों के सामने रखना चाहिये। झूठी रचना की ओर से मुँह मोड़कर सच्ची वस्तु की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये अन्यथा कालरूपी मृग खेत को अवश्य उजाड़ देगा।

आप कहते हैं कि नाशवान संसार से कभी स्थायी सुख देनेवाली वस्तु नहीं मिल सकती। यहाँ आकर प्राप्त करनेवाली वास्तविक वस्तु वह अमर, अविनाशी परमेश्वर है। परमेश्वररूपी मोती या पारस भी कहीं बाहर नहीं है। रूहानियत और आनन्द का वह अथाह सागर जीव के अपने अन्दर है। समुद्र के किनारे बैठा व्यक्ति प्यासा मरे तो यह उसकी अपनी नादानी है।

रूहानियत के भण्डार को प्राप्त करने का साधन कलमा, शब्द या नाम भी प्रत्येक मनुष्य के अपने अन्दर है। किसी ब्रह्मज्ञानी या हादी की सहायता से

आन्तरिक आँख खोलकर उस कलमे या नाम से लिव जोड़ने की आवश्यकता है, 'लाहा नाम लै लयो सभारे।' फिर मनुष्य को अन्दर ही रूहानियत के वे अथाह भण्डार मिल जाते हैं कि वह जन्म-जन्मान्तर के भिक्षुक के स्थान पर एक बड़ा शाहंशाह बन जाता है:

रैण गई लटके सभ तारे, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे।
आवागौण सराईं डेरे, साथ त्यार मुसाफ़र तेरे।
तैं न सुनिओ कूच नगारे, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे।
कर लै अज्ज करने दी बेला, बहुड़ न होसी आवण तेरा।*
साथी चलो चल पुकारे, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे
क्या सरधन क्या निरधन पौड़े, आपो अपणे देस को दौड़े।
लाहा नाम लै लयो सभारे, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे
मोती चूनी पारस पासे, पास समुंदर मरो प्यासे।
खोल अक्खीं उठ बहु भिकारे, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे।
बुल्ला शौह दी पैरीं पड़ीए, ग़फ़लत छोड़ हीला कुझ करीए।
मिरग जतन बिन खेत उजाड़े,
रैण गई लटके सभ तारे, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे।

---

* बाबा फ़रीद कहते हैं कि हर काम करने का समय होता है। बाढ़ आने से पूर्व बेड़ा न बाँधा जाये तो नदी को तैरना असम्भव है। परमात्मा से मिलाप का समय मनुष्य-जन्म है। एक बार मनुष्य-जन्म बरबाद हो जाये तो फिर यह अमूल्य दात नहीं मिलती। जब धुर-दरगाह से बुलावा आता है तो आत्मा दुचित्ती में शरीर को छोड़ती है और शरीर मिट्टी की ढेरी की तरह नष्ट हो जाता है। उस समय कुछ नहीं हो सकता। जो कुछ करना है, साँसों का भण्डार समाप्त होने से पूर्व कर लेना चाहिये:

बेड़ा बंधि न सकिओ बंधन की वेला॥
भरि सरवरु जब ऊछलै तब तरणु दुहेला॥
हथु न लाइ कसुंभड़ै जलि जासी ढोला॥
इक आपीन्है पतली सह केरे बोला॥
दुधा थणी न आवई फिरि होइ न मेला॥
कहै फरीदु सहेलीहो सहु अलाइसी॥
हंसु चलसी डुंमणा अहि तनु ढेरी थीसी॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 794)

शेख़ फ़रीद कहते हैं कि मनुष्य-जीवन छत की दौड़ के समान है। यह दौड़ कितनी लम्बी हो सकती है? जीव को चाहिये कि नींद को त्यागकर और आँखें खोलकर देखे कि जीवन के जो गिनती के दिन मिले हैं, छलाँगें मारकर गुज़रते जा रहे हैं। जीव को आगे जाकर जवाब देना है कि तुझे संसार में किस काम के लिए भेजा था और तूने क्या किया है:

1. फरीदा कोठे धुकणु केतड़ा पिर नीदड़ी निवारि॥
   जो दिह लधे गाणवे गए विलाड़ि विलाड़ि॥
   (फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1380)

2. फरीदा चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइआ संमि॥
   लेखा रबु मंगेसीआ तू आंहो केहें कंमि॥
   (फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1379)

आप जीव को सावधान करते हैं कि तुझे संसार में परमात्मा की भक्ति के लिए और उसके नाम की दौलत इकट्ठी करने के लिए भेजा गया था। यदि तू यह दौलत इकट्ठी नहीं करेगा तो लोक-परलोक दोनों में बेइज़्ज़त होगा। परमात्मा की भक्ति के बिना तू मृत देह से अधिक नहीं। तू बेशक परमात्मा को भूल जा परन्तु परमात्मा की दृष्टि सदा तेरे कर्मों पर है:

फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओनु नाउ॥
ऐथै दुख घणेरिआ अगै ठउर न ठाउ॥
फरीदा पिछल राति न जागिओहि जीवदड़ो मुइओहि॥
जे तै रबु विसारिआ त रबि न विसरिओहि॥
(फ़रीद-आदि ग्रन्थ, पृ. 1383)

ख़्वाजा हाफ़िज़ फ़रमाते हैं कि यदि तू पुरुष है तो संसार से दिल न लगा क्योंकि संसार मुरदार (नश्वर) और हेच (तुच्छ) है। मैं हज़ार बार इस विषय की छानबीन कर चुका हूँ कि संसार व इसके काम व्यर्थ हैं।*

* दिल बदुनिआं मबंद अगर मरदी, ज़ा कि दुनिआस्त लाशे लाशे।
जहां व कारे जहां जुमला हेच अस्त, हज़ार बार मन ईं नुकता करदह अम तहिकीक।

साईं बुल्लेशाह जीव को सावधान करते हैं:

तैं कित वल पाउं पसारा ए, कोई दम दा इन्हा गुज़ारा ए।
इक पलक झलक दा मेला ए, कुझ कर लै एहो वेला ए।
एह घड़ी गनीमत दिहाड़ा ए, तैं कित वल पाउं पसारा ए।

इक रात सरां दा रैह्णा ए, एथे आ कर भुल्ल न बैह्णा ए।
कल्ह सब दा कूच नकारा ए, तैं कित वल पाउं पसारा ए।

तू ओस मुकामों आया ए, एथे आदम बण समाया एं।
हुण छड्ड मजलस कोई कारा ए, तैं कित वल पाउं पसारा ए।

बुल्ला शाह एह भरम तुम्हारा ए, सिर चुकया परबत भारा ए।
उस मंज़ल राह न खाहड़ा ए, तैं कित वल पाउं पसारा ए।
कोई दम दा इन्हा गुज़ारा ए।

गुरु नानक साहिब कहते हैं कि हमें आवागमन के बन्धन तोड़कर परमात्मा से मिलाप करने के लिए मनुष्य-जन्म की अमूल्य दात दी गयी है। परन्तु हम संसार के धन्धों में इस प्रकार फँसे हुए हैं कि जीवन के इस मूल उद्देश्य की ओर हमारा कभी ध्यान ही नहीं जाता। इसके विपरीत, जो लोग पूरे गुरु की हिदायत पर चलते हुए शब्द, नाम या कलमे से लिव जोड़ लेते हैं, वे सदा के लिए भवसागर से पार हो जाते हैं:

धंधै धावत जगु बाधिआ ना बूझै वीचारु॥
जंमण मरणु विसारिआ मनमुख मुगधु गवारु॥
गुरि राखे से उबरे सचा सबदु वीचारि॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1010)

अन्तर में शब्द से लिव जोड़ने के लिए किसी को अपनी क़ौम, मज़हब या मुल्क बदलने की आवश्यकता नहीं। न ही घर-बार त्यागकर जंगलों या पहाड़ों में जाने की आवश्यकता है। कमल के फूल की जड़ें पानी में अवश्य होती हैं परन्तु फूल सदा पानी से बाहर रहता है। मुर्ग़ाबी सदा पानी

में रहती है परन्तु उसके पंख पानी में नहीं भीगते। जब चाहती है, पानी से बाहर उड़ान भर लेती है। उसी प्रकार हम संसार में रहते हुए अपनी सुरत या लिव अन्दर शब्द से जोड़कर सहज ही भवसागर से पार हो सकते हैं:

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नै साणे॥
सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 938)

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि शरीर नाशवान है परन्तु इसके अन्दर एक अविनाशी तत्त्व विद्यमान है।* रूहानी अभ्यास द्वारा नाशवान से अविनाशी को अलग कर लेना ही मनुष्य-जन्म का वास्तविक उद्देश्य है:

मैं मेरी है कि तेरी है, पर अंत भसम दी ढेरी है।
ढेरी नूं हुण केरी है, ढेरी नूं नाच नचाइदा।
हुण किस थीं आप छुपाइदा।

मुहम्मद दारा शिकोह लिखता है कि आत्मा के शरीर में प्रवेश करने का यह कारण है कि इसके अन्दर पड़ी पूर्णता की शक्ति प्रफुल्लित हो सके और यह संसार के अनुभव से अमीर होकर अपने स्रोत में वापस समा सके। इसलिए हर प्राणी का कर्तव्य है कि वह द्वैत के दु:खों से मुक्त होकर अपने मूल में वापस समाने का प्रयत्न करे।† हज़रत इब्न-अल-अरबी लिखते हैं कि जो अपने आपको जान लेता है, परमात्मा को जान लेता है।‡

हज़रत अबअल हसन नूरी कहते हैं कि सच्चा सूफ़ी वह है जो मन के सब विकार त्याग देता है। वह न किसी वस्तु को अपना बनाता है और न ही स्वयं किसी वस्तु का बनता है।§ यह तभी सम्भव है जब साधक

* पंच ततु मिलि काइआ कीनी॥ तिस महि राम रतनु लै चीनी॥
आतम रामु रामु है आतम हरि पाईऐ सबदि वीचारा हे॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1030)

† *रसाला-ए-हक-नुमा,* पाणिनी ऑफ़िस, भुवनेश्वरी आश्रम, इलाहाबाद, 1912, पृ. 1

‡ *A History of Sufism in India*, Vol. I, p. 106

§ Sirdar Ikbal Ali Shah, *Islamic Sufism*, pp. 19-20

आत्मा को मन और इन्द्रियों से अलग कर ले। अबू बदर शिबली कहते हैं कि सच्चा सूफ़ी मत यह है कि सूफ़ी को दोनों लोकों में परमात्मा के सिवाय अन्य कोई वस्तु दिखायी न दे।* यह भी तभी सम्भव है यदि अभ्यासी आत्मा को अन्दर परमात्मा में लीन करके वास्तविक तौर से यह अनुभव कर ले कि संसार और इसकी प्रत्येक वस्तु का आधार वह दयालु प्रभु है। हज़रत अबू सैयद फ़जल अल्ला ने फ़रमाया है कि मन को परमात्मा में लीन कर देना ही सूफ़ी मत का उपदेश है।† हज़रत ख़फ़ीफ़ ने भी फ़रमाया है कि समाधि की अवस्था में जब तन की ख़बर नहीं रहती तो परमात्मा के अस्तित्व का अनुभव हो जाता है और यही सच्चा सूफ़ी मत है।‡

रिज़वी लिखता है कि रूहानी अभ्यास के द्वारा सूफ़ी अपने रोम-रोम में परमात्मा की विद्यमानता का अनुभव कर सकते थे।§ इस प्रकार वे ऐसी अवस्था में पहुँच जाते हैं, जिसमें भक्त, भक्ति और भगवन्त का भेद समाप्त हो जाता है।¶

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि मेरा और परमात्मा का मूल एक था। इसलिए जब मैं उसको ढूँढ़ने गया तो मेरा अहं समाप्त हो गया और मैं उसमें समाकर उसका रूप ही बन गया:

तेरा मेरा न्याओं नबेड़े रूमो काज़ी आवे।
खोल किताबां करे तसल्ली दोहां इक बतावे।
बुल्ला शौह तूं केहा जेहा, हुण तूं केहा मैं केही।
तैनूं जो मैं ढूंडण लग्गी, मैं भी आप न रही।
पाया ज़ाहर बातन तैनूं, बाहर अंदर रुशनाई।

* Sirdar Ikbal Ali Shah, *Islamic Sufism*, pp. 19-20

† Sirdar Ikbal Ali Shah, *Islamic Sufism*, pp. 19-20

‡ Sirdar Ikbal Ali Shah, *Islamic Sufism*, pp. 19-20

§ *A History of Sufism in India*, Vol. I, p. 76

¶ *A History of Sufism in India*, Vol. I, p. 101

साईं बुल्लेशाह ने अपने कलाम में उस सरल युक्ति का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है जिसके द्वारा वे अपनी आत्मा को परमात्मा से जोड़कर एक भटकते जिज्ञासु से एक आनन्द रूप पहुँचे हुए दरवेश की पदवी पर जा आसीन हुए। वह युक्ति धर्म, जाति और राष्ट्र के भेद-भाव के बिना संसार के सब जीवों की साँझी सम्पत्ति है। उस सम्पत्ति को लेने के लिए कहीं बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं, केवल अन्दर खुदाई करने या अन्दर झाँकने की आवश्यकता है। अन्दर खोज करने या झाँकने की युक्ति पूर्ण सतगुरु अथवा मालिक के सच्चे भक्तों से मिलती है। जो लोग कामिल फ़क़ीरों पर विश्वास करते हैं, साईं बुल्लेशाह उनको विश्वास दिलाते हैं:

जे तूं साडे आखे लग्गें, तैनूं तख़त बहावांगे।
जिस नूं सारा आलम ढूंडे, तैनूं आण मिलावांगे।
जुहदी हो के जुहद कमावें, लै पिया गल लावेंगा।
हजाब करें दरवेशी कोलों, कद तक हुकम चलावेंगा।

भाषा एवं शैली

साईं बुल्लेशाह की अधिकतर वाणी काफ़ियों में है। उनके समय सूफ़ियों में काफ़ी लिखने का बहुत रिवाज था। काफ़ी भक्तों के शब्दों या पदों से मिलता हुआ काव्य का रूप है। इसमें कवि किसी परमार्थी विषय को – अधिकतर गुरु या परमात्मा के प्यार और विरह को – साधारण ढंग से वर्णन करता था। काफ़ी गाये जाने के लिए लिखी जाती थी और कई सूफ़ियों ने अपनी काफ़ियाँ क्लासिकल या सनातनी रागों में बाँधी हैं। साधारण लोग सूफ़ियों के तकियों में दायरे की शक्ल में जुड़ जाते हैं और मिलकर काफ़ियाँ गाते हैं। कई बार क़व्वाल काफ़ी गाते हैं। काफ़ियों की बोली बहुत सादी और आम जानकारी की होती थी।

सूफ़ियों की पंजाबी में लिखी काफ़ियों में अरबी और फ़ारसी के शब्दों और इसलामी धर्म-ग्रन्थों के कई उद्धरण भी मिलते हैं, परन्तु कुल मिलाकर इनमें स्थानीय भाषा, मुहावरे और सदाचार का रंग प्रधान है।

बुल्लेशाह ने 'बारहमाह' और 'अठवारे' भी रचे हैं और 'सीहरफ़ियाँ' और दोहे भी। बारहमाह में वर्ष के भिन्न-भिन्न महीनों के द्वारा कवि ने प्रेम और विरह के विषयों को लिया है। 'सीहरफ़ी', 'पट्टी' या 'बावन अखरी' काव्य का रूप है जिसमें कवि किसी वर्णमाला के भिन्न-भिन्न अक्षरों के सहारे अपने विचार प्रकट करता है। बुल्लेशाह, सुलतान बाहू और दूसरे कई सूफ़ियों ने सीहरफ़ियाँ लिखी हैं। बुल्लेशाह की सीहरफ़ियाँ उसकी काफ़ियों की तरह प्रेम और विरह के रंग से ओत-प्रोत हैं। इनमें कई सूक्ष्म रूहानी अनुभव बहुत रहस्यमय, परन्तु आसान बोली में प्रस्तुत किये गये हैं। अठवारियों में भी कवि ने सप्ताह के हर दिन के आधार पर प्रेम और विरह का वर्णन किया है। दोहे में साधारण तौर से कवि दो पंक्तियों में कोई पूरा

भाव प्रकट करता है। साईं जी के दोहे बहुत प्रबल और स्पष्ट शैली में लिखे गये हैं। इनमें कर्मकाण्ड और मुल्लाओं, क़ाज़िओं, पण्डितों और तथाकथित विद्वानों पर करारी चोट की गयी है। कई दोहों में सूक्ष्म रूहानी रहस्य बहुत सरल परन्तु भाव-विभोर ढंग से प्रकट किया गया है।

शाह हुसैन आदि सूफ़ी कवियों की तरह बुल्लेशाह ने बहुत-से अलंकार और प्रतीक साधारण पंजाबी जीवन से लिये हैं। इन अलंकारों का सम्बन्ध चरख़ों पूनियों, गोहड़ियाँ, तकलों, त्रिंजण, पत्तन, पूर, रस्सी, घड़ा, घड़ोली आदि से है।* इस लोक को मायका और परलोक को ससुराल कहा है और आत्मा व परमात्मा के सम्बन्ध को स्त्री व पुरुष के रिश्ते द्वारा वर्णन किया गया है। इसी सम्बन्ध को हीर-राँझा, सस्सी-पुन्नू, संमी-ढोला, यूसुफ़-ज़ुलैख़ा, लैला-मजनूँ आदि की उपमाओं द्वारा भी प्रकट किया है। आपने ईरानी सूफ़ियों वाले बुलबुल, चमन, पीरे-मुगां, मयख़ाना, शराब, प्याले, सुराही आदि प्रतीकों के साथ कृष्ण, कान्ह, गउओं, वृन्दावन, बाँसुरी, राम, दहसिर, लंका आदि प्रतीक भी प्रयोग किये हैं। इसी प्रकार कलमे का भाव प्रभावशाली बनाने के लिए शब्द, नाम, अनहद शब्द, अनहद की मुरली, अनहद नाद आदि विशुद्ध भारतीय पदों का प्रयोग किया है। मुर्शिद के लिए गुरु और सतगुरु शब्दों का प्रयोग किया है। मानव शरीर को हरि-मन्दिर, ठाकुरद्वारा आदि कहा है। प्रत्यक्ष है कि आपने सर्वसाँझे विचारों को प्रकट करने के लिए और हिन्दू-मुसलमान दोनों में सरलता से समझी जा सकनेवाली मिश्रित शब्दावली प्रयोग की है।

साईं जी की बोली अधिकतर पंजाबी है, परन्तु आपने कुछ काफ़ियाँ और दोहे हिन्दी और साध-भाषा के मिश्रित रंग में भी रचे हैं। बारहमाह में पंजाबी और हिन्दी दोनों भाषाएँ इकट्ठी प्रयोग की हैं। इससे पता चलता है कि आपका भाषा के प्रति बड़ा उदार दृष्टिकोण था। आपका मुख्य उद्देश्य विचारों की अभिव्यक्ति था। जिस भाषा में कोई भाव सरल और सुन्दर ढंग से प्रस्तुत हो सका, वह आपने कर दिया।

* *पंजाब*, भाषा विभाग पंजाब, पटियाला, 1960, पृ. 424

हज़रत अनवर अली रोहतकी लिखते हैं कि पंजाब और इसके आस-पास के क्षेत्रों में इंसाने-कामिल हज़रत बुल्लेशाह का कलाम पढ़ने और गाने का आम रिवाज है क्योंकि यह कलाम अद्वैतवाद से सम्बन्धित है और इसमें हज़रत शाह साहिब ने आध्यात्मिक और वास्तविकता के मोती पंजाब की प्यारी बोली में पिरोये हैं। यह दैविक प्रेम का शक्तिशाली कलाम है जो परमात्मा के सच्चे भक्तों और प्रेमियों की ऐसी दशा बना देता है जिसका शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता। यह कलाम इश्क़ की आग भड़काता है और तन-बदन में आग लगाता है जो सच्चे भक्तों की आत्मा का भोजन है।*

आप कहते हैं कि कामिल सूफ़ी फ़क़ीरों ने लोगों को अज्ञान की नींद से सावधान करने के लिए अपने कलाम में वास्तविकता अर्थात् सत्य का रहस्य भरा ताकि इस कलाम को सुनकर लोगों के दिल पर चोट लगे और उनको अपनी असलियत का ज्ञान हो।† हज़रत बुल्लेशाह का कलाम भी इसी श्रेणी में आता है, इसमें बिजली जैसा प्रभाव है। इसको सुनने से लोगों पर सन्नाटा छा जाता है और उनके अन्दर परमात्मा की याद ताज़ा हो जाती है।‡

डॉ. नज़ीर अहमद लिखते हैं कि साईं बुल्लेशाह अपनी बात को घुमा-फिराकर नहीं कहते। उन्होंने जो बात कही है, सीधी कही है परन्तु विचार की तीव्रता और दृष्टि की गहराई इसमें वह प्रभाव पैदा करती है कि कला मुँह देखती रह जाती है। यह सादगी किसी अभ्यास का परिणाम नहीं है। यह वह आदि या प्रारम्भिक सरलता है जो खुरदरी भी है और शक्तिशाली भी।§

परमार्थ के गूढ़ रहस्यों को अरबी, फ़ारसी, संस्कृत आदि भाषाओं के कठिन शब्दों में व्यक्त करने के स्थान पर साधारण लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषा में प्रकट कर देना मध्यकाल के सभी सन्त, भक्त, फ़क़ीर कवियों की वाणी का विशेष गुण है, जिसके साईं बुल्लेशाह के कलाम में भी सुन्दर दर्शन होते हैं।

* *क़ानूने-इश्क़*, पृ. 6

† *क़ानूने-इश्क़*, पृ. 63-64

‡ *क़ानूने-इश्क़*, पृ. 63-64

§ *कलाम बुल्लेशाह, तआरुफ़*।

आपकी वाणी की एक बड़ी विशेषता व्यंग्य या प्रहार है जो कहीं सूई की चुभन का रूप धारण करती है और कहीं डंके की करारी चोट बन जाती है। इस व्यंग्य का सबसे अधिक प्रयोग मुल्लाओं, क़ाज़ियों, पण्डितों, पुरोहितों और तथाकथित परहेज़गारों के विरुद्ध किया गया है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

1. इल्मों मियां जी कहावें, तंबा चुक चुक मण्डी जावें।
   धेला लै के छुरी चलावें, नाल कसाईयां बहुत प्यार।
   इल्मों बस करीं ओ यार, इल्मों बस करीं ओ यार।
2. वारे जाईए ओन्हां तों जेहड़े मारन गप्प शड़प्प।
   कौडी लब्भी दे देवन ते बुगचा घाऊं घप्प।
3. वारे जाईए ओन्हां तों जेहड़े गल्लीं लैण परचा।
   सूई सलाई दान करन ते अहरन लैण छुपा।

(डॉ. नज़ीर अहमद: *कलाम बुल्लेशाह तआरफ़*)

साईं बुल्लेशाह के कलाम में ऐसी शोख़ी और नाज़ुक ख़याली है जिसका उदाहरण ढूँढ़ पाना सरल नहीं। 'हुण किस थीं आप छुपाइदा' काफ़ी में आप कहते हैं कि वह दयालु प्रभु स्वयं ही वृन्दावन का ग्वाला (भगवान् कृष्ण) बनकर आता है, स्वयं ही लंका पर आक्रमण की रणभेरी बजानेवाला (भगवान् राम) बनता है और स्वयं ही मक्के का हज करनेवाला (हज़रत मुहम्मद) बन जाता है:

बिंदराबन में गऊआं चरावे, लंका चढ़ के नाद वजावे।
मक्के दा बण हाजी आवें, वाह वाह रंग वटाईदा।

मक्का के हज की प्रथा हज़रत मुहम्मद के बाद प्रारम्भ हुई, परन्तु आप दयालु प्रभु के मुक़ामे-हक़ (सचखण्ड) से हज़रत मुहम्मद का रूप धारण करके मक्का पहुँचने को मक्के का हाजी बनकर आने का नाम देते हैं, जो बहुत अछूता वर्णन है।

इसी काफ़ी में आगे चलकर आप कहते हैं कि जब मंसूर तुम्हारे पास पहुँचा तो तुमने उसको सूली पर चढ़ा दिया। वह मेरे पिता का पुत्र होने के नाते मेरा भाई है। मैं उसका उत्तराधिकारी हूँ, इसलिए मुझे उसके रक्त का बदला दो। एक ओर परमात्मा को पिता कहना और फिर उसके पुत्र को अपना भाई कहकर उसके रक्त का बदला माँगना एक अजीब चोंचला है जो साईं बुल्लेशाह को ही शोभा देता है:

मंनसूर तुसां ते आया ए, तुसां सूली पकड़ चढ़ाया ए।
मेरा वीरनां बाबल जाया ए, ख़ून तुसीं दिओ मेरे भाई दा।

इसी काफ़ी में प्रेमिका के रूप में बहुत प्यार भरी अदा में उस दयालु प्रभु को परेशान करते हुए कहते हैं कि अब जो मरज़ी हो जाये, मुझे तुमसे दूर नहीं जाना, मैं तेरे सारे भेद खोलकर देखूँगी कि तू किस प्रकार मुझे अंग नहीं लगाता। परमात्मा का डटकर मुक़ाबला करनेवाला और उसको ताने ही नहीं, धमकियाँ तथा अल्टीमेटम देनेवाला ऐसा शोख़ इंक़लाबी कहीं कम ही दिखायी देता है:

हुण पास तुहाडे वस्सांगी, न बेदिल हो के नस्सांगी।
सब भेत तुसाडे दस्सांगी, क्यों मैंनूं अंग न लाइदा।

इस प्रकार आपने मुर्शिद या परमात्मा को बुक्कल (चादर) का चोर कहकर पुकारा है। चोर ख़तरनाक है। परन्तु घर का चोर और बुक्कल या अन्दर का चोर तो और भी ख़तरनाक होता है। दयालु प्रभु को चित्तचोर कहा गया है क्योंकि वह छिप-छिपकर मन को मोह लेता है और पकड़ने का प्रयत्न करें तो वश में नहीं आता। आत्मा कुंडी में फँसी मछली की तरह है और मुर्शिद छिप-छिपकर कुंडियाँ डालनेवाला और डोर खींचनेवाला मछेरा है:

कीहनूं कूक सुणावां नी, मेरी बुक्कल दे विच चोर।
शाह इनाइत कुंडियां पाईयां, लुक छुप खिचदा डोर।

जिस प्रकार साईं बुल्लेशाह ने अपने महबूब (प्रेमी), मुर्शिद या परमात्मा को समानता के स्तर पर आकर ताने दिये हैं, उससे उनका कलाम बिलकुल स्वाभाविक बन गया है और परमात्मा या गुरु दूर की वस्तु न रहकर अपने किसी निकट के सम्बन्धी या प्रेमी की भाँति लगने लगा है।

साईं बुल्लेशाह की सारी वाणी में विचारों की निश्छलता तथा निष्कपटता है। यह वाणी बिना प्रयत्न के प्राकृतिक झरनों की भाँति दिल की गहरी कन्दराओं से निकली प्रतीत होती है। इस वाणी में बेख़ुदी और बेपरवाही है, मस्ती और ख़ुमारी है, रहस्यमय नज़ाकत और अल्हड़ कोमल शोख़ी है। इसमें एक मटक है, दिलेरी और शक्ति है। इस वाणी में सुखान्त गीत वाला आनन्द है और दुखान्त उलाहने की करुणामय वेदना। यह कहीं संगीत की मधुर ध्वनि बन जाती है तो कहीं नृत्य की लयमय छमछमाहट। यह भेद छिपाती है और भेद खोलती भी है। इसकी प्रकृति जितनी सरल और स्वाभाविक है, उतनी ही गूढ़ और अर्थमय है। इसमें प्रेम के तीक्ष्ण अनुभव का ऐसी रवानगी और शक्ति से वर्णन किया गया है कि यह सहज ही हृदय का गहरी तह में उतरती चली जाती है। जो कोई एक बार इसको पढ़ लेता है, बार-बार इसको पढ़ने के लिए विवश हो जाता है।

साईं बुल्लेशाह की वाणी

काफ़ियाँ

बारहमाह

सीहरफ़ी

अठवारा

गंढाँ

दोहे

मैं बे क़ैद मैं बे क़ैद

मैं बे क़ैद मैं बे क़ैद।
  न रोगी न वैद।
न मैं मोमन न मैं काफ़र।
  न सैय्यद न सैद।
चौधीं तबकीं सैर असाडा।
  किते न हुंदा क़ैद।
ख़राबात है ज़ात असाडी।
  न शोभा न ऐब।
बुल्ला शौह दी ज़ात की पुछनैं।
  न पैदा न पैद।

(*कुल्लियात,* 135)

वाणी का सम्पादन

यहाँ बुल्लेशाह की वाणी के अध्ययन के लिये हज़रत अनवर अली रोहतकी की पुस्तक *क़ानूने इश्क़,* डॉ. फ़क़ीर मुहम्मद की पुस्तक *कुल्लियात* या *काफ़ियाँ बुल्लेशाह,* डॉ. नज़ीर अहमद की पुस्तक *कलाम बुल्लेशाह,* अब्दुल मजीद भट्टी की पुस्तक *काफ़ियाँ बुल्लेशाह,* डॉ. गुरदेव सिंह द्वारा सम्पादित पुस्तक *कलाम बुल्लेशाह,* डॉ. दीवानसिंह और डॉ. बिक्रम सिंह घुम्मण द्वारा सम्पादित पुस्तक *बुल्लेशाह दा काव्य लोक,* प्रो. जी. एल. शर्मा की पुस्तक *बुल्लेशाह: विवेचन ते रचना* ते प्यारा सिंह पदम की रचना *साईं बुल्लेशाह* से लाभ उठाया गया है।

साईं बुल्लेशाह की अधिकतर वाणी काफ़ियों में है। इस पुस्तक में आपकी अधिक से अधिक काफ़ियाँ सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है।

जो काफ़ी पुस्तक के पहले भाग अर्थात् 'जीवन और रूहानी उपदेश' में पूरी आ चुकी है, वह दोबारा वाणीवाले भाग में शामिल नहीं की गयी, परन्तु पाठकों की सुविधा के लिए वाणी अनुक्रमणिका में उसका भी विवरण दे दिया गया है।

काफ़ियों का चुनाव मुख्य तौर से रोहतकी की रचना *क़ानूने इश्क़,* डॉ. फ़क़ीर मुहम्मद की *कुल्लियात* और डॉ. नज़ीर अहमद की रचना *कलाम बुल्लेशाह* से किया गया है। प्रो. जी. एल. शर्मा और डॉ. गुरदेव सिंह ने साईं बुल्लेशाह की सारी काफ़ियाँ पंजाबी लिपि में प्रकाशित की हैं। प्रस्तुत पुस्तक के लिए काफ़ियों का हिन्दी पाठ तैयार करने में इन दोनों विद्वानों की पुस्तकों से भी लाभ उठाया गया है।

काफ़ियों में कई स्थानों पर पाठ में अन्तर दिखायी देता है। पुस्तक का मुख्य उद्देश्य साईं बुल्लेशाह की वाणी के रूहानी पहलू को प्रस्तुत करना है

परन्तु कहीं-कहीं पाठ-भेदों के विषय में अपने सुझाव नीचे टिप्पणियों में शामिल किये गये हैं।

काफ़ियों के भाव और उनमें आये कठिन पदों के अर्थ नीचे फ़ुटनोटों में दिये गये हैं। आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं विचारों की संक्षेप में व्याख्या भी की गयी है।

साईं बुल्लेशाह की काफ़ियाँ गाये जाने के लिए रची गयी हैं। प्रत्येक काफ़ी की पहली पंक्ति टेक या स्थायी की सूचक है जो हर पद्यांश के बाद दोहरायी जाती है। पुस्तक में एक पद्यांश को दूसरे से अलग करने के लिये स्पेस दिखायी गयी है या टेक को दोहराया गया है। काफ़ी गाते समय हर पद्यांश के बाद टेक की तुक को दोहराना आवश्यक है।

कुछ चुनी हुई प्रसिद्ध काफ़ियाँ

अंमां बाबे दी भलयाई

इस काफ़ी में संकेत किया गया है कि मनुष्य के पूर्वज – आदम और हव्वा ने प्रभु के आदेश का पालन न करते हुए गेहूँ की चोरी की। माता-पिता के इस कर्म का फल सारी मानव-जाति को मिल रहा है। साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि संसार में उलटी रीति है। करता कोई है और भरता कोई है। अच्छे लोग दु:ख प्राप्त कर रहे हैं और बुरे मौज उड़ा रहे हैं:

अंमां बाबे दी भलयाई, ओह हुण कंम असाडे आई।*
अंमां बाबा चोर धुरां दे, पुत्तर दी वडयाई।†
दाणे उत्तों गुत्त विगुत्ती, घर घर पई लड़ाई।‡

असां कजीए तदांही जाले, जदां कणक ओन्हां टरकाई।§
खाए खैरा ते फाटीए जुंमा, उलटी दस्तक लाई।¶

---

* **'भलयाई'** शब्द व्यंग्यात्मक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। आदम और हव्वा की भलाई परमात्मा की आज्ञा का पालन न करना है, जिसका मनुष्य फल भोग रहा है।

† यहाँ **'वडयाई'** शब्द व्यंग्य के रूप में प्रयुक्त है।

‡ **गुत्त विगुत्ती**=गुत्थम-गुत्था; स्त्रियाँ प्राय: लड़ते समय गुत्थम-गुत्था हो जाती हैं। शायद कवि यह कहना चाहता है कि गेहूँ के दाने की चोरी के कारण झगड़ा बढ़ गया जिसका प्रभाव अब भी हर जीव पर पड़ रहा है।

§ हमें तभी दु:ख उठाने पड़े क्योंकि हमारे पूर्वजों ने स्वर्ग से गेहूँ चुरा लिया था।

¶ यह ऐसा उलटा खेल है जिसमें करता कोई (खैरा) है और भोगता कोई दूसरा (जुंमा) है।

बुल्ला तोते मार बागां थीं कढ्ढे, उल्लू रैहण उस जाई।*
अंमां बाबे दी भलयाई, ओह हुण कंम असाडे आई।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 16)

आपणा दस्स टिकाणा

इस काफ़ी में साईं बुल्लेशाह जीव को उपदेश देते हैं कि तू यह सोचने का प्रयत्न कर कि तू किस देश से आया है और तुझे किस मंज़िल पर पहुँचना है। तू संसार की जिस भी वस्तु का अभिमान करता है वह तेरे साथ नहीं जा सकती। तू जुल्म करता है, लोगों को दु:खी करता है और तूने अपना धन्धा (कसब) लोगों को लूटकर खाना बना लिया है। तू यहाँ पर चार दिन मनमानी कर सकता है परन्तु अन्तत: तुझे यहाँ से मृत्यु लोक में जाना पड़ेगा। मृत्यु का देवता बहुत कठोर है। काफ़ी के अन्त में साईं जी नम्रतापूर्वक कहते हैं कि मैं संसार के लोगों में सबसे पुराना और बड़ा पापी हूँ:

आपणा दस्स टिकाणा, किधरों आया किधर जाणा।
जिस ठाणे दा माण करें तूं, ओहने तेरे नाल न जाणा।
जुलम करें ते लोक सतावें, कसब फड़यो लुट खाणा।
कर लै चावड़ चार दिहाड़े, ओड़क तूं उठ जाणा।†

शहर ख़ामोशां दे चल वसीए, जित्थे मुलक समाणा।‡
भर भर पूर लंघावे डाढा, मलक-उल-मौत मुहाणा।§
इन्हां सभनां थीं ए, बुल्ला औगुणहार पुराणा।
तूं किधरों आया, किधर जाणा, आपणा दस्स टिकाणा।

(नज़ीर अहमद: *कलाम बुल्लेशाह*, 6)

---

* तोते (तू-तू और मैं-मैं करनेवाले मनुष्य) बाग़ से निकाल दिये और उल्लू (आँखें बन्द करके रहनेवाले) वहाँ रहने दिये।

† **चावड़**=मनमानी; **ओड़क**=अन्तत:।

‡ **शहर ख़ामोशां**=क़ब्रिस्तान।

§ **मलक-उल-मौत**=मौत का देवता।

आपणे संग रलाईं प्यारे

शिष्य रूहानी सफ़र की कठिनाइयों एवं कष्टों का वर्णन करता हुआ सतगुरु से दया माँगता है। वह कहता है कि प्रीति चाहे मैंने की है चाहे तुमने, तुम अपनी दया से उसको सदा निभाते रहना। काफ़ी में संकेत किया गया है कि मन, माया और काल के संसार में विषयों-विकारों के अनेक शत्रु जीव का मार्ग रोककर खड़े हैं। केवल प्रभु-भक्ति से ही जीव का छुटकारा हो सकता है:

आपणे संग रलाईं प्यारे, आपणे संग रलाईं।
पहलों नेहों लगाया सी तैं, आपे चाईं चाईं।

मैं लाया ए कि तुध लाया, आपणी ओड़ निभाईं।*
राह पवां तां धाड़े बेले, जंगल लक्ख बनाईं।†

भौंकण चीते ते चितमचित्ते, भौंकण करन अदाईं।
पार तेरे जगातर चढ़या, कंढ़े लक्ख बलाईं।‡

हौल दिले दा थर थर कंबदा, बेड़ा पार लंघाईं।§
कर लईं बंदगी रब्ब सचे दी, पवण कबूल दुआईं।

बुल्ले शाह ते शाहां दा मुखड़ा, घुंगट खोल विखाईं।¶
आपणे संग रलाईं प्यारे, आपणे संग रलाईं।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 5)

---

* अपनी दया से इसको पूरा कर देना।

† **धाड़े**=डाका; **बेले**=बलाईं अर्थात् दु:ख और कष्ट।

‡ नदी चढ़ी हुई है और किनारे पर भूत-प्रेत बैठे हैं।

§ **हौल...कंबदा**=दिल भय से काँप रहा है।

¶ डॉ. नज़ीर अहमद ने 'बुल्लेशाह नूं शोह दा मुखड़ा घूंघट खोल दिखाई' दिया है जो अधिक उचित है।

अब क्यों साजन चिर लायो रे

इस काफ़ी में प्रेयसी के हृदय पर प्रेम से उत्पन्न होनेवाले विचित्र प्रभाव को अंकित किया गया है। विरहिणी सांसारिक दु:ख-सुख से ऊपर उठ जाती है। उसके हृदय में प्रेम की ज्वाला दहकती है। उसे किसी प्रकार का शृंगार नहीं भाता। प्रियतम की प्रतीक्षा करते हुए नयनों में रक्त उतर आता है परन्तु इस दु:ख में भी एक विचित्र आनन्द है:

अब क्यों साजन चिर लायो रे।* टेक।
ऐसी मन में आई का, दुख सुख सभ वंजायो रे।†
हार शिंगार को आग लगाऊं, घट पर ढांड मचायो रे।‡

सुण के ज्ञान की ऐसी बातां, नाम निशान सभी अणघातां।§
कोयल वांगूं कूकां आतां, तैं अजे वी तरस ना आयो रे।¶

मुल्लां इश्क ने बांग दिवाई, उठ दौड़न गल्ल वाजब आई।**
कर कर सजदे घर वल धाई, मत्थे महराब टिकायो रे।††

प्रेम नगर दे उलटे चाले, ख़ूनी नैण होए खुशहाले।‡‡
आपे आप फसे विच जाले, फस फस आप कुहायो रे।§§

---

* हे प्रियतम, तूने अब क्यों देर लगायी है, भाव तू मुझे दर्शन क्यों नहीं देता?

† **का**=क्या; मेरे मन में क्या आयी है जो मैं सुख-दु:ख का विचार भूल गयी हूँ?

‡ मेरे अन्दर आग की लपटें लगी हैं।

§ **अणघातां**=अचानक।

¶ मैं कोयल की भाँति कूक रही हूँ परन्तु तुझे अब तक मुझ पर दया नहीं आयी।

** प्रेम के मुल्ला ने अनहद शब्द की बाँग दी है। उसको सुनकर मेरा उस ओर दौड़ना उचित है।

†† **धाई**=दौड़ी; अर्थ के लिए देखिये पृ. 94-95

‡‡ प्रेम की उलटी रीति है। प्रियतम के नेत्र जो प्रेमिका का ख़ून पीते हैं, वही प्रेमिका को ठण्डक पहुँचाते हैं। मिर्ज़ा ग़ालिब ने भी लिखा है: 'उसी को देख कर जीते हैं कि जिस काफ़र पे दम निकले।'

§§ प्रेमी स्वयं प्रेम के जाल में फँसता है और स्वयं अपने आपको कटवा लेता है।

बुल्ला शौह संग प्रीत लगाई, सोहणी बण तण सभ कोई आई॥
वेख के शाह इनाइत साईं, जीअ मेरा भर आयो रे।*

(अब्दुल मजीद भट्टी: *काफ़ियाँ बुल्लेशाह*, 16)

आओ सइयो रल देओ नी वधाई

इस काफ़ी में यह भाव प्रकट किया गया है कि सतगुरु का बाहरी वेष तो आम मनुष्य जैसा होता है परन्तु वह वास्तव में प्रभु का रूप ही होते हैं। साईं जी कहते हैं कि मेरे मुर्शिद (राँझा) के हाथ में डण्डा और कन्धे पर कम्बल है। उसने साधारण चरवाहों जैसी शक्ल बना रखी है परन्तु किसी को उसकी वास्तविक सामर्थ्य का ज्ञान नहीं है: 'असल हक़ीक़त ख़बर न काई।' मुर्शिद के रूप में संसार में आया हुआ प्रभु वनों में भटकता फिरता है। उसकी शान (मुकट) वनों में मन्द पड़ रही है, परन्तु उसका रूप प्रभु के रूप से मिलता है: 'है कोई अल्ला दे वल भुलदा।' काफ़ी के अन्त में आप कहते हैं कि मैंने उस प्रभु के साथ सच्चा प्रेम किया है, जिससे मेरे सिर पर दु:खों की गठरी लद गयी है। मुझे प्रेम के व्यापार में अभी तक कुछ लाभ नहीं हुआ:

आओ सइयो रल देओ नी वधाई। मैं बर पाया रांझा माही। टेक।†
अज्ज तां रोज़ मुबारक चड़या। रांझा साडे वेहड़े वड़या।
हत्थ खुंडी मोढे कंबल धरया। चाकां वाली शकल बणाई।‡
आओ सइयो रल देओ नी वधाई।

---

* **वेख के**=देखकर; अब्दुल मजीद भट्टी ने 'जीअ मेरा भर आइओ रे' दिया है जो उचित है। इसका अर्थ यह है कि उस साजन को देखकर मेरा जी भर आया है अर्थात् उसे देखकर मैं अपने आँसू रोक न सकी। ये आँसू प्रेम की निशानी हैं।

† **बर**=वर।

‡ भैंसे चरानेवालों की शक्ल बनायी है।

मुकट गऊआं दे विच रुलदा। जंगल जूहां दे विच रुलदा।*
है कोई अल्ला दे वल भुलदा। असल हक़ीक़त ख़बर न काई।†
आओ सइयो रल देओ नी वधाई।

बुल्ले शाह इक्क सौदा कीता। पीता ज़हर प्याला पीता।
न कुझ लाहा टोटा लीता। दरद दुक्खां दी गठड़ी चाई।‡
आओ सइयो रल देओ नी वधाई।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 19)

आ मिल यार सार लै मेरी

प्रस्तुत काफ़ी में कर्मकाण्डी पुरोहितों और मुल्लाओं पर व्यंग्य कसा गया है। साईं जी कहते हैं कि प्रभु से बिछुड़ा हुआ निर्बल जीव संसार में अकेला है। यह कई प्रकार से घिरा हुआ है। धर्म के ठेकेदारों ने इसको कई प्रकार के भ्रम-जाल में फँसा रखा है। प्राणी के पाँव में भ्रमों की कठोर बेड़ियाँ पड़ी हुई हैं। मुल्ला लोग कर्मकाण्ड को ही सच्चा धर्म कहते हैं। बुल्लेशाह कहते हैं कि परमात्मा का सच्चा प्रेम धर्म और जाति के बन्धनों का शत्रु होता है। आप कहते हैं कि प्रियतम के देश पहुँचने के लिये सतगुरु की नौका पर सवार हो जाना चाहिये। इस प्रकार जीवन के सब संकटों का निवारण हो सकता है:

आ मिल यार सार लै, मेरी जान दुक्खां ने घेरी।
अंदर ख़वाब विछोड़ा होया, ख़बर न पैंदी तेरी।§

---

* वह शहंशाह है परन्तु उसकी शान (मुकट) गौओं और वनों में ख़राब हो रही है।

† उसकी शक्ल परमात्मा से मिलती है।

‡ **लाहा टोटा**=लाभ-हानि।

§ **ख़वाब**=स्वप्न; डॉ. नज़ीर अहमद ने स्वप्न में वियोग होने का अर्थ ग़फ़लत या बेपरवाही के कारण प्रियतम से बिछुड़ जाने का किया है।

सुंञी बन विच लुट्टी साईंआं, चोर शंग ने घेरी।*
मुल्लां काज़ी राह बतावण, देण धर्म दे फेरे।†

इह तां ठग ने जग दे झीवर, लावण जाल चुफ़ेरे।‡
करम शरआ दे धरम बतावण, संगल पावण पैरीं।§

जात मज़हब एह इश्क़ न पुछदा, इश्क़ शरआ दा वैरी।
नदियों पार मुलक सज्जन दा, लोभ लहर ने घेरी।¶

सतगुर बेड़ी फड़ी खलोते, तैं क्यों लाई ए देरी।
बुल्ला शाह शौह तैनूं मिलसी, दिल नूं देह दलेरी।

प्रीतम पास ते टोलना किसनूं , भुलयों सिखर दुपहरी।**
आ मिल यार सार लै, मेरी जान दुक्खां ने घेरी।††

(नज़ीर अहमद: *कलाम बुल्लेशाह*, 15)

---

* **सुंञी**=अकेली; **चोर शंग**=चोर और डाकू; कई पुस्तकों में 'सुंझी बन विच लुट्टी साईआं सूर पलंघ ने घेरी' लिखा मिलता है। **सूर**=जंगली; **पलंघ**=चीता।

† इन दो तुकों का साधारण तौर से यह पाठ मिलता है:

मुल्ला काज़ी सानूं राह बतावन, देण भरम दी फेरी।
एह तां ठग्ग जगत दे, जिहा लावण जाल चुफेरी।

'**धर्म दे फेरे**' से तात्पर्य बनावटी धर्म के चक्र से है जिसमें क़ाज़ियों, मुल्लाओं आदि पर बहुत सूक्ष्म व्यंग्य है। 'भरम दी फेरी' और '**धर्म दे फेरे**' दोनों का सूक्ष्म भाव एक ही है।

‡ **झीवर**=चिड़ीमार; जीव को मासूम, निर्बल, बेचारी चिड़िया कहना और क़ाज़ियों, मुल्लाओं आदि को निर्दयी, ज़ालिम, फाहीवाल आदि कहना बहुत भावमय है। ये लोग स्वार्थ के कारण भोले-भाले लोगों को कई प्रकार के प्रलोभनों में फँसा लेते हैं।

§ डॉ. नज़ीर अहमद ने इस वर्णन में कर्म और धर्म के विरोध की सुन्दरता की ओर संकेत किया है। पुरोहित कर्मकाण्ड को ही सच्चा धर्म सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। यह जीव को इस सीमा तक कर्मकाण्ड के कटु बन्धनों में जकड़ देती है कि उसकी सच्ची रूहानी उन्नति की कोई गुंजाइश नहीं रहती।

¶ भवसागर को पार करके ही प्रियतम से मिलाप हो सकता है, परन्तु जीव मोह, माया या लोभ के चक्र में फँसा हुआ है।

** अन्दर बैठे प्रियतम को बाहर कहाँ ढूँढ़ता फिरता है?

†† **सार**=ख़बर।

इक अलफ़ पढ़ो छुटकारा ए

अन्य कई काफ़ियों की भाँति इस काफ़ी में भी यह भाव प्रकट किया गया है कि सच्चा ज्ञान एकमात्र प्रभु के सम्मिलन से प्राप्त होता है। ग्रन्थों-शास्त्रों का समस्त बाहरी पठन-पाठन व्यर्थ है। आप कहते हैं कि विद्वान धर्म-ग्रन्थों का पाठ करते हैं परन्तु उनका आचरण अत्याचारियों जैसा है। वह बिना रुके तीव्रगति से शास्त्रों का पाठ करते हैं पर उनका ध्यान सांसारिक वस्तुओं की ओर रहता है और चंचल मन सन्देशवाहक की भाँति सभी ओर दौड़ता है। आप कहते हैं कि वास्तव में जानने योग्य वस्तु तो एक प्रभु है जिससे सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुई। जब सृष्टि का नाश हो जाता है तो भी वह प्रभु विद्यमान रहता है:

इक अलफ़ पढ़ो छुटकारा ए। टेक।*
इक अलफ़ों दो तिन चार होए, फिर लक्ख करोड़ हजार होए।†
फिर ओथों बाझ शुमार होए, हिक अलफ़ दा नुकता न्यारा ए।‡

क्यों पढ़ना ए गड्ड किताबां दी, सिर चाना एं पंड अज़ाबां दी।§
हुण होयों शकल जलादां दी, अग्गे पैंडा मुशकल भारा ए।¶

---

* अलिफ़ से अभिप्राय एक अल्लाह या परमात्मा से है। अरबी या फ़ारसी वर्णमाला में अल्लाह शब्द लिखने लगें तो पहला अक्षर अलिफ़ आता है। अलिफ़ का रुख़ ऊपर की ओर है और इसकी शक्ल एक से मिलती है। हज़रत अनवर अली रोहतकी *क़ानूने-इश्क़* के पृ. 204 पर लिखते हैं कि अलिफ़ पढ़ने से छुटकारा है, वह तख़्ती पर सबसे पहले लिखा जानेवाला अक्षर नहीं है। वह वजूदे मुतलिक (निराकार व निर्लिप्त प्रभु) है।

एक अलिफ़ (परमात्मा) से ही सारी अनेकता पैदा हुई। शिव-शक्ति या माया और ब्रह्म, तीन गुण, जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि और आकाश, पाँच तत्त्व और इनसे पैदा होनेवाली अनेक सूरतों का उदय एक निरंकार से ही हुआ है।

† वही।

‡ वही।

§ **अज़ाबां**=मुसीबतें; एक अलिफ़ का मिलन सच्चे ज्ञान और सच्चे आनन्द का स्रोत है, धर्म-ग्रन्थों का रूहानी प्राप्ति का कोरा ज्ञान दुःखों की गठरी के समान है।

¶ तू यहाँ लोगों पर अत्याचार करता है, यह नहीं सोचता कि मौत के बाद कठिन घाटी से गुज़रना पड़ेगा।

बण हाफ़ज़ हिफ़ज़ कुरान करें, पढ़ पढ़ के साफ़ ज़बान करें।*
फिर नेअमत विच ध्यान करें, मन फिरदा ज्यों हलकारा ए।†

बुल्ला बी बोह्ड़ दा बोया सी, ओह बिरछ वड्डा जां होया सी।
जद बिरछ ओह फ़ानी होया सी, फिर रह गया बी अकारा ए।‡
इक अलफ़ पढ़ो छुटकारा ए।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 11)

इक टूणा अचंभा गावांगी

इस छोटी-सी काफ़ी में प्रेमिका कहती है कि चाहे मुझे कोई भी साधन क्यों न अपनाना पड़े, मैं हर हालत में अपने रूठे हुए प्रियतम को मनाने का प्रयत्न करूँगी। मैं अद्भुत टोना करूँगी जिसकी अग्नि सूर्य को जला सकेगी। मैं हृदय के अन्दर प्रेम की ऐसी प्रबल लहर उठाऊँगी जिसमें सात सागरों की अथाह शक्ति हो। मैं बादल की भाँति बरसूँगी और चाँद का अपना कफ़न बनाऊँगी। काफ़ी के अन्त में प्रेमिका कहती है कि मैं ला-मकान (सचखण्ड) की पटरी पर बैठकर अनहद नाद बजाऊँगी जिससे मेरा प्रियतम मेरे वश में हो जाये। इससे संकेत मिलता है कि अनहद शब्द या नाम ही प्रियतम को वश में करने का वास्तविक अद्भुत टोना या जादू है:

इक टूणा अचंभा गावांगी, मैं रुठा यार मनावांगी।
एह टूणा मैं पढ़ पढ़ फूकां, सूरज अगन जलावांगी।
अक्खीं काजल काले बादल, भवां से आंधी लयावांगी।

---

* **हाफ़ज़**=*क़ुरान शरीफ़* को मौखिक याद करनेवाले को हाफ़िज़ कहते हैं; **हिफ़ज़**=मौखिक याद करना।

† *क़ुरान शरीफ़* को बड़ी साफ़ जिह्वा से तीव्र गति से पढ़ता है परन्तु मन वश में नहीं। यह संसार के पदार्थों में जाता है और सन्देश-वाहक के समान बाहर दौड़ता रहता है।

‡ **अकारा**=आकार-रहित; निराकार; जब संसाररूपी बड़ का वृक्ष नष्ट हो जाता है तो इसका बीज वह निराकार परमात्मा फिर भी विद्यमान रहता है। इसी प्रकार शरीर के नष्ट होने पर आत्मा नष्ट नहीं होती।

सत्त समुंदर दिल दे अंदर, दिल से लहर उठावांगी।
बिजली होकर चमक डरावां, बादल हो गिर जावांगी।
इश्क़ अंगीठी हरमल तारे, चाँद से कफ़न बनावांगी।*
ला मकान दी पटड़ी उत्ते, बह के नाद वजावांगी।
लाए सू आन मैं शौह गल आपणे, तद मैं नार कहावांगी।
इक टूणा अचंभा गावांगी।

(नज़ीर अहमद: *कलाम बुल्लेशाह*, 10)

इक नुकता यार पढ़ाया ए

फ़ारसी या उर्दू की वर्णमाला में ऐन और ग़ैन दोनों वर्ण समान दिखायी देते हैं। अन्तर केवल इतना है कि ऐन पर एक बिन्दु लगने पर ग़ैन बन जाता है। इस काफ़ी में इस तथ्य की सहायता से साईं बुल्लेशाह यह बात समझाने का प्रयत्न करते हैं कि ऐन अर्थात् प्रभु और ग़ैन अर्थात् संसार या आत्मा दोनों का मूल एक है। इससे यह भी अभिप्राय है कि मुर्शिद और रब का एक रूप है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि मुझे सतगुरु की कृपा से इस नुकते का ज्ञान हो गया है। आप यह भी संकेत करते हैं कि प्रभुरूपी होत ही आत्मारूपी सस्सी का मन मोहने के लिए पुन्नू अर्थात् सतगुरु का रूप धारण करके संसार में आता है:

इक नुकता यार पढ़ाया ए।
इक नुकता यार पढ़ाया ए। टेक।
ऐन ग़ैन दी इक्का सूरत, इक नुकते शोर मचाया ए।
इक नुकता यार पढ़ाया ए।
सस्सी दा दिल लुट्टण कारन, होत पुन्नू बण आया ए।†
इक नुकता यार पढ़ाया ए।

* **हरमल**=एक बूटी; इश्क़ की अँगीठी में तारोंरूपी हरमल को जलाऊँगी।

† **सस्सी** (आत्मा) का दिल जीतने के लिए होत (परमात्मा), **पुन्नू** (मुर्शिद, सतगुरु) बनकर आ गया है।

बुल्ला शौह दी ज़ात न काई, मैं शौह इनाइत पाया ए।*
इक नुकता यार पढ़ाया ए।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 10)

इक नुकते विच गल्ल मुकदी ए

इस काफ़ी में साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि अगर एक छोटी-सी बात का मर्म समझ लिया जाये तो मनुष्य के अनेक संकट दूर हो सकते हैं। वह बात क्या है? आप काफ़ी की अन्तिम तीन पंक्तियों में स्पष्ट करते हैं कि वास्तविक रहस्य वाली बात यह है कि सतगुरु की शरण लेने से भक्त (आबद) परमात्मा के साथ मिल जाता है। इससे उसे मस्ती और बेपरवाहीवाली अद्भुत अवस्था प्राप्त हो जाती है। वह तृष्णाओं से मुक्त हो जाता है, उसका हृदय निर्मल हो जाता है और उसे किसी बात की चिन्ता नहीं रहती। काफ़ी के शेष भाग में इस बात पर ज़ोर दिया है कि जो लोग इस मूल तथ्य को छोड़कर अन्य-अन्य बातों में भटकते रहते हैं, उनके दु:खों की कभी समाप्ति नहीं होती। आप कहते हैं कि धरती पर सिर-माथा रगड़ने से, लम्बे लेटकर मेहराब (मक्के की मसजिद में बनी एक डाट जिसमें खड़े होकर मुल्ला बाँग देता है) को देखने, बिना सोचे-समझे कलमा पढ़ते जाने से कोई लाभ नहीं। आप कहते हैं कि हाजी लोग मक्के की यात्रा के लिए जाते हैं परन्तु वे अपने हज का पुण्य बेचकर लोगों से धन बटोर लेते हैं। क्या इस प्रकार भी कभी प्रभु प्रसन्न हो सकता है? कुछ लोग घर-बार को त्यागकर जंगलों में चले जाते हैं, वे प्रतिदिन अन्न का एक दाना खाकर गुज़ारा करते हैं। कई लोग चिल्हे करते हैं। ऐसे हठ कर्म में उलझे हुए अज्ञानी लोग अपने शरीर को व्यर्थ कष्ट देते हैं। इन सबको यह समझ लेना चाहिये कि सतगुरु की शरण में जाकर ही मन निर्मल होता है, प्रभु से मिलन होता है और सच्चे आनन्द की प्राप्ति होती है:

* वह प्यारा प्रियतम राष्ट्र, धर्म, देश, जाति, नस्ल आदि से परे है। वह अयोनि, अजन्मा और अजाति है। वह मुझे इनायत शाह का रूप धारण करके मिला है।

इक नुक़ते विच गल्ल मुकदी ए। टेक।
फड़ नुक़ता छोड़ हिसाबां नूं, कर दूर कुफ़र देआं बाबां नूं।*
लाह दोज़ख़ गोर अज़ाबां नूं, कर साफ दिले देआं ख़वाबां नूं।†
गल्ल एसे घर विच ढुकदी ए, इक नुक़ते विच गल्ल मुकदी ए।‡

ऐवें मत्था जिमीं घसाईदा, लंमा पा महराब दिखाईदा।§
पढ़ कलमा लोक हसाई दा, दिल अंदर समझ न लआईदा।¶
कदी गल्ल सच्ची वी लुकदी ए, इक नुक़ते विच गल्ल मुकदी ए।

कई हाजी बण बण आए जी, गल नीले जामे पाए जी।**
हज बेच टके लै खाए जी, भला एह गल्ल कीहनूं भाए जी।††
कदी गल्ल सच्ची वी लुकदी ए, इक नुक़ते विच गल्ल मुकदी ए।

इक जंगल बहरीं जांदे नीं, इक दाणा रोज़ लै खांदे नी।‡‡
बेसमझ वजूद थकांदे नी, घर आवण हो के मांदे नी।§§
ऐवें चिल्हयां विच जिंद सुकदी ए, इक नुक़ते विच गल्ल मुकदी ए।¶¶

---

* इस नुकते को पकड़ लें, शेष जो कुछ है उसको कुफ़्र समझकर त्याग दें।

† **दोज़ख़**=नरक; **गोर**=क़ब्र; मृत्यु और नरकों का भय छोड़ दें और मन से हर प्रकार के संकल्प-विकल्प निकाल दें।

‡ **गल्ल...ए**=सही बात हृदयरूपी घर को साफ़ करती है।

§ **महराब**=मस्जिद की डाट; धरती पर माथा टेकना, लेटकर मेहराब को नमस्कार करने से क्या लाभ है (यदि हृदय साफ़ नहीं है)।

¶ बाहर से कलमा पढ़ते हैं परन्तु अन्दर न उसकी समझ आती है और न हृदय पर उसका प्रभाव होता है। इस प्रकार लोगों की हँसी के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता।

** लोग हज करते हैं फिर हज का पुण्य बेचकर धन कमा लेते हैं।

†† वही।

‡‡ **बहरीं**=समुद्र।

§§ **वजूद**=शरीर; **मांदे**=कमज़ोर।

¶¶ **चिल्हयां**=श्मशान आदि में चिल्हे काटने, कुछ लोग वनों और समुद्रों में जाते हैं, कुछ प्रतिदिन एक दाने पर गुज़र करते हैं, वे अज्ञानी शरीर को दुःख देते हैं। वे शिथिल होकर घर लौटते हैं और चिल्हों में व्यर्थ ही जीवन बरबाद करते हैं।

फड़ मुरशद आबद ख़ुदाई हो, विच मस्ती बेपरवाही हो।*
बेख़ाहश बेनवाई हो, विच दिल दे ख़ूब सफ़ाई हो।†
कदी गल्ल सच्ची वी लुकदी ए, इक नुक़ते विच गल्ल मुकदी ए।
(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 12)

इक रांझा मैनूं लोड़ीदा

प्रस्तुत काफ़ी में साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि आत्मा का परमात्मा के साथ आदिकाल से प्रेम है। क़ुरान की एक आयत में आता है 'कुन फ़यीकून'। कुन का अर्थ है, 'हो जा।' फ़यीकून का अर्थ है, 'हो गया।' इसका भाव है कि प्रभु ने रचना को प्रकट होने का हुक्म दिया और रचना हो गयी। साईं जी कहते हैं कि मेरा प्रभु के साथ प्रभु द्वारा 'कुन फ़यीकून' कहे जाने से भी पहले का प्रेम है। इस प्रेम के कारण ही वह प्रभु राँझा (सतगुरु) बनकर संसार में आया है। फ़ारसी में 'अहिद' शब्द में मीम की मड़ोड़ी लगा दी जाये तो अहमद बन जाता है। आप कहते हैं कि अहद (परमात्मा) और अहमद (सतगुरु) में कोई अन्तर नहीं है। अन्तर केवल मीम की मड़ोड़ी का है। कहने का भाव है कि सतगुरु देह-स्वरूप प्रभु है:

इक रांझा मैंनूं लोड़ीदा।‡
कुन फयकूनों अग्गे दीआं लगीआं, नेहों न लगड़ा चोरी दा।
आप छिड़ जांदा नाल मज्झीं दे, सानूं क्यों बेलयों मोड़ीदा।§
इक रांझा मैंनूं लोड़ीदा।

---

* **आबद**=भक्त।

† **बेनवाई**=फ़क़ीरी।

‡ आत्मारूपी हीर सतगुरुरूपी राँझा के लिए व्याकुल है।

§ हीर शिकायत करती है कि राँझा मुझे अपने से दूर क्यों रखता है। वह स्वयं खेतों में भैंसें चराने चला जाता है परन्तु मुझे साथ नहीं ले जाता। भाव, वह प्रभु स्वयं दूसरे शिष्यों की ओर चला जाता है पर मेरी ओर ध्यान नहीं देता।

रांझे जेहा मैनूं होर न कोई, मिनतां कर कर मोड़ीदा।
माण वालियां दे नैण सलोने, सूहा दुपट्टा गोरी दा।*
इक रांझा मैनूं लोड़ीदा।

अहद अहमद विच फरक न बुल्लया, इक रत्ती भेत मरोड़ी दा।
इक रांझा मैंनूं लोड़ीदा।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 9)

इल्मों बस करीं ओ यार

बहुत-सी अन्य काफ़ियों की भाँति इस काफ़ी में भी यह विचार प्रकट करते हैं कि आत्मा को धर्म-ग्रन्थों के अनन्त पठन-पाठों की आवश्यकता नहीं है। उसे ग्रन्थों और शास्त्रों के लम्बे-चौड़े बहिर्मुखी ज्ञान के स्थान पर प्रभु के अंतर्मुख प्रेम का एक अक्षर पढ़ने की आवश्यकता है। यदि यह अक्षर पढ़ लिया है तो आत्मा सच्चे अर्थों में ज्ञानी है। यदि प्रभु-प्रेम का अक्षर नहीं पढ़ा गया और संसार के सभी धर्म-ग्रन्थ पढ़ लिये हैं तो वह अज्ञानी है। बाहर के वाचक ज्ञान से अन्तर में आत्मिक प्रकाश प्रकट नहीं होता। बहिर्मुखी ज्ञान से न आशा-तृष्णा की अग्नि शान्त होती है, न ही संशय और भ्रम दूर होते हैं और न ही मन निर्मल होता है। अधिक विद्या प्राप्त करने से आत्मा का आध्यात्मिक सफ़र तय नहीं हो पाता बल्कि मार्ग में कई बाधाएँ खड़ी हो जाती हैं। इसके विपरीत, जो साधक प्रभु के प्रेम का अक्षर पढ़ लेता है, वह द्वैत से पूर्ण अद्वैत में पहुँच जाता है। उसे सहज ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। सतगुरु की सहायता से वह सहज ही भवसागर से पार हो जाता है जब कि विद्वान मँझधार में ही ग़ोते खाता रहता है। अधिक व्याख्या के लिए पुस्तक का अध्याय 'विद्या और आध्यात्मिकता' देखिये:

---

* **सलोने**=सुन्दर; अभिमान करनेवाली प्रेमिका के नेत्रों में ज़बरदस्त आकर्षण है और गुणवन्ती प्रेमिका ने गुणों की लाल चुनरिया पहन रखी है।

इल्मों बस करीं ओ यार। टेक।
इल्म न आवे विच शुमार, इक्को अलफ़ तेरे दरकार।
जांदी उमर नहीं इतबार, इल्मों बस करीं ओ यार।

पढ़ पढ़ इल्म लगावें ढेर, कुरान किताबां चार चुफेर।
गिरदे चानण विच अनेर, बाझों रहबर ख़बर न सार।*

पढ़ पढ़ शेख़ मशाइख़ होया, भर भर पेट नींदर भर सोया।†
जांदी वारी नैण भर रोया, डुब्बा विच उरार न पार।‡

पढ़ पढ़ इल्म होया बौराना, बे इल्मां नूं लुट लुट खाना।§
एह की कीता यार बहाना, करें नाहीं कदे इनकार।

पढ़ पढ़ नफ़ल नमाज़ गुज़ारें, उच्चियां बांगां चांघां मारें।¶
मंबर चढ़ के वाअज़ पुकारें, तैनूं कीता हिरस खुआर।**

पढ़ पढ़ मुल्लां होय काज़ी, अल्लाह इल्मां बाझों राज़ी।
होवे हिरस दिनों दिन ताज़ी, नफ़ा नीअत विच गुज़ार।

पढ़ पढ़ मसले रोज़ सुणावें, खाना शक शुबह दा खावें।††
दस्सें होर ते होर कमावें, अंदर खोट बाहर सचयार।

पढ़ पढ़ इल्म नजूम विचारें, गिणदा रासां बुरज सतारे।‡‡
पढ़े अज़ीमतां मंतर झाड़े, अबजद गिने तावीज़ शुमार।§§

---

* **बाझों...सार**=मुर्शिद के बिना सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता।

† **मशाइख़**=शेख़ का बहुवचन।

‡ **डुब्बा...पार**=वह न इधर का रहा और न उधर का रहा, मँझधार में ही डूब गया।

§ **बौराना**=मूर्ख, जिसकी मति मारी जाये।

¶ **नफ़ल**=बन्दगी; **चांघां**=चीख़ें; आप ऊँची बाँगों को ऊँची चीख़ें कहते हैं।

** **मंबर**=मस्जिद में कथा या उपदेश (वाअज़) करनेवाले को 'मंबर' कहते हैं।

†† **शक शुबह**=संशय, भ्रम; मुल्ला या क़ाज़ी धर्म-ग्रन्थों की सहायता से किसी बात के ठीक या ग़लत होने का निर्णय देते हैं, परन्तु वे स्वयं भ्रमों में फँसे हुए हैं जिसको बुल्लेशाह भ्रमों (शक, शुबह) का भोजन खाना कहते हैं।

‡‡ **गिणदा...सतारे**=ज्योतिषी तारों की अनेक प्रकार की गिनती करते हैं।

§§ **अज़ीमतां**=सांसारिक सुखों के लिए भक्ति करना; **अबजद**=वर्णमाला के वर्ण अलिफ़, बे, पे

(शेष अगले पृष्ठ पर)

इल्मों पए कज़ीए होर, अक्खीं वाले अन्ने कोर।
फड़े साध ते छड्डे चोर, दोहीं जहानीं होया खुआर।

इल्मों पए हज़ारां फस्ते, राही अटक रहे विच रस्ते।*
मारया हिजर होए दिल खस्ते, पेआ विछोड़े दा सिर भार।

इल्मों मीआं जी कहावें, तंबा चुक चुक मण्डी जावें।
धेला लै के छुरी चलावें, नाल कसाईयां बहुत प्यार।†

बहुता इल्म अज़ाज़ील ने पढ़या, झुग्गा झाहा ओसे दा सड़या।
गल विच तौक लाअनत दा पड़या, आखिर गया ओह बाज़ी हार।

जद मैं सबक इश्क़ दा पढ़या, दरया वेख वहदत दा वड़या।
घुंमण घेरां दे विच अड़या, शाह इनाइत लाया पार।

बुल्ला न राफ़ज़ी है न सुंनी, आलम फ़ाज़ल न आलम जुंनी।
इक्को पढ़या इल्म लदुंनी, वाहद अलिफ़ मीम दरकार।

(अनवर अली रोहतकी: *क़ानूने इश्क़*, 212)

इश्क़ असां नाल केही कीती

इस काफ़ी में प्रियतम की बेपरवाही और विरह की पीड़ा का ज़बरदस्त वर्णन किया गया है। आप कहते हैं कि प्रेम ने हमारा जीना दूभर कर दिया है। लोग ताने देते हैं परन्तु कोई भी हृदय की पीड़ा जानने का प्रयत्न नहीं करता। प्रेम करना ऊँचे पर्वत पर चढ़ने के समान है। जो इस कठिन घाटी पर चढ़ता है वही इसकी वास्तविकता को समझ सकता है। प्रियतम के वियोग से हृदय में अग्नि प्रचण्ड हो जाती है जिसकी तपन को केवल प्रेमी समझ सकता है।

(पिछले पृष्ठ का शेष)

के हिसाब से ज्योतिष लगाना; **तावीज़**=तवीत; आप अनेक प्रकार के जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र, ज्योतिष आदि की ओर संकेत करके कहते हैं कि यह परमात्मा की प्राप्ति का साधन नहीं है।

* विद्या के बखेड़ों में पड़कर कई साधकों का रूहानी सफ़र बन्द हो गया।

† **धेला...चलावें**=मौलवी धन लेकर बकरा काटने की आज्ञा देता था।

आपने यहाँ दो बहुत भावपूर्ण संकेत किये हैं। आप कहते हैं कि 'जिस नूं चाट अमर दी होवे, सोई अमर पछाणे।' अमर का अर्थ हुक्म, शब्द या नाम है। आपके कहने का भाव है कि नाम का केवल कोई ज्ञाता या रसिया ही नाम की वास्तविक महिमा जान सकता है। दूसरे स्थान पर कहते हैं कि मैं प्रियतम के वियोग में पगली हो गयी हूँ और मैं 'सुमुन बुकमुन उमयुन' होकर अपना समय व्यतीत करती हूँ। 'सुमुन बुकमुन उमयुन' का अर्थ है मुँह, कान और आँख बन्द करके गूँगा, बहरा और अन्धा हो जाना। आपका संकेत रूहानी अभ्यास द्वारा समाधि या जीते-जी मरने की अवस्था में पहुँचने की ओर है। इस प्रकार यह पता चलता है कि आप नाम या शब्द की आराधना द्वारा समाधि की अवस्था में पहुँचने को ही विरह से छुटकारा पाने और प्रियतम से मिलाप करने का वास्तविक साधन मानते हैं:

इश्क़ असां नाल केही कीती, लोक मरेंदे ताअने। टेक।
दिल दी वेदन कोई न जाणे, अन्दर देस बगाने।*

जिस नूं चाट अमर दी होवे, सोई अमर पछाणे।†
एस इश्क़ दी औखी घाटी, जो चढ़या सो जाणे।

आतश इश्क़ फ़राक तेरे ने, पल विच साड़ विखाईयां।‡
एस इश्क़ दे साड़े कोलों, जग विच देआं दुहाईआं।

जिस तन लग्गे सो तन जाणे, दूजा कोई न जाणे।
मैं अनजाणी नेहों की जाणां, जाणे सुघ्घड़ सयाणी।

एस माही दे सदके जावां, जिस दा कोई न सानी।§
रूप सरूप अनूप है उसदा, शाला जवानी माणे।¶

---

* **वेदन**=पीड़ा।

† **अमर**=हुक्म।

‡ **आतश**=अग्नि; **फ़राक**=वियोग।

§ **जिस...सानी**=जिसका कोई मुक़ाबला नहीं कर सकता।

¶ **रूप...उसदा**=उसका अद्भुत रूप है; **शाला**=परमात्मा करे।

हिजर तेरे ने झल्ली करके, कमली नाम धराया।
सुमुन बुकमुन उमयुन होके, आपणा वकत लंघाया।

कर हुण नज़र करम दी साईआं, न कर ज़ोर धगाने।
हस्स बुलौणा तेरा जानी, याद करां हर वेले।

पल पल दे विच हिजर दी पीड़ों, इश्क़ मरेंदा सेले।
रो रो याद करां दिन रातीं, पिछले वकत विहाणे।

इश्क़ तेरा दरकार असानूं, हर वेले हर हीले।
पाक रसूल मुहम्मद सरवर, मेरे ख़ास वसीले।

बुल्लेशाह जे मिले प्यारा, लख करां शुकराने।
इश्क़ असां नाल केही कीती, लोक मरेंदे ताने।

(अब्दुल मजीद भट्टी: *काफ़ियाँ बुल्लेशाह*, 158)

इश्क़ दी नवियों नवीं बहार

इस काफ़ी में साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि प्रेम का ढंग निराला होता है। जिसे प्रेम का रहस्य ज्ञात हो जाता है, वह धर्मों और जातियों के बन्धनों से ऊपर उठ जाता है। आप कहते हैं कि जब मैंने प्रेम का पाठ पढ़ लिया तो मेरा मन ईंटों और पत्थरों की मस्जिदों और मन्दिरों से मुड़कर शरीररूपी सच्चे ठाकुरद्वारे में प्रविष्ट हो गया जहाँ इसे अनहद शब्द के हज़ारों नाद सुनायी देने लगे। प्रेम का यह पाठ पढ़ने से मैं-मेरी और तू-तेरी (मैना-तोता) दूर हो गयी, हृदय निर्मल हो गया और हर ओर उस प्रभु का प्रकाश अनुभव होने लगा। इस प्रकार आत्मा और परमात्मा का मिलन हो गया। आत्मा को ज्ञात हो गया कि जिस प्रियतम को मैं बाहर जंगलों और पर्वतों में ढूँढ़ती फिरती थी, वह सदा मेरे ही साथ था। आप कहते हैं कि अन्दर बस रहे प्रियतम को बाहर मन्दिरों, मस्जिदों और वेद, क़ुरान आदि धर्म-ग्रन्थों में ढूँढ़ना व्यर्थ है। वह प्रभु जिसे मिला है, प्रकाशमय रूप में अपने अन्दर मिला है। आप

कहते हैं कि माला (तसबी), भिक्षा-पात्र (कासा), डण्डा (सोटा), लोटा और नमाज़ पढ़नेवाला बिछावन (मुसल्ला) आदि बहिर्मुखी साधनों को त्यागकर अन्तर में प्रभु को ढूँढ़ना चाहिये। यदि जीवन भर मस्जिद में रहते हैं, परन्तु हृदय अपवित्र है और अद्वैत (तौहीद) की नमाज़ नहीं पढ़ता तो कोई लाभ नहीं है:

इश्क़ दी नवियों नवीं बहार।
जां मैं सबक इश्क़ दा पढ़या, मसजद कोलों जीउड़ा डरया।
डेरे जा ठाकर दे वड़या, जित्थे वजदे नाद हज़ार।

जां मैं रमज़ इश्क़ दी पाई, मैना तोता मार गवाई।
अंदर बाहर होई सफ़ाई, जित वल वेखां यारो यार।

हीर रांझे दे हो गए मेले, भुल्ली हीर ढूंडेंदी बेले।
रांझा यार बुक्कल विच खेले, मैंनूं सुध बुध रही न सार।*

बेद कुरानां पढ़ पढ़ थक्के, सजदे करदयां घस गए मत्थे।
न रब्ब तीरथ न रब्ब मक्के, जिस पाया तिस नूर अनवार।†

फूक मुसल्ला भंन सुट लोटा, न फड़ तसबी कासा सोटा।
आशिक़ कैह्न्दे दे दे होका, तरक हलालों खाह मुरदार।‡

उमर गवाई विच मसीती, अन्दर भरया नाल पलीती।§
कदे नमाज़ तौहीद न कीती, हुण की करनां एं शोर पुकार।

---

* आत्मा पहले प्रियतम की खोज में बाहर परेशान हो रही थी, अब उसे अन्दर ही प्रियतम मिल गया है।

† **अनवार**=नूर का बहुवचन, अर्थात् वह परम चेतन, प्रकाशरूप परमात्मा जिसको भी मिलता है, अपने अन्तर में मिलता है।

‡ **हलालों**=जिसको शरीअत सही कहती है; मुरदार=जिसको शरीअत सही नहीं मानती, अर्थात् तू शरअ का त्याग करके प्रेम का मार्ग पकड़ ले।

§ **पलीती**=गन्दगी।

इश्क़ भुलाया सजदा तेरा, हुण क्यों ऐवें पावें झेड़ा।*
बुल्ला हुंदा चुप बथेरा, इश्क़ करेंदा मारो मार।†
इश्क़ दी नवियों नवीं बहार।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 76)

एह अचरज साधो कौण लखावे

अपनी बहुत-सी काफ़ियों की तरह साईं बुल्लेशाह ने इस काफ़ी में भी यह विचार प्रकट किया है कि वह एक प्रभु अनेक रूप धारण करके प्रकट होता है। मक्का में हज़रत मुहम्मद बनकर आनेवाला और लंका में राम बनकर जानेवाला वह प्रभु एक ही है। हिन्दू और मुसलमान, काफ़िर और मोमन का झगड़ा व्यर्थ है। इसी प्रकार बाँग और नाद में कोई अन्तर नहीं है। दोनों शब्द नाम के लिए प्रयोग होनेवाले पद हैं, परन्तु संसार में व्याप्त पूर्ण अद्वैत का ज्ञान केवल उस प्रभु के साथ मिलाप करने से ही होता है। जब अन्तर में उससे मिलाप कर लेते हैं तो हर जगह और हर रंग में वह प्रभु समाया हुआ दिखायी देता है:

एह अचरज साधो कौण लखावे, छिन छिन रूप किते बण आवे।
मक्का लंका सहदेव के, भेत दोऊ को एक बतावे।
जब जोगी तुम वसल करोगे, बांग कहो भावें नाद वजावे।‡
भगती भगत नतारो नाहीं, भगत सोई जेहड़ा मन भावे।§
हर परगट परगट ही देखो, क्या पंडत फिर बेद सुनावे।¶

---

* **सजदा**=दण्डवत, प्रणाम; **झेड़ा**=झगड़ा।

† मैं चुप रहने का प्रयत्न करता हूँ, परन्तु प्रेम मुझे चुप नहीं रहने देता।

‡ जब अन्तर में उससे मिलाप हो जायेगा तो पता लग जायेगा कि उस अनहद शब्द को ही मुसलमान बाँग और हिन्दू नाद कहते हैं।

§ भक्ति और भक्त की पहचान करने की आवश्यकता नहीं। सच्चा भक्त वह है जो प्रभु को अच्छा लगता है।

¶ जब वह हरि सब जगह व्याप्त है तो फिर पण्डित वेदों से क्या पढ़कर सुना रहा है?

ध्यान धरो एह काफ़र नाहीं, क्या हिंदू क्या तुरक कहावे।*
जब देखूं तब ओही ओही, बुल्ला शौह हर रंग समावे।
एह अचरज साधो कौण कहावे, छिन छिन रूप किते बण आवे।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 22)

एह दुख जा कहूं किस आगे

इस काफ़ी में प्रेम और विरह का हृदयविदारक वर्णन किया गया है। आप कहते हैं कि प्रेम के कारण ऐसे घाव लग गये हैं जिनका दु:ख किसी को नहीं बताया जा सकता। प्रेम का आरम्भ तो हँसी में हुआ था पर अब यह गले की फाँसी बन गया है। दिन-रात तड़पते हुए व्यतीत होते हैं। जीवन-मरण समान है और संसार के ताने मिल रहे हैं। प्रियतम परदेस से लौटते नहीं और दु:खों का अन्त नहीं होता। काफ़ी के अन्त में विरहिणी आत्मा प्रियतम से विनती करती है कि मुझे अपना मुखड़ा दिखाओ ताकि मुझे पल भर के लिए शान्ति मिल सके:

एह दु:ख जा कहूं किस आगे,
रोम रोम घा प्रेम के लागे।† टेक।
सिकत सिकत है रैण विहाणी, हमरे पिया ने पीड़ न जाणी।‡
बिलकत बिलकत रैण विहासी, हासे दी गल्ल पै गई फासी।§
इक मरना दूजा जग दी हांसी, करत फिरत नित मोही रे मोही।
कौण करे मोहे से दिलजोई, शाम पिया मैं देती तूं धरोई।¶

---

* ध्यान से देखो, कोई भी व्यक्ति काफ़िर नहीं है, चाहे उसको हिन्दू कहकर बुलाया जाये या मुसलमान।

† **घा**=घाव।

‡ **सिकत सिकत**=तड़प-तड़पकर

§ **बिलकत बिलकत**=बिलख-बिलखकर।

¶ **दिलजोई**=धैर्य देना; **धरोई**=दुहाई।

दुख जग के मोहे पूछन आए, जिन के पिया परदेस सिधाए।
न पिया आए न पिया आए, एह दुख जा कहूं किस जाए।
बुल्ला शाह घर आ प्यारया, इक घड़ी के करन गुज़ारया।
एह दुख जा कहूं किस आगे,
रोम रोम घा प्रेम के लागे।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 23)

उठ जाग घुराड़े मार नहीं

इस काफ़ी में साईं बुल्लेशाह अचेत जीव को सावधान करते हैं कि तू संसार की असलियत को और अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य को समझने की कोशिश कर। संसार में जीवन थोड़े समय के लिए है। संसार के सभी पदार्थ और मनुष्य नश्वर हैं। प्रभु के नाम के बिना यहाँ से कोई वस्तु चलते समय साथ नहीं जाती। अन्त समय साथ देनेवाली और परलोक में काम आनेवाली एक ही वस्तु परमात्मा का कलमा या नाम है। इसलिए आलस्य और अज्ञान को त्यागकर सदैव नाम की ओर ध्यान देना चाहिये। अधिक विस्तार के लिए पुस्तक का पृष्ठ 46 देखिये:

उठ जाग घुराड़े मार नहीं, एह सौण तेरे दरकार नहीं।
इक रोज़ जहानो जाणा ए, जा कबरे विच समाणा ए।*
तेरा ग़ोशत कीड़यां खाणा ए, कर चेता मरग विसार नहीं।†

तेरा साहा नेड़े आया ए, कुझ चोली दाज रंगाया ए।‡
क्यों आपणा आप वंजाया ए, ऐ ग़ाफ़िल तैनूं सार नहीं।§

---

* एक दिन इस संसार को छोड़कर क़ब्र में स्थान लेना होगा।
† **कर...नहीं**=हे मनुष्य, मौत को मत भुला।
‡ **साहा**=मौत का दिन।
§ **वंजाया**=गँवाना।

तूं सुत्तयां उमर वंजाई ए, तूं चरखे तंद न पाई ए।*
की करसैं दाज तैयार नहीं, उठ जाग घुराड़े मार नहीं।

तूं जिस दिन जोबन मत्ती सैं, तूं नाल सईआं दे रत्ती सैं।†
हो ग़ाफ़िल गल्लीं वत्ती सैं, एह भोरा तैनूं सार नहीं।‡

तूं मुद्ढों बहुत कुचज्जी सैं, निरलज्जयां दी निरलज्जी सैं।§
तूं खा खा खाणे रज्जी सैं, हुण ताईं तेरा बार नहीं।

अज कल तेरा मुकलावा ए, क्यों सुत्ती कर कर दावा ए।
अणडिट्ठयां नाल मिलावा ए, एह भलके गरम बाज़ार नहीं।¶

तूं एस जहानों जाएंगी, फिर क़दम न एथे पाएंगी।
एह जोबन रूप वंजाएंगी, तैं रहणा विच संसार नहीं।

मंज़िल तेरी दूर दुराडी, तूं पौणां विच्च जंगल वादी।**
औखा पहुँचण पैर प्यादी, दिसदी तूँ असवार नहीं।††

इक इकल्ली तनहा चलसें, जंगल बरबर दे विच रुलसे।‡‡
लै लै तोशा एथों घलसैं, ओथे लैण उधार नहीं।§§

---

* **'चरखे तंद न पाई ए'** का भाव परमात्मा की भक्ति न करने से है।
† **जोबन...सैं**=यौवन में मस्त थी; **सईआं**=सहेलियाँ; **रत्ती**=रँगी हुई, लीन।
‡ **वत्ती**=व्यस्त; **तैनूं...नहीं**=रत्ती भर भी तुझे परवाह नहीं थी।
§ **मुद्ढों**=आरम्भ से ही।
¶ दोबारा दुनिया के बाज़ार में नहीं आना होगा।
** **पौणां**=पड़ेगी; **वादी**=घाटी।
†† पैदल पहुँचना कठिन है और तेरे पास कोई सवारी भी नहीं है अर्थात् न तूने सतगुरु का पल्ला पकड़ा है और न ही परमात्मा की भक्ति की है जो तेरी सहायता करे।
‡‡ **तनहा**=अकेली; **रुलसे**=भटकेगी।
§§ **तोशा**=सफ़र में काम आनेवाले भोजन का सामान; परमात्मा का नाम ही मार्ग में काम आनेवाला तोशा है जो जीते-जी इकट्ठा किया जा सकता है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

संत जनहु मिलि भाईहो सचा नामु समालि॥
तोसा बंधहु जीअ का ऐथै ओथै नालि॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 49)

ओह ख़ाली ए सुंञी हवेली, तू विच रहसें इक इकेली।*
ओथे होसी होर न बेली, साथ किसे दा बार नहीं।

जेहड़े सन देसां दे राजे, नाल जिन्हां दे वजदे वाजे।
गए हो के बे-तख़ते ताजे, कोई दुनिया दा इतबार नहीं।

कित्थे है सुलतान सिकन्दर, मौत न छड्डे पीर पैग़ंबर।
सब्भे छड्ड छड्ड गए अडंबर, कोई एथे पायदार नहीं।†

कित्थे यूसुफ माहि-कनयानी, गई ज़ुलेख़ा फेर जवानी।‡
कीती मौत ने ओड़क फ़ानी, फेर ओह हार शिंगार नहीं।§

कित्थे तख़त सुलेमान वाला, विच हवा उडदा सी बाला।¶
ओह भी क़ादर आप संभाला, कोई ज़िंदगी दा इतबार नहीं।

कित्थे मीर मलक सुल्ताना, सब्भे छड्ड छड्ड गए ठिकाना।**
कोई मार न बैठे ठाणा, लशकर दा जिन्हां शुमार नहीं।

फुल्लां फुल चंमेली लाला, सोसन सिंबल सरू निराला।
बादे-ख़िज़ां कीता बुरहाला, नरगस नित ख़ुमार नहीं।††

जो कुझ करसैं सो कुझ पासैं, नहीं ते ओड़क पछोतासैं।
सुंञी कूंज वांग कुरलासैं, खम्भां बाझ उडार नहीं।‡‡

---

* क़ब्ररूपी हवेली में अकेले रहना पड़ेगा।

† **पायदार**=स्थायी, पक्का, सदा रहनेवाला।

‡ **माहि-कनयानी**=कनिआन का चन्द्रमा मिस्र के क्षेत्र का नाम है अर्थात् चाँद जैसा सुन्दर यूसुफ़ न रहा; **गई...जवानी**=ज़ुलैख़ा को दोबारा मिली जवानी भी समाप्त हो गयी।

§ **कीती...फ़ानी**=अन्ततः (ओड़क) मौत ने उसका नाश कर दिया।

¶ सुलेमान बहुत बुद्धिमान बादशाह था। कहते हैं कि उसका तख़्त हवा में उड़ सकता था; **बाला**=ऊपर आकाश में।

** बड़े-बड़े राजा, महाराजा और सुलतान भी नहीं रहे। सब इस संसार के ठिकाने छोड़ गये।

†† पतझड़ की हवा (मौत) ने सब फूलों और बहार को नष्ट कर दिया।

‡‡ **खम्भां बाझ**=पंख के बिना; परमात्मा के भक्तिरूपी पंख के बिना उड़ नहीं सकेगा।

डेरा करसें ओहनी जाईं, जित्थे शेर पलंग बलाई।*
ख़ाली रहसण महल सराईं, फिर तूं विरसेदार नहीं।†

असीं आजज़ विच कोट इल्म दे, ओसे आंदे विच क़लम दे।
बिन कलमे दे नाहीं कंम दे, बाझों कलमे पार नहीं।

बुल्ला शौह बिन कोई नाहीं, एथे ओथे दोहीं सराईं।
संभल संभल के कदम टिकाईं, फिर आवण दूजी वार नहीं।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 6)

उलटे होर ज़माने आए

इस काफ़ी में कवि अपने समय में हुए राजनीतिक एवं सदाचारिक परिवर्तनों की ओर संकेत करता है। वह कहता है कि समय की सारी चाल उलटी हो गयी है। कौए और चिड़ियाँ बाज़ों को मार रहे हैं। घोड़े गन्दगी के ढेरों पर पहुँच गये हैं और गधे हरे-भरे खेत चर रहे हैं। पिता और पुत्र, माता और पुत्री और अन्य सम्बन्धियों में आपस का प्रेम नहीं रहा। सच्चे लोगों को धक्के मिल रहे हैं और झूठे लोग आगे पहुँच रहे हैं। मुखिया कंगाल हो गये हैं जब कि पिछड़े हुए लोग मुखिया बन गये हैं। निर्धन राजा बन गये हैं और राजा भिखारी बन चुके हैं। यह सब उस प्रभु के हुक्म से हो रहा है जो अटल है। कवि हर प्रकार के उतार-चढ़ाव को प्रभु की इच्छा समझता है। गुरु नानक साहिब ने अपने एक शब्द में एक ओर लोगों पर हो रहे ज़ुल्म की तस्वीर खींचते हुए प्रभु से शिकायत की है: 'एती मार पई कुरलाणे तैं की दरदु न आइआ' और दूसरी ओर समय के परिवर्तन को मालिक की इच्छा से जोड़ा है, 'आपे जोड़ि विछोड़े आपे वेखु तेरी वडिआई' (आदि ग्रन्थ, पृ. 360)। साईं बुल्लेशाह की इस काफ़ी में भी ये दोनों रंग झलक रहे हैं:

---

* **जाईं**=स्थानों पर; तुझे उन स्थानों पर डेरा बनाना पड़ेगा जहाँ जंगली जानवर – शेर, चीते आदि मार्ग रोकेंगे; मृत्यु के बाद के मार्ग के संकटों का वर्णन किया गया है।

† **विरसेदार**=मालिक

उलटे होर ज़माने आए,
तां मैं भेद सज्जण दे पाए। टेक।
कां लगड़ां नूं मारन लग्गे, चिड़ियां जुरे ढाए।*
घोड़े चुगण अरूड़ीआं ते, गद्दों खवेद पवाए।†

आपणयां विच उलफ़त नाहीं, क्या चाचे क्या ताए।‡
प्यो पुत्तरां इतफ़ाक न काई, धीआं नाल न माए।§

सच्चयां नूं पए मिलदे धक्के, झूठे कोल बहाए।
अगले हो कंगाले बैठे, पिछलयाँ फ़रश विछाए।¶

भूरीआं वाले राजे कीते, राजयां भीख मंगाए।**
बुल्लया हुकम हज़ूरों आया, तिस नूँ कौण हटाए।
उलटे होर ज़माने आए,
तां मैं भेद सज्जण दे पाए।

(नज़ीर अहमद: *कलाम बुल्लेशाह*, 14)

ऐसा जगया ज्ञान पलीता

इस काफ़ी में साईं जी कहते हैं कि सच्चे प्रेम से वह ज्ञान पैदा होता है जिसके प्रकाश से अन्धकार दूर हो जाता है। हिन्दू और मुसलमान का भेद-भाव समाप्त हो जाता है और केवल प्रेम का ही महत्त्व रह जाता है। आप कहते हैं कि मुल्ला, क़ाज़ी और पण्डित ठग हैं। उन्होंने ऐसे कर्मकाण्ड जारी कर दिये हैं जो आवागमन का कारण बनते हैं:

* **लगड़ां**=बाज़; **जुरे**=बाज़।
† **गद्दों**=गधों; **खवेद**=हरे-भरे खेत।
‡ **उलफ़त**=प्रेम।
§ **इतफ़ाक**=एकता, मेल-मिलाप।
¶ जो आगे थे, वे कंगाल हो गये और जो पिछड़े हुए थे, वे शान से रह रहे हैं।
** **भूरीआं वाले**=चादर या लोई ओढ़नेवाले; भाव यह है कि ग़रीब राजा बन गये और राजा भिक्षुक बन गये।

ऐसा जगया ज्ञान पलीता। टेक।
न हम हिंदू न तुरक ज़रूरी, नाम इश्क़ दी है मनज़ूरी।*
आशिक़ ने हर जीता, ऐसा जगया ज्ञान पलीता।

विखो ठग्गां शोर मचाया, जंमणा मरणा चा बणाया।
मूरख भुल्ले रौला पाया, जिस नूं आशिक़ ज़ाहर कीता।†
ऐसा जगया ज्ञान पलीता।

बुल्ला आशिक़ दी बात न्यारी, प्रेम वालयां बड़ी करारी।
मूरख दी मत ऐवें मारी, वाक सुख़न चुप कीता।‡
ऐसा जगया ज्ञान पलीता।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 21)

कत्त कुड़े न वत्त कुड़े

इस काफ़ी में स्त्रियों के सूत कातने के उदाहरण द्वारा प्रभु-भक्ति करने का उपदेश दिया गया है। आत्मा को स्त्री, संसार को माया का घर, परमात्मा की भक्ति को सूत कातना और शुभ गुणों को दहेज कहा गया है। 'छल्ली लाह भड़ोले घत्त कुड़े' से आशय भजन-सिमरन का भण्डार जमा करना है। बूँद-बूँद से तालाब भर जाता है। सिमरन में लगाया पल-पल लेखे में लगता है और अन्त समय भक्ति का काफ़ी भण्डार जमा हो जाता है जो परलोक (ससुराल) में काम आता है। जो आत्मा भक्तिरूपी दहेज के बिना परलोक में जाती है, उसे वहाँ कोई पसन्द नहीं करता और न ही वह अपने प्रियतम को भाती है:

* **तुरक**=मुसलमान।; **नाम इश्क़ दी है मनज़ूरी**=केवल प्रभु का नाम ही मान्य है।
† **ज़ाहर**=प्रकट।
‡ **सुख़न**=बातचीत।

कत्त कुड़े न वत्त कुड़े, छल्ली लाह भड़ोले घत्त कुड़े।* टेक।
जे पूणी पूणी कत्तेंगी, तां नंगी मूल न वत्तेंगी।
सौहरयां दे जे कत्तेंगी, तां काग मारेगा झुट कुड़े।†

विच ग़फ़लत जे तैं दिन जाले, कत्त के कुझ न लयो संभाले।‡
बाझों गुण शौह आपणे नाले, तेरी क्यों कर होसी गत्त कुड़े।§

मां प्यो तेरे गंढीं पाइयां, अजे ना तैनूं सुरतां आयां।¶
दिन थोड़े ते चाअ मुकाईआं, न आसें पेके वत्त कुड़े।**

जे दाज विहूणी जावेंगी, तां किसे भली न भावेंगी।
ओथे शौह नूं किवें रीझावेंगी, कुझ लै फ़क़रां दी मत्त कुड़े।

तेरे नाल दीआं दाज रंगाए नी, ओहनां सूहे सालू पाए नी।
तूं पैर उलटे क्यों चाए नी, जा ओथे लग्गी तत्त कुड़े।††

बुल्ला शौह घर आपणे आवे, चूड़ा बीड़ा सब सुहावे।
गुण होसी तां गले लावे, नहीं रोसें नैनीं रत्त कुड़े।‡‡

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 81)

---

* **न...कुड़े**=व्यर्थ ख़ाली न जा।

† यदि तू यह सोचे कि परलोक में जाकर भक्ति कर लूँगी तो तू काल का भोजन बन जायेगी और तुझसे कुछ भी न हो सकेगा।

‡ **जाले**=गुज़ारे, बिताये।

§ **तेरी...कुड़े**=गति कैसे होगी अर्थात् तेरा पार-उतारा कैसे होगा?

¶ **मां...पाइयां**=माँ-बाप (काल और माया) ने तेरे विवाह (मौत) का समय निश्चित कर दिया है।

** जो थोड़ा समय पास था तूने ख़ुशी के रागों में व्यय कर दिया। कातने (भक्ति) की ओर ध्यान नहीं दिया।

†† तू उलटे काम क्यों करती है? तुझे वहाँ तपना पड़ेगा।

‡‡ यदि गुणों का दहेज इकट्ठा न करेगी तो प्रियतम तुझे अंग नहीं लगायेगा और तू ख़ून के आँसू बहायेगी। उस समय पछताने का कुछ लाभ न होगा।

कदी आ मिल बिरहों सताई नूं

इस काफ़ी में प्रेमिका अपने प्रियतम से प्रार्थना करती है कि मैं तेरे वियोग में व्याकुल हूँ। मैं प्रेम से उत्पन्न दु:खों और कष्टों की नदी के भँवर में फँसी हुई हूँ। मुझे अपनी, सखी-सहेलियों और माता-पिता की सुध-बुध भूल गयी है। तू ही मेरे विरह के दु:ख को दूर कर सकता है। विरहिणी प्रियतम को ताना देती है कि तुझे पराई पीड़ा का आभास नहीं है। यदि तुझे भी प्रेम का रोग लग जाये तो तू भी हाय-हाय कर उठेगा। जो कोई प्रेम करता है, उसे प्रियतम पर अपना सिर क़ुर्बान करना पड़ता है। विरहिणी प्रार्थना करती है कि हे प्रभुरूपी प्रियतम, अन्य आत्माएँ तो अपनी भक्ति या शुभ गुणों के बलबूते भवसागर से पार होने का प्रयत्न कर रही हैं परन्तु मेरी लाज तो केवल तुम्हारे हाथों में है। मैं तेरी दया से ही किनारे लग सकती हूँ:

कदी आ मिल बिरहों सताई नूं। टेक।*
इश्क़ लग्गे तां है है कूकें, तूं की जाणे पीड़ पराई नूं।†
कदी आ मिल बिरहों सताई नूं।

जे कोई इश्क़ विहाजया लोड़े, सिर देवे पहले साईं नूं।‡
कदी आ मिल बिरहों सताई नूं।

अमलां वालियां लंघ लंघ गइयां, साडियां लज्जां माही नूं।§
कदी आ मिल बिरहों सताई नूं।

ग़म दे वहण सितम दीआं कांगां, किसे कहर कप्पर विच पाई नूं।¶
कदी आ मिल बिरहों सताई नूं।

---

* **कदी**=कभी-कभी; **बिरहों...नूं**=बिरह की सतायी हुई को।

† तुझे भी प्यार हो जाये तो तू भी हाय-हाय करने लगेगी। फिर तुझे मेरे प्यार की पीड़ा का अनुभव होगा।

‡ जो कोई प्रेम ख़रीदना (विहाजया) चाहता है तो पहले सिर देकर इसका मूल्य चुकाये।

§ नम्रता के भाव में कहते हैं कि भजन-सिमरनवाली गुणवन्ती (स्त्रियाँ) पार हो गयी हैं। मुझ बेचारी की लाज तो प्रियतम के हाथ में है। वह चाहे तो बेड़ा पार कर दे।

¶ **सितम**=अत्याचार; **कांगां**=लहरें; **कहर कप्पर**=भयानक अँधेरी।

मां प्यो छड सइयां मैं भुल्ली आं, बलहारी राम दुहाई नूं।*
कदी आ मिल बिरहों सताई नूं।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 83)

कदी आ मिल यार प्यारया

प्रस्तुत काफ़ी में प्रेमिका प्रियतम से विनय करती है कि तू आकर मुझे अपने दर्शन दे। मैं स्वयं को तेरी राहों में न्योछावर करती हूँ। हे मेरे सलोने श्याम! तेरे आने पर ही मेरे विरह की अग्नि शान्त होगी:

कदी आ मिल यार प्यारया, तेरियां वाटां तों सिर वारया। टेक।†
चढ़ बागी कोयल कूकदी, नित सोज़-अलम दे फूकदी।‡
मैनूं ततड़ी को शाम विसारया, कदी आ मिल यार प्यारया।§
बुल्ला शौह कदी घर आवसी, मेरी बलदी भा बुझावसी।¶
ओह्दी वाटां तो सिर वारया, कदी आ मिल यार प्यारया।**
तेरियां वाटां तों सिर वारया, कदी आ मिल यार प्यारया।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 83)

क्यों ओह्ले बह बह झाकीदा

अन्य काफ़ियों की भाँति यहाँ भी यह भाव प्रकट किया गया है कि रचना के रंग-बिरंगे आकारों के पीछे उस एक प्रभु का प्रकाश विद्यमान है। साईं

* **मां प्यो**=माता-पिता; **सइयां**=साईं, प्रियतम।
† **वाटां**=रास्ते; **वारया**=क़ुर्बान किया।
‡ **बागी**=बाग़ में; **सोज़-अलम**=दु:ख-दर्द।
§ **ततड़ी**=बेचारी; **शाम**=कान्ह, श्याम अर्थात् प्रियतम; **विसारया**=भुला दिया।
¶ **आवसी**=आयेगा; **भा**=आग।
** **ओह्दी**=उसकी।

बुल्लेशाह बहुत सुन्दर ढंग से कहते हैं कि जैसे एक नवयुवती घूँघट में मुख छिपाये होती है, उसी तरह उस प्रभु ने माया के आवरण के पीछे अपने आपको छिपा रखा है और वह परदे के पीछे से रचना को देख रहा है।

बहुत-से सूफ़ी दरवेशों ने यह विचार व्यक्त किया है कि सृष्टि की रचना का मूल कारण प्रेम है। वह प्रभु अपने आपको प्रेम करना चाहता था, इसलिये उसने स्वयं को एक से अनेक बनाकर और आत्माओं का रूप धारण करके अपने आपको प्यार करने लगा। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि प्रभु को आत्मा से प्रेम है। इसलिए वह सतगुरु का रूप धारण करके संसार में आ जाता है। साईं जी ने दो छोटे-छोटे वाक्यांशों में ये दोनों भाव दर्शाये हैं:

1. कारन पीत मीत बण आया।
2. तुसी आप असां नूँ धाए जी, तुसीं शाह इनायत बण आए जी।

सृष्टि की अनेकता के पीछे विद्यमान एकता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि रूमी और शामी, सेवक और स्वामी सबमें एक प्रभु का निवास है। इसलिए किसी को बुरा या भला कहना व्यर्थ है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रेम द्वारा प्रभु को प्राप्त कर लिया जाये:

क्यों ओह्ले बह बह झाकीदा, एह परदा किस तों राखीदा।*
कारन पीत मीत बण आया, मीम दा घूँघट मुख पर पाया।†
अहद ते अहमद नाम धराया, सिर छतर झुल्ले लौलाकी दा।‡
तुसीं आपे आप ही सारे हो, क्यों कैह्न्दे तुसीं न्यारे हो।§
आए आपणे आप नज़ारे हो, विच बरज़ख रक्खया ख़ाकी दा।¶

* रचना की अनेकता के परदे के पीछे एक ही रचनाकार छिपा हुआ है।
† अपने आपको प्रीति करने के लिए प्रियतम बनकर आ गया है और मुख पर माया का घूँघट डाल लिया है।
‡ **अहद**=ख़ुदा; **अहमद**=सतगुरु; **लौलाकी**=लौलाक अर्थात् खण्ड-ब्रह्माण्ड।
§ सर्व-व्यापक होकर निर्लिप्त क्यों कहलाते हो?
¶ **बरज़ख**=परदा, आवरण; **ख़ाकी दा**=मिट्टी का।

तुझ बाझों दूसरा केह्ड़ा है, क्यों पाया उलटा झेड़ा है।*
एह डिठा बड़ा अंधेरा है, हुण आप नूं आपे आखी दा।†

किते रूमी हो किते शामी हो, किते साहिब किते ग़ुलामी हो।‡
तुसीं आपे आप तमामी हो, कहुँ खोटा खरा सो लाखी दा।§

जिस तन विच इश्क़ दा सोज़ होया, ओह बेखुद ते बेहोश होया।¶
ओह क्योंकर रहे ख़ामोश होया, जिस प्याला पीता साक़ी दा।**

तुसीं आप असां नूं धाए जी, कद रैह्न्दे छपे छपाए जी।
तुसीं शाह 'इनाइत' बण आए जी, हुण ला ला नैण झमाकी दा।††

बुल्ला शाह तन भा दी भट्ठी कर, अग बाल हड्डां तन माटी कर।
एह शौक मुहब्बत बाकी कर, एह मधुवा इस बिध चाखीदा।‡‡
(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 95)

कर कत्तण वल्ल ध्यान कुड़े

इस काफ़ी में स्त्रियों के सूत कातने के उदाहरण द्वारा प्रभु-भक्ति का उपदेश दिया गया है। मनुष्य-शरीर की उस बहुमूल्य चरख़े से तुलना की गयी है जो प्रभु-भक्ति का सूत कातने के लिए मिला है। आत्मा वह नादान युवती है जो इसकी परवाह नहीं करती। कवि सावधान करता है कि तू संसाररूपी मायके में सदा नहीं रह सकती। यदि तू इस समय भक्ति का सूत नहीं कातेगी तो तुझे परलोक रूपी ससुराल में जाकर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। तेरा इस संसार

* अनेकता का झगड़ा व्यर्थ क्यों खड़ा किया है?
† **आखी**=आखना, कहना।
‡ **रूमी**=रोम का रहनेवाला; **शामी**=स्याम (देश) का रहनेवाला; **ग़ुलामी**=दास।
§ **तमामी**=सबकुछ।
¶ **सोज़**=पीड़ा
** प्रेम-प्याला पीनेवाला चुप नहीं रह सकता।
†† **हुण...दा**=आँखें झपक-झपककर देखता हूँ।
‡‡ प्रियतम को प्रीति से स्थिर कर ले, यही प्रेम का शहद प्याला (मधुआ) पीने का ढंग है।

में थोड़े समय के लिए विश्राम है। तू यौवन और सौन्दर्य का मान त्यागकर भक्ति का दहेज तैयार कर।

काफ़ी की अन्तिम दो पंक्तियों में संकेत किया गया है कि मृत्यु के समय तुझे अकथनीय पीड़ा का सामना करना पड़ेगा। कोई मित्र या सम्बन्धी उस समय तेरी सहायता नहीं कर पायेगा। केवल सतगुरु ही उस समय सहायता करके भवसागर से पार ले जा सकते हैं। विस्तृत व्याख्या के लिये पृष्ठ 46 से 53 तक देखिये:

कर कत्तण वल्ल ध्यान कुड़े। टेक।
नित मत्तीं देंदी मां धीआ, क्यों फिरनी एं ऐवें आ धीआ।*
नी शरम हया न गवा धीआ, तूं कदी तां समझ नदान कुड़े।†

नहिंयों कदर मेहनत दा पाया, जद होया कंम असान कुड़े।
चरखा मुफ़त तेरे हत्थ आया, पलयों नहिंओं कुछ गवाया।

चरखा बणया खातर तेरी, खेडण दी कर हिरस थुरेड़ी।
होना नहिंयों होर वडेरी, मत कर कोई अज्ञान कुड़े।

चरखा तेरा रंग रंगीला, रीस करेंदा सब कबीला।
चलदे चारे कर लै हीला, हो घर दे विच अवादान कुड़े।‡

* **मत्तीं**=शिक्षा।
† **नदान**=बेचारी, नासमझ।
आगे की छः पंक्तियों में मनुष्य-शरीर की चरख़े से तुलना की गयी है जिस पर प्रभु-भक्ति का सूत काता जा सकता है। '**नहिंयों...पाया**'=यह चरख़ा पूर्व जन्मों के बहुत श्रेष्ठ कर्मों के कारण मिला है। '**जद...कुड़े**'=नीचे की योनियों में भक्ति कर सकना असम्भव था। '**इस...भारी**'=मनुष्य-जन्म अमूल्य अवसर है। कबीर साहिब कहते हैं कि मनुष्य-जन्म सतगुरु के उपदेश के अनुसार भक्ति करने के लिए मिला है। इस देही को देवता भी तरसते हैं क्योंकि केवल इस देही में ही परमात्मा की भक्ति द्वारा सच्ची मुक्ति प्राप्त की जा सकती है:

गुर सेवा ते भगति कमाई॥ तब इह मानस देही पाई॥
इस देही कउ सिमरहि देव॥ सो देही भजु हरि की सेव॥
भजहु गोबिंद भूलि मत जाहु। मानस जनम का एही लाहु॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1159)

‡ **अवादान**=आबाद।

इस चरखे दी कीमत भारी, तूं के जाणें कदर गवारी।
उच्ची नज़र फिरें हंकारी, विच आपणी शान गुमान कुड़े।

मैं कूकां कर खलीआं बाहीं, न हो ग़ाफ़िल समझ कदाईं।*
ऐसा चरखा घड़ना नाहीं, फेर किसे तरखाण कुड़े।†

एह चरखा तूं क्यों गँवाया, क्यों तूं खेह दे विच रुलाया।‡
जद दा हत्थ तेरे एह आया, तूं कदे न डाह्या आण कुड़े।

नित मत्तीं दयां वलल्ली नूं, इस भोली कमली झल्ली नूं।§
जद पवेगा वख़त इकल्ली नूं, तद हाय हाय करसी जान कुड़े।

मुड्ढों दी तूं रिज़क विहूणी, गोहड़यों न तूं कत्ती पूणी।¶
हुण क्यों फिरनी एं निंमोझूणी, किस दा करें गुमान कुड़े।**

न तकला रास करावें तूं, न बायड़ माल्ह पवावें तूं।††
घड़ी मुड़ी क्यों चरखा चावें तूं, करनी एं आपणा ज़यान कुड़े।‡‡

डिंगा तकला रास करा लै, नाल शताबी बायड़ पवा लै।
ज्यों कर वगे तिवें वगा लै, मत कर कोई अज्ञान कुड़े।

अज्ज घर विच नवीं कपाह कुड़े, तूं झब झब वेलणा डाह कुड़े।
रूं वेल पंजावण जाह कुड़े, मुड़ कल न तेरा जाण कुड़े।

जद रूं पंजा लिआवेंगी, सईयां विच पूणीयां पावेंगी।
मुड़ आपे ही पई भावेंगी, विच सारे जग जहान कुड़े।

---

* मैं बाँहें खड़ी करके शोर मचाती हूँ, तू कभी-कभार तो समझ से काम ले और बेपरवाही न कर।
† **तरखाण**=बढ़ई।
‡ **खेह**=मिट्टी।
§ **वलल्ली**=जिसको कोई ढंग या तरीक़ा न आता हो।
¶ **गोहड़यों...पूणी**=पूनियों की टोकरी में से तूने कभी भी भक्ति का धन (रिज़क) इकट्ठा नहीं किया।
** **निंमोझूणी**=परेशान, शर्मिन्दा।
†† **बायड़**=चरख़े के तख़्तों को जोड़नेवाली रस्सी, जिस पर माल्ह (रस्सी) चलती है।
‡‡ **ज़यान**=नुक़सान, हानि।

तेरे नाल दीआं सभ सईयां नी, कत पूणीयां सभनां लईआं नी।
तैनूँ बैठी नूं पिच्छे पईआं नी, क्यों बैठी हुण हैरान कुड़े।

दीवा आपणे पास जगावीं, कत्त कत्त सूत भड़ोली पावीं।
अक्खीं विच्चों रात लंघावीं, औखी करके जान कुड़े।

राज पेका दिन चार कुड़े, न खेडो खेड गुज़ार कुड़े।
न हो वेहली कर कार कुड़े, घर बार न कर वीरान कुड़े।*

तूं सुत्तयां रैण गुज़ार नहीं, मुड़ आणा दूजी वार नहीं।
फिर बैह्णा एस भंडार नहीं, विच इक्को जेडे हाण कुड़े।†

तूं सदा न पेके रैह्णा एं, न पास अंबड़ी दे बैहणा ए।‡
भा अंत बिछोड़ा सैह्णा ए, वस्स पएंगी सस्स ननाण कुड़े।

कत्त लै नी कुझ कता लै नी, हुण ताणी तंद उणा लै नी।
तूं आपणा दाज रंगा लै नी, तूं तद होवें परधान कुड़े।

जद घर बेगाने जावेंगी, मुड़ वत्त न ओथों आवेंगी।
ओथे जा के पछोतावेंगी, कुझ अगदों कर समयान कुड़े।§

अजे ऐडा तेरा कंम कुड़े, क्यों होई एं बे-ग़म कुड़े।
के कर लैणा उस दम कुड़े, जद घर आए महमान कुड़े।¶

जद सब सईयां टुर जाणगीआं, फिर ओथों मूल न आणगीआं।
आ चरखे मूल न डाह्णगीआं, तेरा त्रिंञण पया वीरान कुड़े।

कर माण न हुसन जवानी दा, परदेस न रैह्ण सीलानी दा।**
कोई दुनिया झूठी फ़ानी दा, न रहसी नाम निशान कुड़े।††

---

* **कार**=काम
† **भंडार**=त्रिंञण, जहाँ सखियाँ मिलकर कातती हैं।
‡ **अंबड़ी**=माता।
§ **कुझ...कुड़े**=वहाँ का सामान तैयार कर ले। **अगदों**=आगे, पहले से; **समयान**=सामान।
¶ जब मौत के दूत आ जायेंगे, उस समय कुछ न हो सकेगा।
** **सीलानी**=यात्री; यह देश आत्मा का वास्तविक देश नहीं है। यहाँ यात्री या व्यापारी की भाँति परमात्मा की भक्ति का व्यापार करने के लिए आयी है।
†† **फ़ानी**=नाशवान।

इक औखा वेला आवेगा, सब साक सैण भज जावेगा।
कर मदद पार लंघावेगा, ओह बुल्ले दा सुल्तान कुड़े।
(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 87)

की करदा नी की करदा नी

इस काफ़ी में आश्चर्य प्रकट करते हैं कि उस प्रभु के खेल न्यारे हैं। वह शरीर में आत्मा के साथ रहता हुआ भी छिपा रहता है और एक होकर भी अनेक रूपों में प्रकट होता रहता है:

की करदा नी की करदा नी,
कोई पुच्छो खां दिलबर की करदा।*

इकसे घर विच वसदयां रसदयां, नहीं हुंदा विच परदा।†
विच मसीत नमाज गुज़ारे, बुत्तखाने जा वड़दा।‡
कोई पुच्छो खां दिलबर की करदा।

आप इक्को कई लक्ख घरां दे, मालक सब घर घर दा।
जित वल वेखां उत्त वल ओहो, हर दी संगत करदा।
कोई पुच्छो खां दिलबर की करदा।

मूसा ते फ़रऔन बणा के, दो हो के क्यों लड़दा।§
हज़र नाज़र ओही हर थां, चूचक किस नूं खड़दा।¶
कोई पूच्छो खां दिलबर की करदा।

---

* वह प्रियतम अनेक तमाशे करता है।
† अन्दर रहता हुआ परदे के पीछे रहता है जो सही नहीं।
‡ मस्जिद में नमाज़ पढ़ने के बाद मन्दिर में चला जाता है।
§ हज़रत मूसा में भी वही था और उसके साथ लड़नेवाले अहंकारी बादशाह फ़रओन में भी वही था।
¶ **खड़दा**=ले जाना; हीर का पिता (चूचक) हीर को विष देने के लिए ले गया।

ऐसी नाज़ुक बात क्यों कैह्न्दा, न कह सकदा न जरदा।*
बुल्ला शौह दा इश्क़ बघेला, रत्त पींदा गोशत चरदा।†
कोई पुच्छो खां दिलबर की करदा।
(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 93)

की जाणां मैं कोई वे अड़या

इस काफ़ी में बहुत-से छोटे-छोटे भाव प्रकट किये गये हैं। आप कहते हैं कि आत्मा की अपनी कोई जाति नहीं है। जो इसके अन्दर बैठे परमात्मा की जाति है, वही इसकी जाति है और वह जाति प्रेम है। जो भी प्रेम करता है वह प्रेम का और प्रभु का रूप ही हो जाता है। इसलिए सांसारिक रहनी की सफ़ेद ओढ़नी उतारकर प्रभु के भक्तोंवाली लोई ओढ़ लेनी चाहिये ताकि आत्मा पर माया का दाग़ न लगे। जिसने प्रभु (अलिफ़) को पहचान लिया, संसार (बे) को पहचान लिया, उसे सच्चा ज्ञान (तलावत) मिल गया जिससे वह सन्तोषी और प्रभु का शुक्र करनेवाला (सादक, साबर) बन गया। इसके विपरीत जिसने अहं का राग अलापा, वह मारा गया: 'कू कू अंदर मोई।' प्रियतम वह क़साई है जो अहं की बकरी का गला काट देता है। आप कहते हैं कि मेरे मुर्शिद इनायत शाह ने मुझ पर दया करके मुझे प्रभु-प्रेम की मदिरा पिलाई है। इससे मेरे अन्दर ही प्रभु से मिलाप हो गया है और मुझे दूर जाकर उसे ढूँढ़ने की विपदा नहीं उठानी पड़ी:

की जाणां मैं कोई वे अड़या, की जाणां मैं कोई। टेक।
जो कोई अंदर बोले चाले, जात असाडी सोई।‡
जिस दे नाल मैं नेहों लगाया, ओहो जेही होई।§

---

* प्रेम की नाज़ुक बात न कही जाती है और न सहन की जाती है।
† उस प्रियतम का प्रेम बाघ की भाँति रक्त पीनेवाला और मांस खानेवाला है।
‡ परमात्मा की भाँति आत्मा की कोई जाति नहीं।
§ आत्मा परमात्मा से प्रेम करके उसका रूप हो गयी।

चिट्टी चादर लाह सुट कुड़ीए, पहन फ़क़ीरां दी लोई।*
चिट्टी चादर नूं दाग़ लगेगा, लोई नूं दाग़ न कोई।†

'अलिफ़' पछाता 'बे' पछाती, 'ते' तलावत होई।‡
'सीन' पछाता 'शीन' पछाता, सादक साबर होई।§

कू कू करदी कुमरी आही, गल विच तौक पयोई।¶
बस न करदी कू कू कोलों, कू कू अंदर मोई।**

जो कुझ करसी अल्ला भाणा, क्या कुझ करसी कोई।
जो कुझ लेख मत्थे दा लिखया, मैं उस ते शाकर होई।††

आशिक़ बकरी माशूक कसाई, मैं मैं करदी कोही।
ज्यों ज्यों मैं मैं बहुता करदी, त्यों त्यों मोई मोई।

बुल्ला शाह इनाइत करके, शौक शराब दित्तोई।‡‡
भला होया असीं दूरों छुट्टे, नेड़े आण लधोई।§§

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 98)

की बेदरदां संग यारी

इस काफ़ी में प्रियतम को ऐसा बेदर्दी कहा गया है जो प्रीति लगाकर प्रेमिका को विरह की अग्नि में जलने के लिए अकेली छोड़ जाता है। यह तो चिड़ियों की मृत्यु पर गँवारों की हँसी जैसी बात है। यह अपने हाथों विष का प्याला

* सांसारिक रहन-सहन छोड़कर प्रेमियोंवाला रहन-सहन अपना ले।
† सांसारिक मनुष्य माया की मार के नीचे होता है। फ़क़ीर इससे स्वतन्त्र होता है।
‡ **अलिफ़**=परमात्मा; **बे**=संसार; **तलावत**=ज्ञान।
§ **सादक**=सिदकवाला; **साबर**=सन्तोषी।
¶ **कुमरी**=घुग्गी जैसा पक्षी; **तौक**=ज़ंजीर, अर्थात् अहं या प्रदर्शन करनेवाले दुःख पाते हैं।
** **मोई**=मारी गयी
†† **शाकर**=शुक्र करनेवाला।
‡‡ **इनाइत**=दया-मेहर; **शौक...दित्तोई**=प्रेम की शराब पीने को दी।
§§ **लधोई**=ढूँढ़ लिया है।

पीने के समान है। यह ऐसा व्यापार है जिसमें दुःखों की गठरी के बिना और कुछ प्राप्त नहीं होता:

की बेदर्दां संग यारी, रोवण अक्खियां ज़ारो ज़ारी।
सानूं गए बेदर्दी छड्ड के, हिजरे सांग सीने विच गड के।*
जिस्मों जिंद नूं लै गए कढ के, एह गल्ल कर गए हैंसयारी।†

बेदर्दां दा की भरवासा, ख़ौफ़ नहीं दिल अंदर मासा।
चिड़ियां मौत गवारां हासा, मगरों हस हस ताड़ी मारी।

आवण कह गए फेर न आए, आवण दे सभ कौल भुलाए।‡
मैं भुल्ली भुल्ल नैण लगाए, केहे मिले सानूं ठग बपारी।

बुल्ले शाह इक सौदा कीता, पीता ज़हर प्याला पीता।
न कुझ नफ़ा न टोटा लीता, दर्द दुक्खां दी गठड़ी भारी।
की बेदर्दां संग यारी, रोवण अक्खियां ज़ारो ज़ारी।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 96)

कीहनूं ला-मकानी दसदे हो

इस काफ़ी में यह भाव प्रकट किया गया है कि स्वयं को निराकार और निर्लिप्त कहलानेवाला और सचखण्ड का वासी कहलानेवाला प्रभु वास्तव में सर्वव्यापक है। उसने स्वयं ही सृष्टि की रचना का हुक्म दिया और स्वयं ही सृष्टि के कण-कण में समा गया। उसने स्वयं प्रेम द्वारा रचना रची और स्वयं ही प्रेमी बनकर इसमें समा गया। वह स्वयं ही आदम बना और स्वयं ही स्वर्ग लोक से निकलकर मृत्यु लोक में आ गया। सुननेवाला और सुनानेवाला, गानेवाला और बजानेवाला और मूर्ख की भाँति संगीत से दूर

* **हिजरे सांग**=हिजर (वियोग) की बरछी।
† **हैंसयारी**=निर्दयी।
‡ **कौल**=वचन।

दौड़ जानेवाला अज्ञानी भी वह स्वयं है। वह स्वयं मंसूर बनकर 'मैं सत्य हूँ' का नारा लगाता है, स्वयं ही सूली पर चढ़ जाता है और स्वयं ही पास खड़े होकर हँसता है। नौशाबां की खोज में निकलनेवाला सिकन्दर भी वह है, ज़ुलैख़ा को सपने में दर्शन देकर उसका मन मोहनेवाला भी वह है और पैग़म्बर बनकर धर्म-ग्रन्थ लिखनेवाला भी वह स्वयं है। रोमी भी वह है, हब्शी भी वह है, टोपी पहननेवाला फिरंगी भी वह है, मधुशाला में मदमस्त होनेवाला भी वह है तथा स्त्री और पुरुष का रूप धारण करके आनेवाला भी वही है।

काफ़ी के अन्त में अपने सतगुरु की उपमा करते हुए साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि वह सच्चा ब्रह्मज्ञानी है, वह मेरे हृदय का स्वामी है। मैं लोहा हूँ और वह पारस है। वह मुझे स्पर्श करता है ताकि मैं भी लोहे से सोना और आत्मा से परमात्मा बन जाऊँ:

कीहनूं ला-मकानी दसदे हो,
तुसीं हर रंग दे विच वसदे हो।*

कुनफ़यीकून तैं आप कहाया, तैं बाझों होर केहड़ा आया।†
इश्कों सभ ज़हूर बणाया, आशिक़ हो के वसदे हो।‡

पुच्छो आदम किस ने आंदा ए, कित्थों आया कित्थे जांदा ए।
ओथे किस दा तैनूँ लांह्जा ए, ओत्थे खा दाणा उठ नसदे हो।§

आपे सुणें ते आप सुणावें, आपे गावें आप बजावें।
हत्थों कौल सरोद सुणावें, किते जाहल हो के नसदे हो।¶

---

* निराकार और निर्लिप्त परमात्मा ही सर्वव्यापक कर्तापुरुष है।

† **कुनफ़यीकून**=हो जा और हो गया।

‡ **ज़हूर**=दृश्यमान रचना।

§ **लांह्जा**=शर्म; परमात्मा ने आदम को हुक्म दिया हुआ था कि स्वर्ग के बाग़ के सब प्रकार के मेवे खाना परन्तु गेहूँ मत खाना। आदम और हव्वा ने शैतान के उकसाने पर गेहूँ खा लिया। इस आज्ञा का उल्लंघन करने के लिए उसे स्वर्ग से निकाल दिया गया।

¶ तू ही सरोद पर गानेवाला है और तू ही उस संगीत से दूर दौड़नेवाला है।

तेरी वहदत तूएं पुचावें, अनलहक़ दी तार हिलावें।*
सूली ते मनसूर चढ़ावें, ओथे कोल खलो के हसदे हो।†

जिवें सिकंदर तरफ़ नौशाबां, हो रसूल लै आया किताबां।‡
यूसफ़ हो के अंदर ख़ुआबां, ज़ुलेख़ा दा दिल खसदे हो।§

किते रूमी हो किते जंगी हो, किते टोपी-पोश फ़रंगी हो।¶
किते मै-ख़ाने विच भंगी हो, किते मेहर मैहरी बण वसदे हो।**

बुल्ला शौह 'इनाइत' आरफ़ है, ओह दिल मेरे दा वारस है।††
मैं लोहा ते ओह पारस है, तुसीं ओसे दे संग घसदे हो।‡‡

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 90)

केहे लारे देना एं सानूं

इस काफ़ी में कहते हैं कि प्रियतम मिलने के 'लारे' तो लगाता है परन्तु मिलता नहीं है। वह निकट होते हुए भी छिपा रहता है। सतगुरु बनकर झाँकता है परन्तु पकड़ने की कोशिश करने पर छिप जाता है। प्रेमिका सन्देशवाहक द्वारा सन्देश भेजती है कि हे प्रियतम, तेरी जुदाई दिन-रात मेरे हृदय को खा रही है। तू मुझे अपना मुख दिखाने के लिए और अधिक न तड़पा:

केहे लारे देना एं सानूं, दो घड़ियां मिल जाईं। टेक।
नेड़े वस्सें थां न दस्सें, ढूंडां कित वल जाहीं।§§

---

* **तेरी...पुचावें**=अद्वैत में तू स्वयं पहुँचाता है।

† स्वयं मंसूर से 'मैं ख़ुदा हूँ' का नारा लगवाता है और स्वयं ही उसे सूली पर चढ़ाता है।

‡ सिकन्दर मलका नौशाबां को लेने गया।

§ ज़ुलैख़ा स्वप्न में यूसुफ़ पर मोहित हो गयी थी।

¶ **जंगी**=हब्शी; **टोपी-पोश फ़रंगी**=हैट पहननेवाला यूरोपियन।

** **मै-ख़ाने**=मधुशाला; **मेहर**=पुरुष; **मैहरी**=स्त्री।

†† **आरफ़**=ब्रह्मज्ञानी; **वारस**=स्वामी।

‡‡ **घसदे**=स्पर्श।

§§ **ढूंडां...जाहीं**=कहाँ जाकर तुझे खोजूँ?

आपे झाती पाई अहमद, वेखां तां मुड़ नाहीं।*
आख गयों मुड़ आयों नाहीं, सीने दे विच भड़कण भाईं।†

इकसे घर विच वसदयां रसदयां, कित वल कूक सुणाईं।‡
पांधी जा मेरा देह सुनेहा, दिल दे ओह्ले लुकदा केहा।
नाम अल्ला दे न हो वैरी, मुख वेखन नूं न तरसाईं।§
बुल्ला शौह की लाया मैनूं, रात अद्धी है तेरी मैहमा।¶

औझड़ बेले सभ कोई डरदा, शौह ढूंडां मैं चाईं चाईं।**
केहे लारे देना एं सानूं, दो घड़ियां मिल जाईं।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात,* 91)

गुर जो चाहे सो करदा ए

इस काफ़ी में यह भाव प्रकट किया गया है कि गुरु वास्तव में प्रभु का रूप है। इसलिए वह सर्वशक्तिमान् है। गुरु के बिना जीव का अज्ञान दूर नहीं हो सकता। सतगुरु से मिलने पर पता चलता है कि वह प्रभु जो पहले गुप्त था, वही अपनी रचना में प्रकट हो गया। आत्मा परमात्मा की अंश है बल्कि परमात्मा स्वयं मनुष्य का वेश धारण करके संसार में आ जाता है। वह कहीं भक्त बन जाता है, कहीं शिष्य बन जाता है और कहीं गुरु और पैग़म्बर बन जाता है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि वह बहुरूपिया प्रभु जिसने संसार से अपना भेद छिपा रखा है मुझे अपने हृदय में ही मिल गया है। सच्ची

* **अहमद**=मुर्शिद; पहले दर्शन की झलक दी और फिर अपनी शक्ल छिपा ली।
† **भाईं**=अग्नि।
‡ एक ही घर में रहते हुए तुम नहीं मिलते, मैं यह शिकायत किससे करूँ?
§ **नाम...वैरी**=प्रभु के नाम का वास्ता है कि तू मेरा शत्रु न बन।
¶ पता नहीं प्रियतम ने मुझे क्या कर दिया है कि मैं आधी रात को भी उसी की महिमा का वर्णन करती हूँ।
** **औझड़**=जंगल-सुनसान, अर्थात् जिन स्थानों पर जाने से लोग डरते हैं, मैं चाव से तुझे वहाँ ढूँढ़ती हूँ।

बात तो यह है कि वह स्वयं ही मेरे अन्दर बैठकर अपने प्रेम का पाठ पढ़ा रहा है:

गुर जो चाहे सो करदा ए। टेक।
मेरे घर विच चोरी होई, सुत्ती रही न जगाया कोई।
मैं गुर फड़ सोझी होई, जो माल गया सो तरदा ए।*

पहले मख़फ़ी आप ख़ज़ाना सी, ओथे हैरत हैरतख़ाना सी।†
फिर वहदत दे विच आणा सी, कुल जुज़ दा मुज़मल परदा ए।‡

कुनफ़यीकून आवाज़ा देंदा, वहदत विच्चों कसरत लैंदा।§
पहन लिबास बंदा बण बैह्न्दा, कर बंदगी मसजद वड़दा ए।¶

रोज़ेमीसाक अलस्त सुणावे, कालूबला अशहद न चाहवे।**
फिर कुझ अपणा आप छुपावे, ओह गिण-गिण वसतां धरदा ए।

गुर अल्ला आप कहेंदा ए, गुर वली नबी हो बैह्न्दा ए।††
हर हर दे दिल विच रैह्न्दा ए, ओह खाली भांडे भरदा ए।

बुल्ला शौह नूं घर विच पाया, जिस सांगी ने सांग बनाया।
लोकां कोलों भेत छुपाया, ओह दरस पिरम दा पढ़दा ए।‡‡

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात,* 99)

* गुरु मिला तो पता चला कि पाँच विकार मेरे अन्दर नाम का अमृत पी रहे हैं।
† **मख़फ़ी**=गुप्त।
‡ **कुल**=परमात्मा; **जुज़**=अंश अर्थात् आत्मा; **मुज़मल**=छोटा, मामूली।
§ **कुनफ़यीकून**=हो जा (कुन) और हो गया (फ़यीकून); **वहदत**=एकता; **कसरत**=अनेकता।
¶ **लिबास**=पहरावा।
** **रोज़ेमीसाक**=इक़रारवाला दिन; **अलस्त**=*क़ुरान शरीफ़* की आयत है – अलस्त बिरब्बिकुम। परमात्मा ने आत्माओं से पूछा, "क्या मैं तुम्हारा नहीं हूँ?" **अशहद**=साक्षी। आत्माओं ने साक्षी दी – कालूबला अर्थात् "हाँ, तू ही हमारा परमात्मा है।"
†† **वली**=सन्त; **नबी**=पैग़म्बर।
‡‡ **दरस**=पाठ; **पिरम**=प्रेम।

घड़याली देओ निकाल नी

साईं बुल्लेशाह की अधिकतर काफ़ियों में विरह का वर्णन है। यह काफ़ी अपना उदाहरण आप है क्योंकि इसमें विरह की पीड़ा के स्थान पर मिलन के आनन्द का वर्णन किया गया है। वास्तव में यहाँ अन्तर में सतगुरु के नूरी स्वरूप के दर्शन होने और अनहद शब्द के प्रकट होने की अद्भुत रूहानी दशा का वर्णन किया गया है। काफ़ी में 'अज्ज पी घर आया लाल', 'हुण घर आया जानी', 'मुख वेखण दा अजब नज़ारा', और 'बुल्ला शाह दी सेज प्यारी' जैसे वर्णन इस बात का संकेत देते हैं कि साधक का हृदय में सतगुरु से मिलन हो गया है। इसी प्रकार काफ़ी में कहा गया है: 'अनहद वाजा वज्जे सुहाना'। आप संकेत करते हैं कि मेरे अन्दर अनहद शब्द का दैवी संगीत गूँज रहा है। इस संगीत को बहुत निपुण (सुघड़) संगीतकार (मुतरिब) अर्थात् वह प्रभु स्वयं बजा रहा है।

इस आनन्दमय अवस्था की प्राप्ति के बाद अभ्यासी एक पल भी इससे दूर नहीं होना चाहता। वह यह सहन नहीं कर सकता कि इतने प्रयत्नों और इतनी प्रतीक्षा के बाद प्राप्त हुई यह अवस्था छिन जाये। वह चाहता है कि समय थम जाये ताकि उसका अपने प्रियतम से मंगलमय मिलन सदा स्थिर रहे:

घड़याली देओ निकाल नी, अज्ज पी घर आया लाल नी।* टेक।
घड़ी घड़ी घड़याल बजावे, रैण वसल दी पया घटावे।†
मेरे मन दी बात जे पावे, हत्थों चा सट्टे घड़याल नी।

अनहद वाजा वज्जे सुहाना, मुतरिब सुघड़ां तान तराना।
नमाज़ रोज़ा भुल गया दुगाना, मध प्याला देण कलाल नी।‡

* घड़याल बजानेवाले को घर से निकाल दो क्योंकि वह समय के बीतने की सूचना देकर मुझे परेशान कर रहा है। आज मेरा प्रियतम (पी) घर आ गया है और मैं सदा उसके साथ रहना चाहती हूँ।

† **वसल**=मिलन।

‡ **दुगाना**=शुक्राने की नमाज़; **मध प्याला**=शराब का प्याला; **कलाल**=साक़ी अर्थात् सतगुरु। सतगुरु अनहद शब्द की अद्भुत मस्ती बाँट रहा है।

मुख वेखण दा अजब नज़ारा, दुक्ख दिले दा उठ गया सारा।
रैन वधे कुझ करो पसारा, दिन अग्गे धरो दीवाल नी।*

मैंनूं आपणी खबर न काई, क्या जाणां मैं कित व्याही।
एह गल्ल क्योंकर छपे छपाई, हुण होया फ़ज़ल कमाल नी।

टूणे कामन करे बथेरे, सेहरे आए वड वडेरे।†
हुण घर आया जानी मेरे, रहां लक्ख वरे एहदे नाल नी।

बुल्ला शाह दी सेज प्यारी, नी मैं तारनहारे तारी।
किवें किवें हुण आई वारी, हुण विछड़न होया मुहाल नी।‡

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 104)

घर में गंगा आई संतो

यह काफ़ी जितनी छोटी है उतनी ही भावमय है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि मेरे घर (शरीर) में शब्द और नाम की गंगा बहने लगी है, मुझे अन्तर में प्रभु के दर्शन हो गये हैं और इस रहस्य की भी प्राप्ति हो गयी है कि सतगुरु अनहद द्वार (सचखण्ड) का वह ग्वाला है जो योगी का रूप धारण करके आत्मारूपी हीर से प्रीति करने के लिए संसार में आता है। आप कहते हैं कि अन्तर में अनहद का अमर फल खाने से मुझे भी अमर जीवन की प्राप्ति हो गयी है:

घर में गंगा आई संतो, घर में गंगा आई।§
आपे मुरली आपे घनइया आपे जादू राई।¶

* रात को लम्बा कर दो। दिन के आगे दीवार खड़ी कर दो, अर्थात् ऐसे प्रयत्न करो कि मिलन की रात कभी समाप्त न हो।

† मैंने अनेक जादू-टोने (टूणे कामन) किये। बड़े-बड़े जादूगरों (सेहरे) को बुलाया। मैं चाहती हूँ कि बड़ी कठिनाई और बड़ी देर बाद घर आया प्रियतम लाखों वर्षों तक सदैव मेरे साथ रहे।

‡ **हुण...नी**=मेरा उससे बिछुड़ना कठिन है।

§ यहाँ आन्तरिक अमृतसर, मानसरोवर या रूहानी तीर्थ की ओर संकेत है।

¶ **घनइया**=घनश्याम, कृष्ण; जादू राई का अर्थ यादव वंशी अर्थात् श्रीकृष्ण हो सकता है।

आप गोबरीआ आप गडरिया आपे देत दिखाई।*
अनहद द्वार का आया गवरीआ कंगन दस्त चढ़ाई।
मूंड मुंडा मोहे प्रीती को रेन कंनां में पाई।
अमृत फल खा लिओ रे गोसाईं थोड़ी करो बडाई।
घर में गंगा आई संतो, घर में गंगा आई।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 103)

घुंघट चुक ओ सज्जणां वे

इस काफ़ी में साईं बुल्लेशाह अपने प्रियतम से कहते हैं कि तूने हमसे प्रीति लगाकर अपने मुख पर घूँघट क्यों डाल लिया है? पहले तूने नयनों का तीर चलाकर हमारे दिल को घायल कर दिया और अब अपने मुख पर आँचल डाल लिया है। तुझे चित्तचोर बनने की युक्ति किसने सिखायी? तूने प्रीति लगाकर हमारा मन हर लिया और फिर तड़पते रहने के लिए हमें अकेला छोड़ दिया। हमारी ही मूर्खता थी कि हमने ख़ुशी-ख़ुशी प्रेम का ज़हर-प्याला पी लिया। साईं जी अपने सतगुरु को सम्बोधित करके कहते हैं: मेरे प्रियतम, मैं अपनी प्रीति को वाणी नहीं दे सकती। मैं हर जगह तेरे मनमोहक रूप की तलाश कर रही हूँ। मैं अपनी प्रीति में दृढ़ रही हूँ। मैंने अपना वचन पूरा किया है। अब तू भी दया करके मुझे अपना प्यारा मुख दिखा दे:

घुंघट चुक ओ सज्जणां वे, हुण शरमां काहनूं रखीआं वे। टेक।
जुलफ़ कुंडल दा घेरा पाया, बिसीअर हो के डंग चलाया।†
वेख असां वल तरस न आया, कर के खूनी अक्खिआं वे।
घुंघट चुक ओ सज्जणां वे, हुण शरमां काहनूं रखीआं वे।

* **गोबरीआ**=गोवर्धन को उठानेवाले अर्थात् श्रीकृष्ण।
† **जुलफ़ कुंडल**=बालों का समूह; **बिसीअर**=साँप।

दो नैणां दा तीर चलाया, मैं आजज़ दे सीने लाया।*
घायल कर के मुख छुपाया, चोरियां एह किन दस्सीआं वे।
घुंघट चुक ओ सज्जणां वे, हुण शरमां काहनूं रखीआं वे।

बिरहों कटारी तूं कस के मारी, तद मैं होई बेदिल भारी।
मुड़ न लई तैं सार हमारी, पत्तियां तेरियां कच्चीआं वे।†
घुंघट चुक ओ सज्जणां वे, हुण शरमां काहनूं रखीआं वे।

नेहों लगा के मन हर लीता, फेर न अपणा दर्शन दीता।‡
ज़हर प्याला मैं आपे पीता, अकलों सी मैं कच्चीआं वे।§
घुंघट चुक ओ सज्जणां वे, हुण शरमां काहनूं रखीआं वे।

शाह इनाइत मुक्खों न बोलां, सूरत तेरी हर दिल टोलां।¶
साबत हो के फेर क्यों डोलां, अज्ज कौलों मैं सच्चीआं वे।**
घुंघट चुक ओ सज्जणां वे, हुण शरमां काहनूं रखीआं वे।

(अब्दुल मजीद भट्टी: *काफ़ियाँ बुल्लेशाह*, 22)

चलो देखिए उस मस्तानड़े नूं

इस काफ़ी में बुल्लेशाह अपने मुर्शिद इनायत शाह की महिमा का वर्णन करते हुए पूर्ण सतगुरु के गुणों का वर्णन करते हैं। आप कहते हैं कि परमार्थी सभाओं (त्रिंजणां) में सतगुरु के नाम की चर्चा है। सतगुरु जाति-पाँति की परवाह किये बिना अपनी शरण में आनेवाले प्राणियों को द्वैत से निकालकर

* **आजज़**=ग़रीब, बेचारे।
† **पत्तियां**=पत्र अर्थात् तेरे वायदे झूठे थे।
‡ प्यार करके मेरा मन मोह लिया, फिर अपना दीदार न दिया।
§ मैं अक़्ल की कच्ची थी, जिसने तेरे जैसे छलिया पर विश्वास करके प्रेम का ज़हर-प्याला पी लिया।
¶ **सूरत...टोलां**=मैं हर वजूद में तेरी सूरत ढूँढ़ रही हूँ।
** **साबत**=पक्की; **कौलों**=वायदे की; मैं अपने वायदे की पक्की रही हूँ, अब तू ही अपना वचन पूरा कर।

अद्वैत की मदिरा (मय) में रंग देता है। सतगुरु अन्तर में सुषुम्ना या शाहरग में पहुँचकर अपने आपको पहचानने (वफ़ीआ-नफ़ोसा कुम) और प्रभु को पहचानने की युक्ति सिखा देता है। सतगुरु संसार और शरीर के नौ द्वारों की झूठी और नश्वर दुनिया से मन और आत्मा को निकालकर उस अमर प्रभु के अमर धाम में पहुँचने का मार्ग दिखा देता है। जीते-जी मरने की इस अवस्था को प्राप्त करके संसार के सब झगड़े और झंझट व्यर्थ प्रतीत होने लगते हैं। कोई अपना या पराया नहीं रह जाता और हरएक के सिर पर एक ही प्रभु का हाथ दिखायी देने लगता है। आप कहते हैं कि जिनके अन्दर उस प्रभु के दर्शन की कामना जाग उठती है उन्हें अन्तर में ही उससे मिलने का मार्ग मिल जाता है:

चलो देखिए उस मस्तानड़े नूं, जिह्दी त्रिंञणां दे विच पई ए धुंम।
ओह ते मै वहदत विच रंगदा ए, नहीं पुछदा ज़ात दे की हो तुम।

जींह्दा शोर चुफ़ेरे पैंदा ए, ओह कोल तेरे नित रैह्न्दा ए।
नाले नाहन अक़रब कैह्न्दा ए, नाले आखे वफ़ीआ-नफ़ोसा कुम।*

छड्ड झूठ भरम दी बस्ती नूं, कर इश्क़ दी क़ायम मस्ती नूं।
गए पहुंच सज्जण दी हस्ती नूं, जेहड़े हो गए सुंम-बुकमुन-उम।

न तेरा ए न मेरा ए, जग फ़ानी झगड़ा झेड़ा ए।
बिना मुर्शिद रहबर केहड़ा ए, पढ़ फ़ाज़-करूनी-अज़-कुर-कुम।†

बुल्ले शाह एह बात इशारे दी, जिन्हां लग गई तांघ नज़ारे दी।
दस्स पैंदी घर वणजारे दी, है यदुउल्ला-फ़ौका-ऐदी-कुम।‡

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 55)

---

* **नाहन अक़रब**=*कुरान शरीफ़* की आयत जिसमें परमात्मा मनुष्य को कहता है कि मैं शाहरग से तेरे निकट हूँ। **वफ़ीआ-नफ़ोसा-कुम**=मुझे अपने आपमें देखें।

† **फ़ाज़-करूनी-अज़-कुर-कुम**=यह *कुरान शरीफ़* की आयत है जिसका अर्थ है कि सारी रचना उस ख़ुदा के हुक्म से हुई है।

‡ **यदुउल्ला-फ़ौका-ऐदी-कुम**=*कुरान शरीफ़* की आयत जिसका अर्थ है कि परमात्मा का हाथ सब हाथों से श्रेष्ठ है।

जिचर न इश्क़-मजाज़ी लागे

साईं बुल्लेशाह ने बहुत-सी काफ़ियों में मुर्शिद की महिमा का वर्णन किया है। इस काफ़ी में आप सतगुरु के देहस्वरूप के प्रेम की सुन्दर उपमा करते हैं। सूफ़ी साहित्य में इश्क़े-मजाज़ी की सहायता से इश्क़े-हक़ीक़ी तक पहुँचने की बात कही गयी है। मजाज़ का अर्थ 'देही' है तथा हक़ीक़त का अर्थ 'प्रभुरूपी सत्य' है। यहाँ साईं जी समझाते हैं कि प्रभु के प्रेम का भवन केवल सतगुरु के प्रेम की नींव पर ही खड़ा हो सकता है। आप कहते हैं कि देहस्वरूप सतगुरु का प्रेम वह सूई है जिसके बिना प्रभु-प्रेम का वस्त्र नहीं सिया जा सकता। देहस्वरूप सतगुरु का प्रेम ही प्रभु-प्रेम का सच्चा दाता है। वास्तव में यह प्रेम प्रभु-प्रेम का पिता और इसकी जननी है। आपका भाव है कि सतगुरु के प्रेम के बिना प्रभु का प्रेम जन्म ही नहीं ले सकता। आप यह भी समझाते हैं कि सतगुरु से प्रेम करनेवाले व्यक्ति को सहज में जीते-जी मरने की युक्ति प्राप्त हो जाती है, जिससे उस प्रभु का प्रकाश दिखायी देने लगता है। अधिक विस्तार के लिए पुस्तक का अध्याय: बन्धन मुक्ति का साधन देखिये:

जिचर न इश्क़-मजाज़ी लागे, सूई सीवे न बिन धागे।
इश्क़ मजाज़ी दाता है, जिस पिच्छे मस्त हो जाता है।

इश्क़ जिन्हां दी हड्डीं पैंदा, सोई नर जीवत मर जांदा।
इश्क़ पिता ते माता ए, जिस पिच्छे मस्त हो जाता ए।

आशिक़ दा तन सुकदा जाए, मैं खड़ी चंद पिर के साए।
वेख माशूकां खिड़ खिड़ हासे, इश्क़ बेताल पढ़ाता है।

जिस ते इश्क़ एह आया है, ओह बेबस कर दिखलाया है।
नशा रोम रोम में आया है, इस विच न रत्ती ओह्ला है।

हर तरफ़ दिसेंदा मौला है, बुल्ला आशिक़ वी हुण तरदा है।
जिस फ़िकर पिया दे घर दा है, रब्ब मिलदा वेख उधरदा है।
मन अंदर होया झाता है, जिस पिच्छे मस्त हो जाता है।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 50)

जिस तन लगया इश्क़ कमाल

इस काफ़ी में कहते हैं कि जिसके अन्दर प्रभु का सच्चा प्रेम पैदा हो जाता है, वह ऐसी आनन्दमय मस्ती को प्राप्त कर लेता है जिसमें उसे अपनी या संसार की सुध-बुध नहीं रहती। जिसे प्रभु के दरबार से सच्चे प्रेम का प्रमाण-पत्र मिल जाता है, उसके सब संशय, भ्रम और प्रश्नोत्तर समाप्त हो जाते हैं। जिसे अन्तर में प्रियतम मिल जाता है उसे हर ओर प्रियतम ही प्रियतम दिखायी देता है। ऐसे रसमग्न व्यक्ति को किसी बहिर्मुखी संगीत की आवश्यकता नहीं रहती। उसके अपने अन्तर में ही दैवी संगीत की ध्वनियाँ गूँजती रहती हैं:

जिस तन लगया इश्क़ कमाल, नाचे बेसुर ते बेताल।* टेक।
दर्दमंदां नूं कोई न छेड़े, जिसने आपे दुक्ख सहेड़े।†
जंमणा जिऊणां मूल उखेड़े, बूझे अपना आप ख़याल।‡
जिस तन लगया इश्क़ कमाल, नाचे बेसुर ते बेताल।

जिस ने वेस इश्क़ दा कीता, धुर दरबारों फ़तवा लीता।§
जदों हज़ूरों प्याला पीता, कुझ न रिहा सवाल जवाब।
जिस तन लगया इश्क़ कमाल, नाचे बेसुर ते बेताल।

जिसदे अंदर वसया यार, उठया यारो यार पुकार।
न ओह चाहे राग न तार, ऐवें बैठा खेडे हाल।¶
जिस तन लगया इश्क़ कमाल, नाचे बेसुर ते बेताल।

---

* **कमाल**=पूर्ण; जिसका प्रेम पूर्णता को पहुँच गया, उसके अन्दर इलाही मस्ती पैदा हो गयी।

† सच्चे आशिक़ स्वयं इश्क़ के दुःख उत्पन्न करते हैं।

‡ **मूल**=जड़; परमात्मा के सच्चे प्रेमी जन्म-मरण की जड़ उखाड़ देते हैं। वे आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाते हैं।

§ डॉ. नज़ीर अहमद लिखते हैं कि जिसने प्रेमी का बाना पहन लिया, उसने इश्क़ के शाहंशाह (कृपालु प्रभु) के हाथों प्रेम का प्याला पी लिया। वह सांसारिक तौर-तरीक़ों से बे-निआज़ हो गया।

¶ जब अन्तर में प्रभु के शब्द की ध्वनि गूँजने लगी तो बाहरी नाच-गाने व्यर्थ हो गये। उच्च श्रेणी के सूफ़ी बाहरी राग-रंग के विरोधी थे।

बुल्लया शौह नगर सच पाया, झूठा रौला सब मुकाया।*
सच्चयां कारन सच्च सुणाया, पाया उसदा पाक जमाल।†
जिस तन लगया इश्क़ कमाल, नाचे बेसुर ते बेताल।

(नज़ीर अहमद: *कलाम बुल्लेशाह*, 27)

जो रंग रंगया गूढ़ा रंगया

प्रस्तुत काफ़ी में अन्दर प्राप्त होनेवाले रूहानी अनुभव के सम्बन्ध में सूक्ष्म संकेत दिये गये हैं। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि सतगुरु शिष्य की आत्मा प्रभु या नाम के 'गूढ़े' (पक्के) रंग में रँग देते हैं। सतगुरु के मिलने से पता चल जाता है कि अहं को दूर करके आत्मा स्वयं परमात्मा बन सकती है। जब सतगुरु के उपदेश पर चलते हुए जीते-जी मरने की अवस्था प्राप्त हो जाती है तो अन्तर में अनहद शब्द का प्रकाश दिखायी देने लगता है और इसकी रसमय ध्वनियाँ सुनायी देने लगती हैं। इस अभ्यास द्वारा अन्तर में प्रभु सामने दिखायी देने लगता है:

जो रंग रंगया गूढ़ा रंगया,
मुर्शिद वाली लाली ओ यार।
अहद विच्चों अहमद होया,
विच्चों मीम निकाली ओ यार।‡
दूरें मआनी दी धूम मची है,
नैणां तों घुंड उठालीं ओ यार।§

---

* **शौह नगर**=मुक़ामे-हक़, सचखण्ड।

† **पाक जमाल**=पवित्र नूर; प्रियतम का नूर देखा तो संसार के सब शोर झूठे लगने लगे।

‡ **अहद**=एक परमात्मा; **अहमद**=सतगुरु; परमात्मा से रसूल पैदा हुआ। अहं या मन-माया 'मीम' दूर करने से आत्मा स्वयं परमात्मा बन जाती है।

§ इन गम्भीर रूहानी रहस्यों की धूम मची हुई है। आँखों से परदा उठाकर आन्तरिक सत्य को देखने का प्रयत्न करो।

'सूराह यासीन' मुज़म्मल वाला,
बदलां गरज संभाली ओ यार।*
ज़ुलफ़ स्याह दे विच यद-बेज़ा,
दे चमकार विखाली ओ यार।

मूतू क़बलंता मूतू होया,
मोयां नूं फेर जवाली ओ यार।
बुल्ला शौह मेरे घर आया,
कर कर नाच वखाली ओ यार।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 53)

टुक बूझ कौण छप आया ए

इस काफ़ी में कई सुन्दर भाव प्रकट किये गये हैं। साईं जी कहते हैं कि जो प्रेम का दु:ख नहीं सहन कर सकता, वह प्रियतम की नगरी में भी नहीं पहुँच सकता और जिसने प्रभु से प्रेम नहीं किया, उसका जन्म लेना व्यर्थ है। आप कहते हैं कि सच्चा ख़ज़ाना प्रभु का नाम है जो उस मालिक ने हरएक के अन्दर रखा हुआ है। जो कोई द्वैत का आवरण दूर कर लेता है, उसे न कोई हिन्दू दिखायी देता है और न कोई मुसलमान। उसे सभी में एक ही प्रभु समाया हुआ दिखायी देता है। जो लोग प्रभु और उसके नाम से प्रेम नहीं करते, वे अज्ञानी हैं और सोये हुए हैं। जब वे अन्त समय अज्ञान की निद्रा से जाग उठेंगे तो उन्हें पता चलेगा कि हमने अपना मनुष्य-जन्म व्यर्थ खो दिया:

टुक बूझ कौण छप आया ए,
किसे भेखी भेख वटाया ए।† टेक।

* **'सूराह यासीन'**=*कुरान शरीफ़* की एक आयत; **मुज़म्मल**=गुप्त, रहस्यमयी; गुप्त रूहानी रहस्यों को प्रकट किया गया है। अन्तर के अनहद शब्द की ओर संकेत करते हैं।

† थोड़ा पहचान करें कि यह कौन भेखी भेख धारण करके आया है? परमात्मा के मुर्शिद रूप में प्रकट होने की ओर संकेत है।

जिस ना दर्द दी बात कही, उस प्रेम नगर ना झात पई।*
ओह डुब मोई सभ घात गई, उस क्यों चंदरी ने जाया ए।†
टुक बूझ कौण छप आया ए।

मानिंद पलास बणायो ई, मेरी सूरत चा लखायो ई।
मुख काला कर दिखलायो ई, क्या स्याही रंग लखाया ए।‡
टुक बूझ कौण छप आया ए।

इक रब्ब दा ना ख़ज़ाना ए, संग चोरां यारां दानां ए।§
ओह रहमत दा खसमाना ए, संग ख़ौफ़ रकीब बनाया ए।¶
टुक बूझ कौण छप आया ए।

दूई दूर करो कोई शोर नहीं, एह तुरक हिंदू कोई होर नहीं।
सब साध कहो कोई चोर नहीं, हर घट विच आप समाया ए।
टुक बूझ कौण छप आया ए।

ऐवें किस्से काहनूं घड़ना एं, ते गुलसतां, बोसतां पढ़ना ए।**
ऐवें बेमूजब क्यों लड़ना एं, किस उलटा वेद पढ़ाया ए।††
टुक बूझ कौण छप आया ए।

* जिसने दर्द न सहा, वह प्रेम नगर में झाँक न सका।

† वह जीवित मृत है, उसकी निर्दयी माँ ने उसे क्यों जन्म दिया?

‡ तूने मुझे कपड़े के तम्बू की भाँति बनाया। फिर उस तम्बू पर मेरी शक्ल गहरे काले रंग में बनायी। इससे आपकी नम्रता प्रकट होती है। बाबा फ़रीद ने भी कहा था:

फरीदा काले मैडे कपड़े काला मैडा वेसु॥
गुनही भरिआ मै फिरा लोकु कहै दरवेसु॥

(फ़रीद – आदि ग्रन्थ, पृ. 1381)

§ **दानां**=समझदार।

¶ **रहमत...खसमाना**=परमात्मा की दया से मिला ख़ज़ाना; **रकीब**=शत्रु। परमात्मा का नाम एक सच्चा ख़ज़ाना है। वह चोरों, यारों और समझदारों के अन्दर भी है। वह उसकी दया से मिलता है। काल या शैतान-रूप शत्रु भी जीव के साथ ही लाया गया है जो जीव को इस ख़ज़ाने से दूर रखने का प्रयत्न करता है।

** **गुलसतां, बोसतां**=फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि शेख़ सादी की उपदेश-भरी पुस्तकें।

†† **बेमूजब**=व्यर्थ; **उलटा वेद**=पंजाबी का मुहावरा है। इसका अर्थ उलटा ज्ञान है। आप बाहरी उपदेशों और कर्मकाण्ड को थोथे क़िस्से और उलटा वेद कहते हैं।

शरीअत साडी दाई ए, तरीक़त साडी माई ए।*
अग्गों हक हक़ीक़त आई ए, अते मारफ़तों कुझ पाया ए।†
टुक बूझ कौण छप आया ए।

है विरली बात बतावण दी, तुसीं समझो दिल ते लावण दी।
कोई गत्त दस्सो इस बावण दी, एह काहनूं भेत बणाया ए।‡
टुक बूझ कौण छप आया ए।

एह पढ़ना इल्म ज़रूर होया, पर दसना न मंज़ूर होया।
जिस दस्सया सो मनसूर होया, उस सूली पकड़ चढ़ाया ए।§
टुक बूझ कौण छप आया ए।

मैं न कसब न फ़िकर तमीज़ कीता, दुख तन आरफ़ बायज़ीद कीता।¶
कर ज़ुहद किताब मजीद कीता, किसे बे-मेहनत न पाया ए।**
टुक बूझ कौण छप आया ए।

इस दुख से किचरक भागेंगा, रहें सुता कद तूं जागेंगा।††
फेर उठदा रोवण लागेंगा, किसे ग़फ़लत मार सुलाया ए।‡‡
टुक बूझ कौण छप आया ए।

---

* **शरीअत**=कर्मकाण्ड; **तरीक़त**=सदाचारिक शिक्षा।

† **हक़ीक़त**=परमात्मा के मिलाप की उच्चतम रूहानी अवस्था; **मारफ़तों**=रूहानी अभ्यास से प्राप्त हुए आन्तरिक भेद।

‡ **बावण दी गत्त**=कर्ता का भेद। **एह...ए**=आप बतायें कि उसने यह भेद क्यों बताया है?

§ परमात्मा का भेद पाना आवश्यक है, परन्तु जो इसको प्रकट करने का प्रयत्न करता है, मंसूर की भाँति सूली पर चढ़ाया जाता है।

¶ **कसब**=पेशा, जाँच; **तमीज़**=पहचान, सूझ; **आरफ़**=ब्रह्मज्ञानी; **बायज़ीद**=एक महान् सूफ़ी फ़क़ीर।

** **ज़ुहद**=तप; **किताब मजीद**=पवित्र पुस्तक *क़ुरान शरीफ़*। मैंने न परिश्रम किया और न ही सोच और विवेक या बुद्धि से काम लिया। बायजीद को तसीहे (कष्ट) ज़रूर सहन करने पड़े परन्तु अन्त में वह ब्रह्मज्ञानी बन गया। उसका तन पवित्र पुस्तक का रूप बन गया अर्थात् उसने अपने आपको *क़ुरान शरीफ़* के रूहानी उपदेश का रूप बना लिया। किसी को भी बिना परिश्रम के कुछ नहीं मिला।

†† **किचरक**=कितनी देर तक। तू मेहनत (भक्ति) करने से कब तक दौड़ेगा? तू ग़फ़लत की नींद में सोया रहेगा?

‡‡ जब होश आयेगी तो रोयेगा, पछतायेगा।

ग़ैन ऐन दी सूरत ठहरा, इक नुक़ते दा है फ़रक पड़ा।*
जो नुक़ता दिल थीं दूर करा, फिर ग़ैन वा ऐन जताया ए।†
टुक बूझ कौण छप आया ए।

जेहड़ा मन विच लग्गा दूआ रे, एह कौण कहे मैं मूआ रे।‡
तन सभ इनायत हूआ रे, फिर बुल्ला नाम धराया ए।§
टुक बूझ कौण छप आया ए।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 48)

ढिलक गई मेरे चरखे दी हत्थी

इस काफ़ी में उस साधक या अभ्यासी (आत्मा) के मन की दशा का वर्णन करते हैं जो सतगुरु का वियोग सहन नहीं कर सकता। उसको रूहानी अभ्यास रूखा लगता है: 'चमड़यां उत्ते चौपड़ नाहीं।' कई फ़क़ीरों ने रूहानी अभ्यास की 'अलूणी सिल' चाटने से उपमा दी है। काफ़ी में 'कत्तया मूल न जावे' की आवाज़ गूँजती है और काते न जा सकने के अनेक कारणों का वर्णन इस ध्वनि को ऊँचा उठाता है। दूसरी ओर 'कौण लुहार लयावे', 'तकले तों वल लाहीं लुहारा', 'मैनूं प्यारा मुख दिखलावे', 'माही छिड़ गया नाल महीं दे', 'जित्त वल यार उत्ते वल अक्खियां', 'बिरहों ढोल बजावे' और 'मैनूं शौह गल लावे' की ध्वनि निरन्तर ऊँची होती जाती है। इस प्रकार सतगुरु की सहायता से प्रभु-प्रेम में पूर्णता प्राप्त करने की बात कही गयी है। उदाहरण यहाँ भी चरख़ा कातने से लिया गया है जिससे मतलब भक्ति करने से है। आप कहते हैं कि कातने और मुढ्ढा (छल्ली) उतारने (अभ्यास में सफलता) के लिए लुहार (सतगुरु) आवश्यक है। यदि वह स्वयं आकर

---

* **ग़ैन**=दूसरा, पराया; **ऐन**=परमात्मा, अपना; परमात्मा और रचना, अपने और पराये का अन्तर, द्वैतवाली दृष्टि के कारण है।

† दुई दूर हो जाये तो पराया अपना बन जाये; आत्मा परमात्मा बन जाये।

‡ जब तक मन से दुई का नाश नहीं होता, यह नहीं कह सकते कि अहं का नाश हो गया।

§ जब अहं का नाश हो गया तो तन, मन इनायत शाह (सतगुरु) का रूप बन गया।

गले लगा ले तो कातने की क्या आवश्यकता है? रूहानी साधना भी मुर्शिद की दया से सम्भव है और सतगुरु की दया सैकड़ों वर्षों की भक्ति से अच्छी है। भक्ति आवश्यक है परन्तु न भक्ति और न ही प्राप्ति अपने वश में है। रूहानी उन्नति का आधार शुष्क अभ्यास नहीं, सच्चा प्रेम, सच्ची तड़प और सतगुरु की दया है। अभ्यासी नम्र होकर कहता है कि हे प्रियतम, मेरी करनी (कातना) पूरी हो जाये (सै मनां दा कत्त लेआ), यदि तू दया करके मुझे अपने अन्दर मिला ले:

ढिलक गई मेरे चरखे दी हत्थी, कत्तया मूल न जावे।
तकले नूं वल पै पै जांदे, कौण लुहार लयावे।*

तकले तों वल लाहीं लुहारा, तंदी टुट टुट जावे।
घड़ी घड़ी एह झोले खांदा, छल्ली इक न लाह्वे।†

पीता नहीं जो बीड़ी बन्हां, बायड़ हत्थ न आवे।‡
चमड़यां उत्ते चोपड़ नाहीं, माल्ह पई बरड़ावे।§

दिन चढ़या कद गुजरे, मैंनूं प्यारा मुख दिखलावे।
माही छिड़ गया नाल महीं दे, हुण कत्तण किस नूं भावे।¶

---

* **तंदी**=सूत; सुरत का सूत या सिमरन और ध्यान में लिव लगना।

† **छल्ली**=मुद्दा; अन्दर रूहानी तरक़्क़ी होना।

‡ **बायड़**=चरख़े के बड़े पहिये।

§ **चमड़यां**=चमड़े के टुकड़े जिनमें से तकला निकलता है; **चोपड़**=तेल; हत्थी का ढिलकना, **तकले...लयावे**=मन का अभ्यास में न लगना; चरख़े का झोले खाना, चमड़ियों का ख़ुश्क होना और माल्ह का बरड़ाउणा, भजन-सिमरन या रूहानी अभ्यास में आनेवाली कठिनाइयों की ओर संकेत है। अभ्यास में आनेवाली सब रुकावटें दूर करना पूर्ण सतगुरु का काम है। भजन-सिमरन के अभ्यास के नीरस या ख़ुश्क होने की ओर संकेत है।

¶ **माही...महीं दे**=भैंसें चराने गया चाक (पति) रात को घर लौटता है। दूसरी आत्माओं की ओर गया सतगुरु रात को अभ्यास में अन्दर दर्शन देता है। सूफ़ी दरवेशों ने दिन के शीघ्र व्यतीत होने के लिए विनती की है क्योंकि रात को अभ्यास में सतगुरु के नूरी स्वरूप से मिलाप किया जा सकता है।

जित्त वल यार उत्ते वल अक्खियां, मेरा दिल बेले वल धावे।
त्रिंञण कत्तण सद्दन सइयां, बिरहों ढोल बजावे।*

अरज़ एहो मैंनूं आण मिले हुण, कौण वसीला जावे।
सै मणां दा कत्त लेआ बुल्लया, मैंनूं शौह गल लावे।

(नज़ीर मुहम्मद: *कलाम बुल्लेशाह*, 37)

ढोला आदमी बण आया

इस काफ़ी में साईं बुल्लेशाह ने अपना मनपसन्द विषय चुना है कि वह प्रभु ही नाना रूप धारण करके संसार में आता है। वह स्वयं ही हिरन है और स्वयं ही उसे मारनेवाला चीता है, स्वयं ही सेवक है और स्वयं ही स्वामी है। वह कभी शहंशाह बनकर हाथी पर सवारी करता है और कभी ख़ाली बर्तन लाठी पर टाँगकर द्वार-द्वार पर भीख माँगता है। कभी त्यागी का स्वाँग भरता है तो कभी गृहस्थी का। आप कहते हैं कि मैं उस मुर्शिद पर क़ुर्बान जाता हूँ जिसने मुझे इस रहस्य को समझने की सामर्थ्य प्रदान की है। हाबील और काबील आदम के पुत्र माने जाते हैं। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि जब आदम नहीं था अर्थात् सृष्टि की रचना नहीं हुई थी, मैं तब भी विद्यमान था। आपका कथन है कि आदम सृष्टि का वडेरा (दादा) है, परन्तु मैं आदम का भी दादा हूँ। बहुत-से सन्तों ने दावा किया है कि सृष्टि की रचना से पहले भी वे विद्यमान थे। इसका भी यही भाव है कि सतगुरु प्रभु-रूप होता है:

ढोला आदमी बण आया। टेक।†
आपे आहू आपे चीता, आपे मारन धाया।

---

* **त्रिंञण**=सत्संगियों का मिलकर अभ्यास या सत्संग करना। प्रियतम के वियोग में कातना अच्छा नहीं लगता; बार-बार ध्यान प्यारे की ओर जाता है और विरह की पीड़ा रहती है: **'बिरहों ढोल बजावे'**।

† कुछ विद्वानों ने पाठ 'मौला आदमी बण आया' दिया है। आप कहते हैं कि परमात्मा सतगुरु का रूप धारण करके आता है और अपने आपको अपनी रचना द्वारा प्रकट करता है।

आपे साहिब आपे बरदा, आपे मुल्ल विकाया।
ढोला आदमी बण आया।

कदी हाथी ते असवार होया, कदी ठूठा डांग भवाया।
कदी रावल जोगी भोगी हो के, सांगी सांग बणाया।
ढोला आदमी बण आया।

बाज़ीगर क्या बाज़ी खेली, मैंनूं पुतली वांग नचाया।
मैं उस पड़ताली नचना हां, जिस गतमित यार लखाया।
ढोला आदमी बण आया।

हाबील काबील आदम दे जाए, आदम किस दा जाया।
बुल्ला ओन्हां तों वी अग्गों आहा, दादा गोद खिडाया।
ढोला आदमी बण आया।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 60)

तूहियों हैं मैं नाहीं वे सज्जणां

इस काफ़ी में उस उच्च आध्यात्मिक अवस्था का वर्णन किया गया है जिसमें अभ्यासी के अहं का नाश हो जाता है और उसे हर ओर प्रभु ही प्रभु दिखायी देता है। साईं जी कहते हैं कि जैसे कुएँ की परछाईं कुएँ में ही रहती है, उसी प्रकार प्रभु मेरे अन्तर में समाया हुआ है। मेरे हर कार्य में वह स्वयं स्थित है। जो कुछ करता है, वह स्वयं करता है और मैं कुछ भी नहीं करता।

बहुत-से स्थानों पर पाठ 'खोले दे परछावें' दिया गया है परन्तु 'खूहे दे परछावें' अधिक उचित प्रतीत होता है:

तूहियों हैं मैं नाहीं वे सज्जणां, तूहियों हैं मैं नाहीं।*
खूहे दे परछावें वांगू, घुम रिहा मन माहीं।

* इस काफ़ी में फ़ना-फ़ि-अल्लाह की अवस्था का सुन्दर वर्णन है। कई स्थानों पर वाणी 'तू नहियों मैं नाहीं वे सज्जणां' दी गयी है परन्तु डॉ. नज़ीर अहमद द्वारा दिया गया पाठ 'तूहियों हैं मैं नाहीं वे सज्जणां' प्रमाणिक है।

जां बोलां तूं नाले बोलें, चुप्प रह्वां मन माहीं।*
जे सौवां ते नाले सौवें, जे तुरां तूं राहीं।

बुल्ला शौह घर आया मेरे, जिंदड़ी घोल घुमाईं।
तूहियों हैं मैं नाहीं वे सज्जणा, तूहियों हैं मैं नाहीं।

(नज़ीर अहमद: *कलाम बुल्लेशाह*, 25)

तेरे इश्क़ नचाइआं

कहा जाता है कि यह काफ़ी साईं बुल्लेशाह ने अपने रूठे हुए मुर्शिद को मनाने के लिए लिखी थी। आप मुर्शिद से कहते हैं कि तेरे वियोग ने मुझसे अनोखा नाच नचवाया है। तेरा प्रेम मेरे लिए एक रोग बन गया है। तू ही वह वैद्य (तबीब) है जो इसका इलाज कर सकता है। तू ही मेरा काबा है और तू ही मेरा क़िबला है। काफ़ी के अन्त में आप मुर्शिद के प्रति अपना आभार प्रकट करते हुए कहते हैं कि उस प्रभु ने स्वयं दया करके मुझे ऐसे मुर्शिद से मिलाया जिसने मुझे आध्यात्मिकता के अनूठे रंग में रँग दिया:

तेरे इश्क़ नचाइआं कर थइआ थइआ। टेक।
तेरे इश्क़ ने डेरा मेरे अंदर कीता।
भर के ज़हर प्याला मैं तां आपे पीता।
झबदे बहुड़ीं वे तबीबा नहीं ते मैं मर गइआं।†
तेरे इश्क़ नचाइआं कर थइआ थइआ।

छुप गया वे सूरज बाहर रह गई आ लाली।
वे मैं सदके होवां देवें मुड़ जे वखाली।
पीरा मैं भुल गइआं तेरे नाल न गइआं।
तेरे इश्क़ नचाइआं कर थइआ थइआ।

* मेरे बोलने के समय तू ही बोलता है; चुप रहूँ तो तू मन में रहता है।

† **झबदे बहुड़ीं**=तू जल्दी आ, तेरा वियोग मेरे लिए विष है। तेरा दर्शन मेरे रोग की दवा है।

एस इश्क़े दे कोलों मैनूं हटक न माए।*
लाहू जांदड़े बेड़े केहड़ा मोड़ लिआवे।†
मेरी अकल जो भुल्ली नाल मुहाणयां दे गइआं।‡
तेरे इश्क़ नचाइआं कर थइआ थइआ।

एसे इश्क़ दी झंगी विच मोर बुलेंदा।
सानूं किबला ते काअबा सोहणा यार दखेंदा।
सानूं घायल करके फिर ख़बर न लइआ।
तेरे इश्क़ नचाइआं कर थइआ थइआ।

बुल्ला शौह ने आंदा मैनूं इनाइत दे बूहे।§
जिस ने मैनूं पवाए चोले सावे ते सूहे।
जां मैं मारी है अड्डी मिल पया है वहीआ।¶
तेरे इश्क़ नचाइआं कर थइआ थइआ।

(नज़ीर अहमद: *कलाम बुल्लेशाह*, 26)

दिल लोचे माही यार नूं

इस काफ़ी में विरहिणी की प्रियतम के साथ मिलन की प्रबल इच्छा प्रकट की गयी है। वह ईर्ष्या करती है कि दूसरी सखियाँ प्रियतम से हँस-

* **हटक न**=न रोक।

† **लाहू जांदड़े**=तेज़ चले जाते।

‡ मेरी मति मारी गयी जो मैंने मुहाणयां (मुर्शिद) पर भरोसा करके प्यार का मार्ग पकड़ लिया। यहाँ व्यंग्यात्मक वर्णन है क्योंकि सूफ़ी मुहाणयां के साथ जाने को भूल नहीं कह सकता।

§ मुझे परमात्मा स्वयं इनायत (मुर्शिद की दया) के दरवाज़े पर लाया। मुर्शिद ने प्रेम या रूहानियत के सुन्दर आभूषण पहनाकर माही (प्रियतम) से मिला दिया।

¶ **वहीआ**=वहीआ का अर्थ स्पष्ट नहीं है। वहीआ का अर्थ 'वही' भी हो सकता है और वहीवाला या दैवी भेद जाननेवाला अर्थात् परमात्मा का रूप आरिफ़ (मुर्शिद)भी हो सकता है।

हँसकर बातें करती हैं पर मेरा समय रोने-धोने में व्यतीत होता है। वह कहती है कि मैंने सब हार-शृंगार किये परन्तु प्रियतम के हृदय में कोई ऐसी गाँठ पड़ गयी कि उसने मेरी ओर ध्यान ही नहीं दिया। शत्रुओं ने उसका मन मेरी ओर से मोड़ दिया है जिसके कारण मैं चारों ओर से दु:खों में घिर गयी हूँ। काफ़ी के अन्त में संकेत करते हैं कि जब प्रियतम मेरे घर आ गया तो मैं उससे लिपट गयी और मेरे सारे दु:खों का नाश हो गया:

दिल लोचे माही यार नूं।
इक हस हस गल्लां करदियां, इक रोंदियां धोंदियां मरदियां।
कहो फुल्ली बसंत बहार नूं, दिल लोचे माही यार नूं।*

मैं न्हाती धोती रह गई, इक गंढ माही दिल बह गई।
भाह लाईए हार शिंगार नूं, दिल लोचे माही यार नूं।†

मैं कमली कीती दूतियां, दुख घेर चुफेरों लीतियां।‡
घर आ माही दीदार नूं, दिल लोचे माही यार नूं।

बुल्ला शौह मेरे घर आया, मैं घुट रांझण गल लाया।
दुख गए समुंदर पार नूं, दिल लोचे माही यार नूं।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 59)

न जीवां महाराज

इस काफ़ी के आरम्भ में साईं बुल्लेशाह सतगुरु के वियोग की पीड़ा का और काफ़ी के अन्त में सतगुरु से मिलाप के आनन्द का वर्णन करते हैं। विरहिणी का तपता हुआ हृदय केवल प्रियतम के दर्शन से ही शान्त हो सकता है:

* **फुल्ली**=खिली हुई।

† **भाह**=आग।

‡ **दूतियां**=शत्रु; **दुख...लीतियां**=दु:खों ने चारों ओर से घेर लिया है।

न जीवां महाराज, मैं तेरे बिण न जीवां।*
इन्हां सुक्कयां फुल्लां विच बास नहीं।†
परदेस गयां दी कोई आस नहीं।
जेहड़े साईं साजण साडे पास नहीं।
न जीवां महाराज...

तूं की सुत्ता एं चादर ताण के।
सिर मौत खलोती तेरे आण के।
कोई अमल न कीता जाण के।‡
न जीवां महाराज...

की मैं खट्टया तेरी हो के।§
दोवें नैण गवाय रो के।
तेरा नाम लइए मुख धो के।
न जीवां महाराज...

बुल्ले शौह बदेसों औंदा।
हत्थ कंगणा ते बाहीं लटकौंदा।¶
सिर सदका तेरे नाओं दा।
न जीवां महाराज...

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात,* 138)

* हे प्रियतम! मैं तेरे बिना जीवित नहीं रह सकती।
† **बास**=सुगन्ध; विरहिणी को प्रियतम के बिना संसार में कोई वस्तु नहीं भाती।
‡ **जाण के**=समझकर।
§ **खट्टया**=कमाया।
¶ **बाहीं**=बाँह; यहाँ संकेत इनायत शाह के आने की ओर है।

नी कुटीचल मेरा नां

इस काफ़ी में विद्या तथा प्रेम की तुलना की गयी है। 'कुटीचल' उस ढीठ छात्र को कहते हैं जो अध्यापक द्वारा पीटे जाने पर भी पढ़ने में रुचि नहीं रखता। साईं जी कहते हैं कि मुल्ला मुझे शरीअत अथवा कर्मकाण्ड की शिक्षा देना चाहता है पर मेरी यह अवस्था है कि मुझे अलिफ़ अथवा प्रभु और प्रभु-प्रेम के एक अक्षर के बिना दूसरी कोई बात याद नहीं होती। मुल्ला मुझे कुटीचल कहकर मारता है परन्तु मैं प्रेम का पाठ छोड़कर कोई दूसरा पाठ नहीं पढ़ सकता। मेरे माता-पिता और मित्र-सम्बन्धी भी मुझे कोसते हैं परन्तु मैंने बहुत प्रयत्नों के बाद नेहु लगाया (अक्खियां लाइयां) है। इसलिए मैं प्रेम का परित्याग नहीं कर सकता। मैं अजीब दुविधा में हूँ। प्रियतम को मैं छोड़ नहीं सकता और प्रियतम मेरी ओर ध्यान नहीं देता। काफ़ी के अन्त में साईं जी प्रियतम को ताना देते हैं कि यदि तुझे भी हमारी तरह प्रेम-रोग लग जाये, तभी तू हमारे साथ न्याय कर सकेगा अर्थात् हमारी अवस्था को समझकर हम पर तरस खायेगा:

नी कुटीचल मेरा नां। टेक।
मुल्लां मैंनूं सबक़ पढ़ाया, अलफ़ों अग्गे कुझ न आया।
उस दीआं जुत्तियां खांदा सां, नी कुटीचल मेरा नां।

किवें किवें दो अक्खियां लाइयां, रल के सइआं मारन आइयां।
नाले मारे बाबल मां, नी कुटीचल मेरा नां।

साहवरे सानूं वड़न न देंदे, नानक दादक घरों कढेंदे।
मेरा पेके नहिओं थां, नी कुटीचल मेरा नां।

पढ़न सेती सब मारन आहीं, बिन पढ़यां हुण छड्डदा नाहीं।
नी मैं मुड़ के कित वल जां, नी कुटीचल मेरा नां।

बुल्ला शौह की लाई मैंनूं, मत कुझ लग्गे ओह ही तैंनूं।
तद करेंगा तूं न्यां, नी कुटीचल मेरा नां।*

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात,* 141)

* **न्यां**=न्याय।

पत्तियां लिखां मैं शाम नूं

इस काफ़ी में साईं जी विरहिणी के रूप में प्रियतम के वियोग की हृदय-विदारक अवस्था का वर्णन करते हैं। विरहिणी कहती है: मुझे वह सलोना श्याम दिखायी नहीं देता। मैं उसको सन्देश भेजती हूँ परन्तु वह उत्तर नहीं देता। यह घर-बार मुझे मुँह फाड़कर खाने को आता है। मैंने संसार के सब विद्वानों और धर्म-ग्रन्थों की सहायता ली है परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य है कि फिर भी प्रियतम से मिलन नहीं हो रहा। हे ज्योतिषी, तू मुझे सच्ची बात बता दे। यदि मेरा भाग्य मन्द है तो भी तू मुझसे न छिपा। मैं सबकुछ त्याग देना चाहती हूँ परन्तु प्रेम को नहीं त्याग सकती। मेरे गले में पड़ी प्रेम की ज़ंजीर कभी नहीं टूट सकती। नींद भी मेरी दुश्मन बन गयी है कि कहीं स्वप्न में ही मुझे प्रियतम के दर्शन न हो जायें। रो-रोकर नयनों का नीर भी समाप्त हो गया है परन्तु पता नहीं किस शत्रु ने कौन-सा जादू किया है कि प्रियतम मेरी ओर ध्यान ही नहीं देता। हे प्रियतम, तू स्वयं ही बता कि तेरी प्रीति से मुझे आसुओं और काँटों के छत्र के सिवाय क्या मिला? अब मेरी यही प्रार्थना है कि तू मुझे उस देश में ले चल जहाँ तू स्वयं रहता है ताकि मुझे तेरे दर्शन हो सकें:

पत्तियां लिखां मैं शाम नूं, मैंनूं पिया नज़र न आवे। टेक।
आंगन बणा डरौणा, कित बिधि रैण विहावे।

पांधे पंडत जगत के, मैं पूछ रही आं सारे।
पोथी बेद क्या दोस है, जो उलटे भाग हमारे।

भाइया वे जोतशिया, इक सच्ची बात भी कहिओ।
जे मैं हीणी भाग दी, तुम चुप्प न रहिओ।*

भज्ज सकां ते भज्ज जावां, सब तज के करां फ़कीरी।†
पर दुलड़ी, तुलड़ी, चौलड़ी, है गल विच प्रेम ज़ंजीरी।‡

* **हीणी**=भाग्यहीन।
† **भज्ज...जावां**=दौड़ सकूँ तो दौड़ जाऊँ।
‡ **दुलड़ी, तुलड़ी, चौलड़ी**=दोहरी, तिहरी और चौहरी।

नींद गई कित देश नूं, ओह भी वैरन मेरी।
मत सुपने विच मैं आण मिले, ओह नींदर केहड़ी।*

रो रो जीउ वलाउंदीआं, गम करनीआं दूणा।†
नैणों नीर भी न चल्लण, किसे कीता टूणा।

साजन तुमारी प्रीत से, मुझ को हाथ की आया।
छतर सूलां सिर लाया, पर तेरा पंथ न पाया।

प्रेम नगर चल वसीए, जित्थे वस्से कंत हमारा।
बुल्लया शौह तों मंगनी हां, जे दए नज़ारा।‡

(नज़ीर अहमद: *कलाम बुल्लेशाह*, 23)

प्यारया संभल के नेहों ला

मीरा का कथन है:

जो मैं ऐसा जाणती रे, प्रीत किये दुख होय।
नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय॥

(*मीराबाई की शब्दावली*, पृ. 3)

इस काफ़ी में साईं जी भी प्रेम करनेवालों को चेतावनी देते हैं कि प्रेम करना ख़ाला (मौसी) का घर नहीं है। प्रेम में अभूतपूर्व बलिदान देना पड़ता है और अनेक कष्ट व यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं। प्रेम के मार्ग में शेर जैसा बड़ा दिल रखनेवाले भी डर जाते हैं। इसलिए सोच-समझकर ही इस मार्ग पर पाँव रखने चाहिये। आप यूसुफ़, मजनूँ और मंसूर के उदाहरण देते हैं जिन्हें प्रेम के मार्ग पर कई यातनाओं को सहन करना पड़ा और जान से भी हाथ धोना पड़ा। आप कहते हैं कि प्रेमियों को प्रेम की

* **मत...मिले**=कहीं वह स्वप्न में न मिले।
† **रो...वलाउंदीआं**=रो-रोकर दिल को तसल्ली देती है।
‡ मैं उससे दर्शन (नज़ारा) की भिक्षा माँगती हूँ।

मदिरा पीते देखकर तेरा भी दिल ललचायेगा परन्तु यह नहीं भूलना चाहिये कि तुझे प्रेम का सौदा महँगा पड़ेगा। काफ़ी के अन्त में व्यंग्य करते हैं कि यदि संसार में ऐश करना और सुख की नींद सोना चाहते हो तो शरअ यानी कर्मकाण्ड का रास्ता पकड़ लो। यदि प्रभु-प्रेम के मार्ग पर चलते हुए मंसूर की तरह 'मैं सत्य हूँ' का नारा लगाओगे तो तुम्हें भी सूली पर चढ़ा दिया जायेगा:

प्यारया संभल के नेहों ला, पिच्छों पछतावेंगा। टेक।
जांदा जाह न आवीं फेर, ओथे बेपरवाहियां ढेर।*
ओथे डहल खलोंदे शेर, तूं वी फंधया जावेंगा।†
प्यारया संभल के नेहों ला...

खूह विच यूसफ़ पायो ने, फड़ विच बाज़ार विकायो ने।
इक अट्टी मुल्ल पवायो ने, तूं कौडी मुल्ल पवावेंगा।‡
प्यारया संभल के नेहों ला...

नेहों ला वेख ज़ुलैखा लए, ओथे आशिक़ तड़फण पए।
मजनू करदा है है है, तूं ओथों की लिआवेंगा।§
प्यारया संभल के नेहों ला...

ओथे इकना दे पोसत लुहाइदे, इक आरयां नाल चिराइदे।¶
इक सूली पकड़ चढ़ाइदे, ओथे तूं वी सीस कटावेंगा।**
प्यारया संभल के नेहों ला...

---

* यदि प्रेम के मार्ग पर जाना चाहता है तो चला जा, परन्तु वहाँ से वापस आना नहीं होगा।
† **डहल खलोंदे**=डर जाना; **शेर**=सूरमे, बहादुर।
‡ यूसुफ़ को पहले कुएँ में फेंका गया, फिर वह सूत की एक अट्टी के मूल्य बिक गया, तेरा इतना भी मूल्य नहीं।
§ **है है है**=दुःख में कुरलाना।
¶ **पोसत**=खाल।
** प्रेम में शम्स तब्रेज़ की खाल उतारी गयी; ज़क़रीया को आरे से चीर डाला गया और मंसूर को सूली चढ़ाया गया।

घर कलालां दा तेरे पासे, ओथे आवण मस्त प्यासे।*
भर भर पीवण प्याले कासे, तूं वी जीअ ललचावेंगा।†
प्यारया संभल के नेहों ला...

दिलबर हुण गयों कित लौ, भलके की जाणा की हो।‡
मस्तां दे न नाल खलो, तूं वी मस्त सदावेंगा।§
प्यारया संभल के नेहों ला...

बुल्लया ग़ैर शरा न हो, सुख दी नींदर भर के सौं।¶
मूंहों न अनलहक़्क़ बगो, चढ़ सूली ढोले गावेंगा।**
प्यारया संभल के नेहों ला...

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 41)

प्यारे! बिन मसल्हत उठ जाणा

इस काफ़ी में अचेत मनुष्य को सचेत करते हैं कि तू संसार में विवेक से काम ले। तू यहाँ चार दिन मनमानी और लोगों पर अत्याचार कर सकता है परन्तु अन्ततः तुझे अपने बुरे कामों के लिए स्वयं दुःख उठाने पड़ेंगे। एक दिन तुझे भी क़ब्रिस्तान जाना पड़ेगा, जहाँ सारे संसार को जाना है। यमराज बहुत बलवान् है। उससे कभी कोई नहीं बच सका। काफ़ी के अन्त में कहते हैं कि मनुष्य संसार में हर ओर से शत्रुओं से घिर चुका है। वह प्रभु ही दया करे तो यमराज के भय से छुटकारा हो सकता है:

---

* **कलालां**=शराब बेचनेवाले अर्थात् परमात्मा के प्रेमी।
† **कासे**=लोटे, प्याले।
‡ **लौ**=एक तरफ़।
§ प्रेमियों की संगति में गया तो तुझे भी प्रेमी समझकर दुःखी करेंगे।
¶ व्यंग्य करते हैं कि संसार में मौज उड़ाना चाहते हो तो शरअ की सीमा पार न करो।
** यदि प्रेम में आकर 'मैं प्रभु हूँ' का नारा लगायेगा तो तुझे भी मंसूर की भाँति सूली पर चढ़ा देंगे।

प्यारे! बिन मसल्हत उठ जाणा,
तूं कदी ते हो सयाणा।*
कर लै चावड़ चार दिहाड़े, थीसें अंत निमाणा।†
जुलम करें ते लोक सतावें, छड्ड दे लोक सताणा।‡

जिस जिस दा वी माण करें तूं, सो वी साथ न जाणा।
शहर-ख़ामोशां नूं वेख हमेशा, जांणा विच जग समाणा।§

भर भर पूर लंघावे डाढा, मलकुन-मौत मुहाणा।¶
ऐथे हैन तनते सभ, मैं अवगुणहार निमाणा।**

बुल्ला दुश्मन नाल बरे विच, है दुश्मन बल ढाणा।††
महबूब-रबानी करे रसाई, खौफ़ जाए मलकाणा।‡‡

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 40)

---

* **मसल्हत**=नेकी, भलाई; प्यारे क्या तू नेक काम किये बिना ही चला जायेगा? कुछ समझ से काम ले।

† **चावड़**=मनमानी, मनमरज़ी; **थीसें**=हो जायेगा; **निमाणा**=बेचारा; चार दिन मनमरज़ी करने के बाद शरीर जवाब दे जायेगा।

‡ **छड्ड...सताणा**=अत्याचार करना और लोगों को सताना छोड़ दे; पाठान्तर इस प्रकार भी मिलता है: 'जुलम करें की लोक सतावें क्यों लिया उल्ट कहाणा।'

§ **शहर-खामोशां**=चुप का शहर, श्मशान।

¶ **डाढा**=शक्तिशाली; **मलकुन-मौत**=मौत का देवता; **मुहाणा**=नाविक।

** **तनते**=मान करनेवाले, अहंकारी; **अवगुणहार**=पापी; पाठान्तर इस प्रकार मिलता है: 'ऐथे जितने हन सभ तिनते मैं गुनाहगार पुराणा।'

†† **दुश्मन...ढाणा**=शक्तिशाली शत्रुओं का समूह अर्थात् मन और विकारों ने बुरी तरह जीव को घेरा हुआ है।

‡‡ **महबूब-रबानी**=प्रभु का प्यारा (मुर्शिद); **रसाई**=पहुँच; **खौफ़**=भय; **मलकाणा**=मलक का; अर्थात् वह प्रियतम रहमत करे तो मौत के फ़रिश्ते का भय दूर हो जाये।

पाया है कुछ पाया है

इस काफ़ी में वहदत-उल-वुजूद या हमाओस्त या पूर्ण अद्वैत का भाव प्रकट कर रहे हैं। आप कहते हैं कि कामिल मुर्शिद ने यह ज्ञान दिया है कि दिखायी देनेवाली अनेकता के पीछे गुप्त एकता काम कर रही है। मित्र, शत्रु, प्रेमी-प्रेमिका, गुरु और शिष्य में वह स्वयं बैठा है और स्वयं अपना मार्ग दिखा रहा है, 'सभ अपना राह दिखाया है:

पाया है कुछ पाया है,
सतगुरु ने अलख लखाया है। टेक।
कहूं वैर पड़ा कहूं बेली है, कहूं मजनूं है कहूं लेली है।
कहूं आप गुरु कहूं चेली है, सभ अपना राह दिखाया है।

कहूं चोर बणा कहूं साह जी है, कहूं मंबर ते बह वाअज़ी है।*
कहूं तेग़ बहादुर ग़ाज़ी है, कहूं आपणा पंथ बताया है।†

कहूं मसजद का वरतारा है, कहूं बणया ठाकुर द्वारा है।‡
कहूं बैरागी जप धारा है, कहूं शेखन बण बण आया है।

कहूं तुरक किताबां पढ़ते हो, कहूं भगत हिंदू जप करते हो।
कहूं घोर गुफा में पड़ते हो, हर घर घर लाड लडाया है।

बुल्ला शौह का मैं मुहताज होआ, महाराज मिले मेरा काज होआ।§
दर्शन पिया दा मेरा इलाज होआ, लग्गा इश्क़ तां एह गुण गाया है।¶

(अनवर अली रोहतकी: *क़ानूने इश्क़*, 58)

---

* **मंबर**=मनारा; मस्जिद में वाअज़ (उपदेश या कथा) करनेवाला स्थान; **वाअज़ी**=उपदेशक

† **ग़ाज़ी**=धर्म के लिए प्राण न्योछावर करनेवाला।

‡ **वरतारा**=व्यवहार।

§ **मुहताज**=चाहवान, प्रेमी; सतगुरु का दास बना तो मेरा प्रभु से मिलाप हो गया।

¶ प्रियतम के दर्शन करने से मेरे सब दुःख दूर हो गये। इस अवस्था की प्राप्ति प्रेम द्वारा ही हुई।

पिया पिया करते हमीं पिया होए

गुरु नानक देव जी कहते हैं: 'जैसा सेवै तैसो होइ।' सन्तमत का नियम है कि जिसका मानव सिमरन करता है, उसी का रूप हो जाता है। यहाँ पर साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि हम पिया-पिया करते हुए स्वयं पिया बन गये हैं। हम उस अद्भुत अवस्था में पहुँच गये हैं जहाँ संयोग और वियोग, प्रेमी और प्रेमिका का अन्तर समाप्त हो गया:

पिया पिया करते हमीं पिया होए, अब पिया किस नूं कहीए।
हिजर वसल हम दोनों छोड़े, अब किस के हो रहीए।*

मजनूं लाल दीवाने वांगू, अब लैला हो रहीए।†
बुल्ला शौह घर मेरे आए, अब क्यों ताअने सहीए।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 39)

बस कर जी हुण बस कर जी

कहा जाता है कि यह काफ़ी साईं जी ने मुर्शिद के वियोग में लिखी और रूठे हुए मुर्शिद को मनाने के लिए गाकर सुनायी। यहाँ कहते हैं कि अब मुझे काफ़ी सज़ा मिल चुकी है। तू अपना रोष छोड़कर मुझसे प्रेम की बात कर। आप कहते हैं कि एक ओर तू जादू करके मेरे दिल को खींचता है और दूसरी ओर मुझसे दूर भागता है। अब मैंने तुझे अपने मन में क़ैद कर लिया है। तुम यहाँ से कैसे भागोगे? तुम दौड़ना तो यहाँ से भी चाहते हो परन्तु मैंने तुम्हें प्रेम के बन्धन में इस प्रकार कस लिया है कि तुम अब दौड़ नहीं पाओगे। काफ़ी के अन्त में प्रेमिका के रूप में कहते हैं: हे प्रियतम, मैं तेरी दासी हूँ। मैं तेरे दर्शन के लिए प्राण न्योछावर करती हूँ। मेरी यही प्रार्थना है कि तुम इस तरह मेरे हृदय में बैठ जाओ कि फिर कभी बाहर निकल न पाओ:

* **हिजर वसल**=वियोग और संयोग।

† जिस प्रकार मजनूँ लैला का दीवाना बनकर लैला में समा गया था, हम भी प्रियतम में समाकर उसका रूप हो गये हैं।

बस कर जी हुण बस कर जी,
इक बात असां नाल हस्स कर जी। टेक।

तुसीं दिल मेरे विच वसदे हो,
ऐवें साथों दूर क्यों नसदे हो।
नाले घत्त जादू दिल खसदे हो,
हुण कित वल जासो नस्स कर जी।*

तुसीं मोयां नूँ मार ना मुकदे सी,
खिद्दो वांग खूंडीं नित कुट्टदे सी।†
गल्ल करदयां दा गल घुट्टदे सी,
हुण तीर लगायो कस्स कर जी।‡

तुसीं छपदे हो असां पकड़े हो,
असां नाल जुलफ़ दे जकड़े हो।§
तुसीं अजे छपण नूं तकड़े हो,
हुण जाण न मिलदा नस्स कर जी।¶

बुल्ला शौह मैं तेरी बरदी हां,
तेरा मुख वेखण नूं मरदी हां।**
नित्त सौ सौ मिंनतां करदी हां,
हुण बैठ पिंजर विच धस्स कर जी।††

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 25)

* **घत्त जादू**=जादू करके; **दिल...हो**=दिल को खींचते हो।

† तुम मरे हुए को मारने जाते थे और मुझे गेंद की तरह खूँटी से पीटते थे।

‡ **गल्ल...सी**=तुम हमें बात भी नहीं करने देते थे।

§ **असां...हो**=हमने तुम्हें प्रेम के कुण्डल में फँसा लिया है।

¶ **तुसीं...हो**=तुम अब भी छिपने के लिए बलवान् हो; **हुण...जी**=परन्तु तुम्हें भागने का मार्ग नहीं मिलता।

** **बरदी**=दासी।

†† **पिंजर**=शरीर; **हुण...जी**=अब मेरे अन्दर धँसकर बैठ जा ताकि दोबारा निकल न सके।

बुल्ला की जाणे ज़ात इश्क़ दी कौण

इश्क़ की कोई जाति नहीं है। परमात्मा का प्यार, क़ौमों, मज़हबों, मुल्कों, रंगों, नस्लों, जातियों के बन्धनों से स्वतन्त्र है। प्रेमिका कहती है कि मैं बाहर से प्रियतम से शिकायत करती हूँ परन्तु मेरा हृदय उसके प्यार से भरा हुआ है। मेरा प्रियतम से झगड़ा ऊपरी और बनावटी है। हम, लोगों को आज़माने के लिए झगड़े का दिखावा करते हैं, परन्तु अन्दर से हम एक हैं। यह बड़ा सुन्दर वर्णन है। प्रेम के गिले-शिकवे उसके प्यार की ही निशानी होते हैं:

बुल्ला की जाणे ज़ात इश्क़ दी कौण। टेक।
ना सूहां ना कंम बखेड़े, वंजे जागण सौण।*
रांझे नूं मैं गालियां देवां, मन विच करां दुआईं।†
मैं ते रांझा इक्को कोई, लोकां नूं अज़माईं।
जिस बेले विच बेली दिस्से, उस दीआं लवां बलाईं।‡
बुल्ला शौह नूं पासे छड्ड के, जंगल वल्ल न जाईं।§
बुल्ला की जाणे ज़ात इश्क़ दी कौण।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 26)

बुल्ले नूं समझावण आइयां

यह काफ़ी साईं बुल्लेशाह के जीवन की एक घटना पर प्रकाश डालती है। जब बुल्लेशाह ने हज़रत इनायत शाह को अपना मुर्शिद बना लिया तो घरवालों ने शिकायत की कि तूने नबी (हज़रत मुहम्मद) की उम्मत और हज़रत अली की सन्तान होकर साधारण अराईं को गुरु धारण कर लिया है।

* **सूहां**=ख़बरें; **वंजे**=भूल जाती हैं; इश्क़ में अपनी और कामकाज की सुध-बुध भूल जाती हैं।
† **गालियां**=ताने, उलाहने।
‡ **बेले**=ठिकाना; जिस स्थान पर प्रेम का निवास है, मैं उस पर बलिहार जाती हूँ।
§ प्रियतम (अन्दर है) को पीठ देकर बाहर वनों, सुनसानों में उसकी खोज करना व्यर्थ है। आपने किसी अन्य काफ़ी में भी कहा है: 'प्रीतम पास ते टोलें किस नूं भुल गया सिखर दुपहरी।'

इससे हमारी बहुत बदनामी हुई है। साईं बुल्लेशाह उत्तर देते हैं कि उस जाति पर धिक्कार है जो नरकों में जाने का कारण बनती है, जो जीव को कामिल मुर्शिद से दूर रखती है। जो मुर्शिद की जाति है, वही मेरी जाति है। कबीर साहिब कहते हैं कि शिष्य का सम्बन्ध कामिल मुर्शिद के नश्वर शरीर के अन्दर काम कर रहे दैवी प्रकाश से है:

जाति न पूछो साध की, पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥

(*कबीर साखी-संग्रह*, पृ. 120)

वह सर्वव्यापक मालिक बेपरवाह है। वह स्वयं अराईं (हज़रत इनायत शाह) का रूप धारण करके संसार में आया है। इसलिए ही मैंने उसकी शरण ली है:

बुल्ले नूं समझावण आइयां, भैणां ते भरजाइयां। टेक।
मंन लै बुल्लया कैह्णा साडा, छड्ड दे पल्ला राइयां।*
आल नबी औलाद अली नूं, तूं क्यों लीकां लाइयां।†

जेहड़ा सानूं सैयद सद्दे, दोज़ख़ मिलण सज़ाइयां।
जो कोई सानूं राईं आखे, भिश्ती पीघां पाइयां।‡

राईं साईं सभनी थाईं, रब्ब दीआं बेपरवाहियां।
सोहणियां परे हटाइयां, ते कोझियां लै गल लाइयां।

जे तूं लोड़ें बाग़ बहारां, चाकर हो जा राइयां।
बुल्लेशाह दी ज़ात की पुछणै, शाकर हो रज़ाइआं।§

(नज़ीर अहमद: *कलाम बुल्लेशाह*, 19)

* यह बात बुल्लेशाह के संबंधी कहते हैं।
† **लीकां लाइयां**=बदनाम करना।
‡ इन पंक्तियों में बुल्लेशाह उत्तर देते हुए कहते हैं कि मुझे सैयद कहनेवाले नरकों में और अराईं कहनेवाले स्वर्गों में जायेंगे।
§ **शाकर**=शुक्र करनेवाला, आज्ञा माननेवाला; **रज़ाइआं**=रज़ा में प्रसन्न रहना।

भरवासा की अशनाई दा

वे इस काफ़ी में कहते हैं कि वह प्रियतम बेपरवाह है। उससे प्रेम करके उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। आप इब्राहीम, सुलेमान, यूनुस, यूसुफ़, जक़रीया, साबर, इमाम हुसैन, यय्या आदि के उद्धरण देकर बताते हैं कि इन प्रेमियों को प्रियतम की बेपरवाही के कारण अनेक दुःख सहन करने पड़े। काफ़ी के अन्त में कहते हैं कि अब मैंने उस प्रियतम को अच्छी प्रकार पहचान लिया है। वह हर स्थान में समाया हुआ है। अब मैं उसे कभी नहीं भूल सकता:

भरवासा की अशनाई दा, डर लगदा बेपरवाही दा। टेक।*
इबराहीम चिखा विच पायो, सुलेमान तों भट्ठ झुकवाओ।†
यूनस मच्छी तों निगलायो, फड़ यूसफ़ मिसर विकाईदा।‡

ज़करीआ सिर कलवत्तर चलायो, साबर दे तन कीड़े पायो।§
सुंनआं गल ज़ुन्नार पवायो, किते उलटा पोश लुहाईदा।¶

पैगंबर ते नूर उपायो, नाम इमाम हुसैन धरायो।
झूला जबराईल झुलायो, फिर प्यासा गला कटाईदा।**

जा ज़करीआ रुक्ख छुपाया, छप्पना उस दा बुरा मनाया।
आरा सिर ते चा वगाया, सणे रुक्ख चराईदा।††

---

* **भरवासा**=विश्वास; **अशनाई**=प्रीति, प्रेम; बाबा फ़रीद ने भी कहा है: 'जे जाणा सहु नंढड़ा तां थोड़ा माणु करी॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1378)

† **सुलेमान...झुकवाओ**=सुलेमान से भट्ठी फुँकवाई।

‡ **निगलायो**=निगल जाना, पूरा का पूरा हड़प जाना; 'रौह रौह वे इश्का मारया ई।'

§ **कलवत्तर**=करवत, आरा।

¶ **ज़ुन्नार**=यज्ञोपवीत; **पोश**=चमड़ी, खाल।

** पैग़ंबर द्वारा इलाही नूर का ज़हूर किया और इमाम का नाम हुसैन रखवाया। उसको ज़िब्राईल फ़रिश्ते ने झूला झुलवाया, परन्तु फिर उसी हुसैन को प्यासा रखकर उसका वध कराया।

†† पहले ज़क़रीया को पेड़ में छिपने की प्रेरणा दी, फिर उस पेड़ को ज़क़रीया सहित आरे से चिरवा दिया।

यईहा उस दा यार कहाया, नाल ओसे दे नेहों लगाया।
राह शरहा दा उन्न बतलाया, सिर उस दा बाल कटाईदा।*

बुल्ला शौह हुण सही संञाते हैं, हर सूरत नाल पछाते हैं।
किते आते हैं किते जाते हैं, हुण मैत्थों भुल न जाईदा।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 30)

भावें जाण न जाण वे

प्रेमिका (शिष्य) कहती है कि मेरा प्यारा (सतगुरु) मेरे हृदय की वेदना समझे या न समझे, पर मुझसे दूर न जाये। वह कहती है कि मेरे लिए तेरे जैसा और कोई नहीं है। इसलिए मैं हर जगह तेरी तलाश कर रही हूँ। लोग राँझा को भैंसें चरानेवाला चरवाहा (चाक) कहते हैं परन्तु वह मेरा धर्म और ईमान है। मैंने अपना सबकुछ त्यागकर अपने प्रियतम से नेह लगाया है। उससे विनती है कि वह अपनी लाज रख ले:

भावें जाण न जाण वे, वेहड़े आ वड़ मेरे।
मैं तेरे कुरबान वे, वेहड़े आ वड़ मेरे।

तेरे जेहा मैनूं होर न कोई, ढूंडां जंगल बेला रोही।
ढूंडां तां सारा जहान वे, वेहड़े आ वड़ मेरे।

लोकां दे भाणे चाक महीं दा, रांझा तां लोकां विच कहीदा।†
साडा तां दीन ईमान वे, वेहड़े आ वड़ मेरे।

मापे छोड़ लग्गी लड़ तेरे, शाह इनाइत साईं मेरे।
लाइयां दी लज्ज पाल वे, वेहड़े आ वड़ मेरे।‡

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 32)

---

* यय्या को प्रभु का मित्र कहा गया। उसने प्रभु से प्रेम किया। उसने कर्मकाण्ड (शरअ) का मार्ग बताया परन्तु उसका सिर भी काट दिया गया।

† **चाक**=चरवाहा, पशु चरानेवाला; **रांझा**=हीर सियाल उच्च कुल की थी और धीदो राँझों में से था, जिनको सियालों में नीचा माना जाता है।

‡ मैं अपना दीन, धर्म, वंश, परिवार छोड़कर तेरी शरण में आयी हूँ। मेरे सतगुरु इनायत शाह, तू मुझ शरण में आयी की लाज रख ले।

भैणां मैं कतदी कतदी हुट्टी

बिना प्रेम के भजन-सिमरन का चरख़ा कातते हुए जीवात्मा कई बार उकता जाती है। प्रेम-विहीन करनी से न रस मिलता है और न कोई लाभ होता है। मन में दयालु प्रभु का प्रेम पैदा करने के लिए भक्ति की जाती है। इस प्रेम के बिना भक्तिरूपी चरख़े का टूट जाना भला है। परन्तु जब हृदय में प्रेम की मस्ती छा जाती है (प्रेम कटोरी मुट्ठी) तो आत्मा अपने आप प्रियतम की ओर खिंची चली जाती है। आवश्यकता रूहानी अभ्यास के त्याग की नहीं बल्कि इस अभ्यास में प्रेम, विरह व तड़प का रंग भरने की है:

भैणां मैं कतदी कतदी हुट्टी।*
पछ्छी पड़ी पिछवाड़े रह गई, हत्थ विच रह गई जुट्टी।†
अग्गे चरखा पिच्छे पीहड़ा, मेरे हत्थों तंद तरुट्टी।

भौंदा भौंदा ऊरा डिग्गा, चंब उलझी तंद टुट्टी।‡
भला होया मेरा चरखा टुट्टा, मेरी जिंद अज़ाबों छुट्टी।

दाज दहेज नूं उस की करना, जिस प्रेम कटोरी मुट्ठी।§
बुल्ला शौह ने नाच नचाए, धुंम पई कड़ कुट्टी।¶

(नज़ीर अहमद: *कलाम बुल्लेशाह*, 20)

---

* मैं भक्ति का सूत कातती हुई थक गयी।

† **पछ्छी**=पूनियों की टोकरी; **पड़ी**=छोटी पिटारी; **जुट्टी**=पूनियों का जोड़ा।

‡ **ऊरा**=जिस पर सूत की तन्द लपेटी जाती है; **चंब**=तकले को सहारा देनेवाली चमड़ियाँ।

§ जिसने प्रेम का प्याला हाथ (मुट्ठी) में ले लिया, उसे अन्य किसी प्रकार की करनी की आवश्यकता न रही।

¶ प्रियतम ने मुझे प्रेम का नाच नचाया। मैं इस प्रकार खुलकर नाची कि हर ओर मेरे नाच की धूम मच गयी।

मन अटक्यो शाम सुंदर सों

इस काफ़ी में भी अद्वैत और प्रभु की सर्वव्यापकता का भाव प्रकट किया गया है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि जिसे सत्य का ज्ञान हो जाता है, वह द्वैत के भ्रम से सदा के लिए मुक्त हो जाता है:

मन अटक्यो शाम सुंदर सों। टेक।*
कहूं वेखूं बाहमण कहूं शेख़ा, आप आप करन सभ लेखा।†
क्या क्या खेलया हुनर सौं, मन अटक्यो शाम सुंदर सों।‡

सूझ पड़ी तब राम दुहाई, हम तुम एक न दूजा काई।
इस प्रेम नगर के घर सों, मन अटक्यो शाम सुंदर सों।§

पंडित कौण कित लिख सुणाए, न कहीं जाए न कहीं आए।
जैसे गुर का कंगण कर सों, मन अटक्यो शाम सुंदर सों।¶

बुल्ला शौह दी पैरीं पड़ीए, सीस काट कर अग्गे धरीए।
हुण मैं हर देखा हर हर सों, मन अटक्यो शाम सुंदर सों।**

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 112)

मुँह आई बात न रैह्न्दी ए

इस काफ़ी में बुल्लेशाह कहते हैं कि प्रभु के सच्चे भक्त सत्य को प्रकट करने के लिए विवश होते हैं परन्तु संसार इस सत्य को सहन नहीं कर पाता। आप कहते हैं कि प्रभु के सच्चे भक्त अपने अन्तर में उसकी खोज करते

---

* मेरा मन प्रियतम (शाम सुंदर) के प्यार में लीन हो गया है।

† **शेख़ा**=शेख़ अर्थात् मुसलमान; वह प्यारा स्वयं ही हिन्दू है, स्वयं ही मुसलमान।

‡ **क्या...सौं**=वह कला (हुनर) या चतुराई से अनेक रूपों में खेल रहा है।

§ प्रेम नगर में पहुँचकर इस सत्य का ज्ञान हुआ तो पता चला कि प्रियतम (परमात्मा) और प्रेमिका (आत्मा) भी एक हैं।

¶ **कर**=हाथ; **जैसे...सों**=जिस प्रकार गुरु का कंगन हाथ में रहता है।

** मुझे हरएक में उस हरि का प्रकाश दिखायी देता है।

हैं, परन्तु दुनिया के मूर्ख लोग बाहर ही भटकते रहते हैं। जो अन्दर जाते हैं उन्हें पता चल जाता है कि सारा संसार एक ही प्रभु का प्रसार है और विविध रूपों में वह प्रभु समाया हुआ है। आप कहते हैं कि यदि मैं अद्वैत के सत्य को प्रकट कर दूँ तो संसार के द्वैत के सारे झगड़े दूर हो जायें। परन्तु सम्भव है कि लोग ऐसा करने पर मुझे जान से मार दें। काफ़ी के अन्त में इशारा करते हैं कि प्रभु के बिना अन्य कुछ नहीं है परन्तु उसको देखनेवाले लोग आन्तरिक नेत्र न होने के कारण उसके वियोग में दु:ख उठा रहे हैं:

मुँह आई बात न रैह्न्दी ए। टेक।*
झूठ आखां ते कुझ बच्चदा ए, सच आखयां भांबड़ मचदा ए।†
जी दोहां गल्लां तों जच्चदा ए, जच्च जच्च के जिहबा कैह्न्दी ए।

इक लाज़म बात अदब दी ए, सानूं बात मलूमी सभ दी ए।
हर हर विच सूरत रब्ब दी ए, किते ज़ाहर किते छुपेंदी ए।‡

जिस पाया भेत क़लंदर दा, राह खोजया आपणे अंदर दा।§
ओह वासी है सुख मंदर दा, जित्थे चढ़दी है न लैह्न्दी ए।

एथे दुनियां विच अन्हेरा ए, अते तिलकण बाज़ी वेहड़ा ए।
वड़ अंदर वेखो केहड़ा ए, बाहर ख़फ़तण पई ढूंडेंदी ए।¶

---

* जिसके हृदय में प्रेम और वहदत का ज़ोर हो, वह हृदय की बात रोक नहीं सकता।

† झूठ कहूँ तो कुछ बात अनकही रह जाती है। सच कहूँ तो संसार में आग लगती है। दिल दोनों बातों से डरता है, परन्तु डरते-डरते भी सच मुँह से निकल रहा है। डॉ. नज़ीर अहमद ने पाठ इस प्रकार दिया है: 'झूठ आखिआं कुझ न बचदा ए।'

‡ सत्य तो यह है कि हर शरीर में उस परमात्मा की सूरत समायी हुई है, कहीं गुप्त रूप में और कहीं प्रकट रूप में।

§ **क़लंदर**=जो बन्दर को नचाता है अर्थात् मन को वश में करनेवाले फ़क़ीरों की रमज़ समझनेवाले लोग अपने अन्दर हक़ीक़त की तलाश करते हैं। उसको सुख-मन्दिर अर्थात् अजर, अमर, आनन्द के देश की प्राप्ति हो जाती है जो कमी-अधिकता और उतार-चढ़ाव से परे है।

¶ जो बाहर खोज करते हैं, कीचड़ में फँस जाते हैं और मंज़िल पर नहीं पहुँच सकते। वास्तविकता का ज्ञान अन्दर खोजनेवालों को ही होता है। **ख़फ़तण**=बाहर ढूँढ़नेवाले मूर्ख (अज्ञानतावश) कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। डॉ. नज़ीर अहमद ने ख़फ़तण के स्थान पर 'खलकत' पाठ दिया है जो अधिक स्वाभाविक लगता है।

एथे लेखा पाओं पसारा ए, एह्दा वखरा भेद न्यारा ए।*
इक सूरत दा चमकारा ए, जिवें चिणग दारू विच पैंदी ए।†

किते नाज़-अदा दिखलाईदा, किते हो रसूल मिलाईदा।‡
किते आशिक़ बण बण आईदा, ताहियों जान जुदाईआं सैह्न्दी ए।§

जदों ज़ाहर होए नूर हुरीं, जल गए पहाड़ कोह-तूर हुरीं।
तदों दार चढ़े मनसूर हुरीं, ओथे शेखी मैंडी न तैंडी ए।¶

जे ज़ाहर करां असरार ताईं, सभ भुल्ल जावण तकरार ताईं।**
फिर मारन बुल्ले यार ताईं, ऐथे मख़फ़ी बात सोहेंदी ए।††

असां पढ़या इलम तहक़ीक़ी ए, ओथे इक्को हरफ़ हक़ीक़ी ए।‡‡
होर झगड़ा सभ वधीकी ए, ऐवें रौला पा पा बैह्न्दी ए।

बुल्ला शौह असां थीं वख नहीं, बिन शौह थीं दूजा कख नहीं।
पर वेखण वाली अक्ख नहीं, ताहीं जान पई दुख सैह्न्दी ए।

(अनवर अली रोहतकी: *क़ानूने इश्क़*, 70)

---

* **लेखा...ए**=परमात्मा ने संसार की रचना रची है।

† जिस प्रकार बारूद (दारू) में चिनगारी लगायी जाये तो धमाका भी होता है और आग भी निकलती है, उसी प्रकार यह जगत् एक इलाही सूरत का चमत्कार है।

‡ कहीं तू अपनी दया और शान (नाज़ निआज़) प्रकट करता है; फिर कहीं रसूल बनकर तू आत्मा को परमात्मा से मिलाता है।

§ कहीं तू स्वयं अपना प्रेमी बनकर आ जाता है और स्वयं ही अपने हिज़्र में तड़पता है। आप हमाओस्त का भाव प्रकट कर रहे हैं।

¶ **ओथे...ए**=मेरी या तेरी शेख़ी नहीं चल सकती।

** **ज़ाहर**=प्रकट; **असरार**=भेद; **तकरार**=झगड़ा।

†† **मख़फ़ी**=छिपी हुई, इशारे भरी।

‡‡ **इलम तहक़ीक़ी**=खोज द्वारा प्राप्त किया ज्ञान; **हरफ़ हक़ीक़ी**=सच का कलमा या शब्द। मैं केवल इस ज्ञान तक पहुँचा हूँ कि वहदत सच है और द्वैत का झगड़ा व्यर्थ है।

मुरली बाज उठी अणघातां

इस काफ़ी में अनहद शब्द की मुरली की महिमा कही गयी है। आप कहते हैं कि मेरे अन्तर में अनहद शब्द की बाँसुरी अपने आप बज रही है। उसकी तान सुनकर मुझे संसार की सुध-बुध भूल गयी है। अनहद शब्द के ऐसे विचित्र तीर हृदय में लगे हैं कि संसार के ढोंग नाशवान प्रतीत होने लगे हैं। अब केवल उस प्रियतम का मुख देखने की लालसा रह गयी है। मनरूपी चंचल मृग जो किसी तरह वश में नहीं आता था, अब स्थिर हो गया है। आप कहते हैं कि जो व्यक्ति अनहद शब्दरूपी कलमे में लीन हो जाता है, पैग़म्बर उसके अन्दर दैवी गुण भर देते हैं। काफ़ी के अन्त में वे कहते हैं कि मैं उस प्रभु (कान्ह) द्वारा बजायी जा रही अनहद शब्द की बाँसुरी सुनकर बेचैन हो गयी हूँ (मैं बावरी बनी हुई विवश उस प्रियतम की ओर खिंची चली आ रही हूँ। विस्तार के लिए पृष्ठ 125 देखिये):

मुरली बाज उठी अणघातां, सुण के भुल्ल गइयां सभ बातां। टेक।*
लग्ग गए अनहद बाण न्यारे, झूठी दुनिया कूड़ पसारे।
साईं मुक्ख वेखण वणजारे, मैनूं भुल्ल गइयां सभ बातां।†

हुण मैं चंचल मिरग फहाया, ओसे मैनूं बंन्ह बहाया।
सिरफ़ दुगाना इश्क़ पढ़ाया, रह गइयां त्रै चार रकातां।‡

बूहे आण खलोता यार, बाबल पुज्ज पेआ तकरार।§
कलमे नाल जे रहे विहार, नबी मुहम्मद भरे सफ़ातां।¶

---

* **अणघातां**=अचानक।

† **साईं...वणजारे**=हम केवल प्रियतम के दर्शन करने के ग्राहक थे।

‡ इसने मुझे प्रेम का गीत पढ़ाया है जो मैंने सारा पढ़ लिया है, केवल थोड़ा ही शेष है: **'रह गइयां त्रै चार रकातां।'**

§ **तकरार**=झगड़ा; अन्दर प्रियतम प्रकट हो गया है। संसार का सारा झगड़ा समाप्त हो गया है।

¶ **सफ़ातां**=जो इस अनहद शब्द या कलमे में समाया रहा है, उसमें पैग़ंबर दैवी गुण भर देते हैं।

बुल्ले शाह मैं हुण बरलाई, जद दी मुरली काह्न बजाई।*
बावरी हो तुसां वल धाई, खोजीआं कित वल दसत बरातां।†

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात,* 110)

मेरी बुक्कल दे विच चोर

साईं बुल्लेशाह प्रेम से उस प्रभु को 'बुक्कल का चोर' कहते हैं। वह चित्तचोर कहीं बाहर नहीं है अन्दर ही बैठा है। आप कहते हैं कि मुसलमान शव के जलाये जाने से और हिन्दू क़ब्र में दफनाये जाने से डरते हैं। हिन्दू स्वयं को रामदास और मुसलमान फ़तेह मुहम्मद कहलाते हैं परन्तु जो व्यक्ति अन्तर में उस प्रभु के दर्शन कर लेता है उसके लिए ये सब झगड़े व्यर्थ हो जाते हैं। वह हृदय के प्रकाशमय आकाश में पहुँचकर अनहद शब्द की मीठी ध्वनियाँ सुनने लगता है। उसे पता चल जाता है कि वह जो कुछ कर रहा है, वह प्यारा प्रियतम कर रहा है।

आप इस काफ़ी में यह भी संकेत करते हैं कि हमारे क़ादिरी सम्प्रदाय का प्रथम सतगुरु पीर दस्तगीर, जिसे पीरों का पीर कहा जाता है, बग़दाद का रहनेवाला था परन्तु मेरा मुर्शिद इनायत शाह लाहौर का रहनेवाला है। उसने स्वयं ही मेरे अन्तर में अपनी प्रीति पैदा की है और स्वयं ही मुझे अपनी ओर खींच रहा है।

मेरी बुक्कल दे विच चोर नी, मेरी बुक्कल दे विच चोर। टेक।‡
कीहनूं कूक सुणावां नी, मेरी बुक्कल दे विच चोर।
चोरी चोरी निकल गया, जग विच पै गया शोर।§

---

* **बरलाई**=व्याकुल हो गयी।

† **दसत**=हाथ; **बरातां**=दात, वरदान; मैं प्रियतम का वरदान-भरा हाथ और ख़ुशी-भरा मार्ग खोज रही हूँ।

‡ वह प्रियतम मेरे अन्दर रहता है।

§ वह प्यारा जगत् में अनेक रंग धारण कर लेता है, जिससे कई झगड़े शुरू हो जाते हैं।

मुसलमान सड़ने तों डरदे, हिंदू डरदे गोर।*
दोवें एसे दे विच मरदे, एहो दोहां दी खोर।†

किते रामदास किते फतह मुहम्मद, एहो कदीमी शोर।‡
मिट गया दोहां दा झगड़ा, निकल पेआ कुझ होर।§

अरश-मुनव्वर बागां मिलियां, सुणियां तख़त लाहौर।
शाह इनाइत कुंडीयां पाईयां, लुक छुप खिचदा डोर।

जिस ढूंडया तिस ने पाया, न झुर झुर होया मोर।¶
पीरां-पीर बग़दाद असाडा, मुरशद तख़त लाहौर।

एहो तुसीं वी आखो सारे, आप गुड्डी आप डोर।
मैं दसनां तुसीं पकड़ ल्याओ, बुल्ले शाह दा चोर।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 118)

मेरे घर आया पिया हमरा

इस काफ़ी में वे कहते हैं कि वह प्रियतम मेरे हृदय में प्रकट हो गया है। वहाँ से उसके अनहद शब्द की ध्वनि गूँजने लगी है। आप यह कहते हैं कि मेरे अन्दर लाहौर का तख़्त प्रकट हो गया है। आपका संकेत अन्तर में मुर्शिद के नूरी स्वरूप के प्रकट होने की ओर है। आप कहते हैं कि इससे मेरे मन की मलिनता का नाश हो गया है, हृदय को प्रेम की सच्ची चोट

* **गोर**=क़ब्र।

† **खोर**=शत्रुता। हिन्दू और मुसलमान इस बात के लिए लड़ते-झगड़ते हैं कि मुर्दे को जलाना चाहिए या दफ़नाना।

‡ **कदीमी शोर**=पुराना झगड़ा; कोई हिन्दुओं वाला नाम रखता है, कोई मुसलमानों वाला। यह मतभेद सदा से चल रहा है।

§ जब असलियत का पता चला अर्थात् उस परमात्मा को दोनों में विराजमान देखा तो द्वैत का झगड़ा मिट गया।

¶ **झुर...मोर**=मोर की तरह आग्रह; जिसने प्रियतम की खोज की उसको प्राप्ति हो गयी। उसको पश्चात्ताप में मोर की भाँति झुरना न पड़ा।

लगी है और मुझे प्रभु का सहारा मिला है। मेरे अहं का नाश हो गया है, मुझे अपनी सुध-बुध भूल गयी है और अद्भुत मस्ती का प्याला हाथ लग गया है। सच्ची बात तो यह है कि मुझे सारे संसार में उस प्रियतम का जलवा दिखायी देने लगता है और मेरी सब कामनाएँ पूरी हो गयी हैं:

मेरे घर आया पिया हमरा। टेक।
वाह वाह वाहदत कीना शोर, अनहद बांसरी दी घंघोर।*
असां हुण पाया तख़त-लाहौर, मेरे घर आया पिया हमरा।†

जल गए मेरे खोट निखोट, लग गई प्रेम सच्चे दी चोट।‡
हुण सानूं ओस ख़सम दी ओट, मेरे घर आया पिया हमरा।

हुण क्या कंने साल वसाल, लग गया मस्त प्याला हाथ।§
हुण मेरी भुल गई ज़ात सफ़ात, मेरे घर आया पिया हमरा।

हुण क्या कंने बीस पचास, प्रीतम पाई असां वल झात।¶
हुण सानूं सभ जग दिसदा लाल, मेरे घर आया पिया हमरा।

हुण सानूं नहीं आस दी फास, बुल्ला शौह आया हमरे पास।
साईं पुजाई साडी आस, मेरे घर आया पिया हमरा।**

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 116)

* मेरे अन्दर अनहद शब्द की बाँसुरी की ध्वनि सुनायी दे रही है। यह ध्वनि परमात्मा का डंका बजा रही है। यह ध्वनि सबमें समायी हुई है।

† बुल्लेशाह के सतगुरु हज़रत इनायत शाह लाहौर के रहनेवाले थे। यहाँ संकेत सतगुरु के अन्दर प्रकट होने की ओर है। अनहद शब्द के अन्दर प्रकट होने के बाद सतगुरु का नूरी स्वरूप प्रकट हो जाता है।

‡ मेरे कर्मों का नाश हो गया। अन्दर सच्चा प्रेम जाग उठा और सच्चे प्रियतम का सहारा (ओट) मिल गया।

§ मुझे (शब्द की) मस्ती का प्याला मिल गया है। मिलाप के लिए प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं रही। मेरा पृथक अस्तित्व और पृथक गुण (ज़ात, सिफ़ात) समाप्त हो गये हैं और मैं प्रियतम में समाकर उसका रूप हो गयी हूँ।

¶ विरह की सब गिनतियाँ समाप्त हो गयी हैं। सारा संसार उस प्रियतम (लाल) का ही रूप दिखायी देने लगा है।

** **साईं...आस**=मालिक ने मेरी आशा व मुराद पूरी कर दी है।

मैं उडीकां कर रही

इस काफ़ी में सतगुरु की प्रतीक्षा का भावमय वर्णन किया गया है। कवि विरहिणी बनकर कहता है: मेरे प्रियतम, मैंने तेरे मार्ग में अपने नयन बिछा लिये हैं और हृदय को शैय्या बना लिया है। तू आकर मुझे अपने दर्शन से निहाल कर। मैं तेरी दासी हूँ। तेरे बिना मेरा कोई नहीं है। तू मेरा दिल न तोड़। मैं स्थान-स्थान पर तुझे ढूँढ़ रही हूँ। मुझे वह सन्देशवाहक नहीं मिल रहा जो तुझ तक मेरा सन्देश पहुँचा दे। जब से मैं प्रेम की डोली में चढ़ी हूँ मेरा दिल धड़क रहा है। मैं तुमसे मिलने के लिए व्याकुल हूँ। हाजी लोग मक्के के हज के लिए जाते हैं परन्तु मेरे हृदय में तेरे सलोने मुख को देखने की अभिलाषा है। क्या तेरा दिल पत्थर का हो चुका है कि उस पर मेरी आहों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता? तेरे योगी के रूप ने मुझे घायल कर दिया है और दु:खों के काँटों ने चारों ओर से मुझे घेर लिया है। प्रेम का पथ कठिन है। इसका फ़ासला तय नहीं हो पा रहा और मैं लगातार प्रियतम की प्रतीक्षा में खड़ी हूँ:

मै उडीकां कर रही, कदी आ कर फेरा। टेक।
मैं जो तैनूं आखया, कोई घल सुनेहड़ा।

चशमां सेज विछाईआं दिल कीता डेरा।*
लटक चलंदा आंवदा शाह इनाइत मेरा।

ओह अजेहा कौण है जा आखे जेहड़ा।
मैं विच की तकसीर है मैं बरदा तेरा।†

तैं बाझों मेरा कौण है दिल ढाह न मेरा।
ढूंढ शहर सभ भालया कासद घल्लां केहड़ा।‡

चढ़ियां डोली प्रेम दी दिल धड़के मेरा।
आओ इनाइत कादरी जी चाहे मेरा।

---

* तेरे लिए आँखों (चशमां) की सेज बिछायी है।

† **तकसीर**=भूल, ग़लती; **बरदा**=ग़ुलाम।

‡ **कासद**=सन्देश ले जानेवाला।

पहली पौड़ी प्रेम दी पुलसराते डेरा।*
हाजी मक्के हज करन, मैं मुख वेखां तेरा।†

आ इनाइत कादरी हत्थ पकड़ीं मेरा।‡
जल बल आहीं मारीआं दिल पत्थर तेरा।

पा के कुंडी प्रेम दी दिल खिचयो मेरा।
मैं विच कोई न आ पीआ विच परदा तेरा।§

दसत कंगण बाहीं चूड़ीयां गल नौरंग चोला।¶
रांझण मैनूं कर गया कोई रावल-रौला।**

आण नवें दु:ख पै गए कोई सूलां दा घेरा।††
मैं जाता दुख मैनूं आहा दुख पए घर सइयां।

सिर सिर भांबड़ भड़क्या सभ तपदीआं गइयां।‡‡
हुण आण बणी सिर आपणे सभ चुक गया झेड़ा।§§

---

* **पुलसराते**=मुसलमानों का विश्वास है कि अन्दर ऊपर के रूहानी मार्ग में पहले एक सूक्ष्म पुल है जिसके नीचे भयानक अग्नि जल रही है। यह पुल बाल से भी बारीक है। परमात्मा की भक्ति करनेवाले नेक लोग बिजली की तेज़ी से इस पुल को पार कर जाते हैं, परन्तु पापी जीवों का पैर फिसल जाता है और वे नरक की आग में गिर जाते हैं। बाबा फ़रीद ने भी लिखा है कि जिस पुल से जीव को गुज़रना पड़ता है, वह बाल से भी बारीक है: 'वालहु निकी पुरसलात कंनी न सुणी आइ॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1377)। साईं बुल्लेशाह समझाते हैं कि परमात्मा के सच्चे प्रेमी की पहली रूहानी मंज़िल पुलसरात को पार करके आती है।

† आत्मा के नौ द्वारों से सिमटकर अन्दर दसवीं गली में जाने को हज कह रहे हैं।

‡ साधक आन्तरिक रूहानी सफ़र, सतगुरु की बाँह पकड़कर करता है।

§ तुम्हारे द्वारा ताने गये परदे के सिवाय मुझे तुझसे दूर रखनेवाली कोई वस्तु नहीं।

¶ परमात्मा के सतगुरु रूप धारण करके देह-स्वरूप में प्रकट होने की ओर संकेत कर रहे हैं।

** राँझा ने मुझे भरमा लिया।

†† **नवें**=अधिक; **सूलां**=दु:ख।

‡‡ **तपदीआं**=जलती हुई अर्थात् दु:ख।

§§ **झेड़ा**=झगड़ा।

जेहड़ीआं साहवरे मंनीआं सोई पेके होवण।*
शौह जिन्हां ते मायल ए चढ़ सेजे सोवण।†

जिस घर कौंत न बोलया सोई खाली वेढ़ा।‡
बुल्ला शौह दे वासते दिल भड़कन भाहीं।§

औखा पैंडा प्रेम दा सो घटदा नाहीं।
दिल विच धक्के झेड़दे सिर धाईं मेरा।
मैं उडीकां कर रही कदी आ कर फेरा।

(अनवर अली रोहतकी: *कानूने इश्क़,* 16)

मैं क्योंकर जावां काअबे नूं

इस काफ़ी में बुल्लेशाह बाहर के तीर्थ-स्थानों पर प्रभु की खोज करने को व्यर्थ बताते हैं। आप कहते हैं कि मैं काबे को नहीं, तख़्त हज़ारे को जाना चाहता हूँ। तख़्त हज़ारे से आपका अभिप्राय प्रभु के निज-धाम की ओर भी समझा जा सकता है और मुर्शिद इनायत शाह की संगति की ओर भी। आप कहते हैं कि लोग काबा में जाकर सजदा करते हैं पर मैं मुर्शिद की हुज़ूरी में सजदा करना चाहता हूँ।

आप प्रभु को याद दिलाते हैं कि तूने हमें सृष्टि में भेजते समय वचन दिया था कि मैं तुम्हें वापस धुरधाम लाने के लिए स्वयं जगत् में आऊँगा। अब तू मेरे अवगुणों की ओर मत देख बल्कि अपने वचन का पालन कर। मुझे तैरना नहीं आता। यदि मैं भवसागर में डूब जाऊँ तो लज्जा तुझे आयेगी। मैंने सारा संसार ढूँढ़कर देखा है। तेरे जैसा और कोई नहीं है। तू भी अनोखा है और तेरी प्रीति भी अनोखी है। तू ही मुझ जैसे पापी को भवसागर से पार कर सकता है:

---

* **मंनीआं**=परवान।
† **मायल**=दयाल, प्रसन्न।
‡ **कौंत**=कन्त, पति, प्रीतम।
§ **भाहीं**=अग्नि।

मैं क्योंकर जावां काअबे नूं, दिल लोचे तख़्त हज़ारे नू। टेक*।
लोकी सजदा काअबे नूं करदे, साडा सजदा यार प्यारे नूं।†

औगुण वेख न भुल मीआं रांझा, याद करीं उस कारे नूं।
मैं अनतारू तरन न जाणां, शरम पई तुध तारे नूं।‡

तेरा सानी कोई नहीं मिलया, ढूंढ लिआ जग सारे नूं।§
बुल्ला शौह दी प्रीत अनोखी तारे औगुणहारे नूं।¶

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात,* 125)

मैं कुसुंबड़ा चुण-चुण हारी

इस काफ़ी में मायावी जगत् को 'कुसुंबड़े का बाग' कहा गया है। कुसुंभड़े के फूल देखने में सुन्दर प्रतीत होते हैं परन्तु इनका रंग कच्चा होता है और इनके काँटे जलन पैदा करनेवाले होते हैं। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि समझदार लोग कुसुंभड़े की कुछ 'फुहिया' चुनते हैं परन्तु मैं ऐसा अज्ञानी हूँ जिसने इसका बहुत बड़ा ढेर इकट्ठा कर लिया है। आपका भाव यह है कि जितना अधिक जीव मायावी पदार्थों में लिप्त होता है उतनी ही उसके दुःखों की गठरी भारी होती जाती है। आप काफ़ी के अन्त में कहते हैं कि मैं तो कमीनी, कुरूप और अवगुणों से भरी थी। मैं किसी तरह भी प्रियतम से मिलने के योग्य नहीं थी परन्तु मेरे सतगुरु इनायत शाह ने मुझ पर दया करके मुझे भवसागर से पार कर दिया:

---

* **काअबा**=मक्का में मुसलमानों का पूजा-स्थल; **तख़्त हज़ारा**=राँझे का गाँव।
† आत्मारूपी हीर कहती है कि मैं बाहरी पूजा-स्थलों पर जाने के स्थान पर अन्दर प्रियतम के निज-देश जाने और इसके आगे सजदा (प्रणाम) करने के लिए व्याकुल हूँ।
‡ यदि मैं भवसागर में डूब गयी तो तुझे लाज आयेगी।
§ **सानी**=बराबरी करनेवाला।
¶ वह प्रियतम पापियों को तारनेवाला है।

मैं कुसुंबड़ा चुण-चुण हारी। टेक।
एस कुसुंबे दे कंडे भलेरे अड़ अड़ चुनड़ी पाड़ी।
एस कुसुंबे दा हाकम करड़ा ज़ालम ए पटवारी।

एस कुसुंबे दे चार मुकद्दम मुआमला मंगदे भारी।*
होरनां चुगया फुहिया फुहिया मैं भर लई पटारी।†

चुग चुग के मैं ढेरी कीता लत्थे आण बपारी।‡
औखी घाटी मुशकल पैंडा, सिर पर गठड़ी भारी।

अमलां वालीयां सभ लंघ गईआं, रह गई औगुणहारी।§
सारी उमरा खेड गवाई ओड़क बाज़ी हारी।

अलसत केहा जद अक्खियां लाईआं, हुण क्यों यार विसारी।¶
इक्को घर विच वसदेआं रसदेआं, हुण क्यों रही न्यारी।

मैं कमीनी कुचज्जी, कोहजी, बेगुण कौन बिचारी।
बुल्ला शौह दे लायक नाहीं, शाह इनायत तारी।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 126)

---

* संसाररूपी कुसुंबड़े के बाग़ का शासक (काल) बहुत निर्दयी है। उसका पटवारी (मन) भी बहुत निर्दयी है। **चार मुकद्दम**=यहाँ मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार की ओर संकेत है।

† **फुहिया फुहिया**=थोड़ा-थोड़ा। समझदार लोग माया में लीन न हुए, परन्तु मैं माया की होकर रह गयी।

‡ **बपारी**=धर्मराज के दूत। जब धर्मराज के दूतों ने लेखा माँगा तो कर्मों का भारी ऋण सिर पर निकला।

§ जिन्होंने भक्ति की पूँजी इकट्ठी की, वे झटपट पार हो गये। जिन्होंने सारी आयु मायावी खेलों में गुज़ारी, वे बाज़ी हार गये।

¶ यह विवरण *क़ुरान शरीफ़* से है। परमात्मा को कहते हैं कि तू सृष्टि रचे जाने के समय ही हमारा महबूब बन गया था तो अब हमारी सार क्यों नहीं लेता? अन्दर रहता हुआ भी हमें अपने से दूर क्यों रखता है?

मैं गल्ल ओथे दी करदा हां

इस काफ़ी में साईं जी कहते हैं कि मैं संकोच के साथ प्रभु के देश का एक रहस्य खोलने को विवश हूँ। आप कहते हैं कि जब परमात्मा ने सृष्टि की रचना की तो आत्माओं को यह कहकर संसार में भेजा कि मैं तुम्हें वापस मुक़ामे-हक़ में लाने के लिए संसार में स्वयं आऊँगा। परमात्मा यहाँ आता है तो शरीर का परदा रख लेता है, जिस कारण जीवों को उसे पहचानने में भ्रम लग जाता है।

आप कहते हैं कि परमात्मा की खोज में मेरा बलवान हाकिम से वास्ता है। यदि मीरी हो जाऊँ अर्थात् जीत जाऊँ तो भी फाडी, भाव हारा हुआ गिना जाता हूँ। परमात्मा द्वारा दी गयी पूँजी या सम्पत्ति मेरे पास व्यर्थ पड़ी है और मैं किये हुए कर्मों का लेखा भोग रहा हूँ। पहले मैं पूँजी चोरों (विषयों-विकारों) को दे देता हूँ, फिर मूर्खों की भाँति पश्चात्ताप करता हूँ और चोरों की खोज करता हूँ, अर्थात् उन्हें पकड़ने का प्रयत्न करता हूँ। मेरा दुर्भाग्य है कि वह प्रियतम न मेरे साथ ख़ुश होता है, न ही मेरी प्रार्थना मानता है। उसकी ओर मुँह करूँ तो वह मुझसे दूर भागता है। फिर भी मैं उसके सामने मिन्नतें करने को विवश हूँ। मुझे इस संसार में आकर कुछ भी नहीं मिला। परमात्मा और उसकी रचना बेअन्त है। इसके न इधर के किनारे का पता लगता है न उधर के। भवसागर के बहाव में मेरे पाँव नहीं जमते और मैं बुरी तरह डुबकियाँ खाता हुआ बहता जा रहा हूँ:

मैं गल्ल ओथे दी करदा हां,
पर गल्ल करदा वी डरदा हां। टेक।
नाल रूहां दे लारा लाया, तुसीं चलो मैं नाले आया।
एथे परदा चा बणाया, मैं भरम भुलाया फिरदा हां।

नाल हाकम दे खेल असाडी, जे मैं मीरी तां मैं फाडी।
धरी धराई पूंजी तुहाडी, मैं अगला लेखा भरदा हां।

दे पूंजी मूरख झुंजलाया, मगर चोरां दे पैड़ा लाया।
चोरां दी मैं पैड़ लयाया, हर शब धाड़े धड़दा हां।*

ना नाल मेरे ओह रजदा ए, ना मिन्नत कीती सजदा ए।
जां मुड़ बैठां तां भजदा ए, मुड़ मिन्नतज़ारी करदा हां।

की सुख पाया मैं आण इत्थे, ना मंजल न डेरे जित्थे।†
घंटा कूच सुणावां कित्थे, नित ऊठ कचावे कड़दा हां।‡

बुल्लेशाह बेअंत डूंघाई, दो जग बीच न लगदी काई।
उरार पार दी ख़बर न काई, मैं बे सिर पैरीं तरदा हां।
मैं गल्ल ओथे दी करदा हां, पर गल्ल करदा वी डरदा हां।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात,* 132)

मैं चूहड़ेटड़ी आं

इस काफ़ी में नम्रतावश अपने आपको प्रभु के दरबार की 'चूहड़ेटड़ी' (मेहतरानी) कहते हैं। आप कहते हैं कि ध्यान की छजली और ज्ञान के झाड़ू से विषयों-विकारों का कूड़ा-करकट अपने अन्तर से बाहर फेंकने की कोशिश करती हूँ। मैं बेगार से मुक्त हो गयी हूँ। भाव यह है कि इन्द्रियों के भोगों और सांसारिक धन्धों में फँसा जीव मन और काल का बेगारी है। परन्तु सिमरन और ध्यान (ज्ञान, ध्यान) में लगे जीव अपना असली काम कर रहें हैं। आप संकेत कर रहे हैं कि मैं मन और काल का काम करने के स्थान पर कुल-मालिक का काम कर रही हूँ अर्थात् विषयों-विकारों को

* **धाड़े धड़दा**=चोरों के वार रोकना, मैंने चोरों की खोज कर ली है और हर रात उनके वार रोकता हूँ।

† यहाँ न मंज़िल है न रहने का ठिकाना अर्थात् यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं, इसलिए मैं जब से संसार में आया हूँ, मुझे कभी सच्चा सुख नहीं मिला।

‡ मैं संसार से कूच करने का घण्टा कहाँ बजाऊँ? मैं प्रतिदिन ऊँट की काठी (कचावे) की भाँति कसा रहता हूँ।

त्यागकर मालिक की बन्दगी में लग गयी हूँ। तेरे बिना कोई मेरा अपना नहीं है। मैं किस के पास दया और सहायता के लिए पुकार करूँ। तू ही दया करके मुझे अपने दर्शन दे:

मैं चूहड़ेटड़ी आं सच्चे साहिब दी सरकारों। टेक।
ध्यान दी छज्जली ज्ञान का झाड़ू, काम क्रोध नित झाड़ों।
मैं चूहड़ेटड़ी आं सच्चे साहिब दी सरकारों।

काज़ी जाणे हाकम जाणे फ़ारग़खती बेगारों।*
दिनें रात मैं एहो मंगदी दूर न कर दरबारों।

तुध बाझों मेरा होर न कोई, कैं वल्ल करूं पुकारों।
बुल्ला शौह इनाइत करके बखरा मिले दीदारों।†

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात,* 130)

मैं पुच्छां शौह दीआं वाटां नी

इस काफ़ी में कहते हैं कि प्रभु-मिलन के इच्छुक व्यक्ति को पता होना चाहिये कि वह प्रियतम स्वयं उसके अन्दर बैठा है परन्तु अहं में फँसा हुआ जीव उसको देख नहीं सकता। जीव को उसके नाम का सिमरन करना चाहिये और रचना के प्रेम के स्थान पर रचनाकार से प्रेम करना चाहिये। मनुष्य के संकट का सबसे बड़ा कारण यह है कि वह भक्त बनने की बजाय भगवान् बन बैठा है: 'बुल्ला रब्ब बण बैठों आपे, तद दुनिया दे पए सयापे'। अहं का त्याग करके ही मनुष्य इस संकट से मुक्त हो सकता है:

मैं पुच्छां शौह दीआं वाटां नी,
कोई करे असां नाल बातां नी। टेक।‡

* **काज़ी**=मन; **हाकम**=काल; **फ़ारग़खती बेगारों**=मैं बेगार से छूट गयी हूँ।

† **बखरा**=भाग, इनायत शाह की शरण में आने के कारण मुझे तेरे दर्शनों का भाग मिल जाये।

‡ **वाटां**=रास्ते।

भुल्ले रहे नाम न जपया, ग़फ़लत अंदर यार है छपया।*
ओह सिध पुरखा तेरे अंदर धसया, लग्गियां नफ़स दीआं चाटां नी।†

जप लै ना हो भोली भाली, मत तूं सद्दएं मुख मुकाली।‡
उलटी प्रेम नगर दी चाली, भड़कण इश्क़ दीआं लाटां नी।

भोली ना हो, हो सयाणी, इश्क़ नूर दा भर लै पानी।
इस दुनिया दी छोड़ कहाणी, एह यार मिलण दीआं घातां नी।§

बुल्ला रब्ब बण बैठों आपे, तद दुनिया दे पए सयापे।
दूती वेहड़े दुश्मन मापे, सब कड़क पईआं आफ़ातां नी।¶

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 133)

मैं विच मैं ना रह गई

प्रस्तुत काफ़ी में यह भाव प्रकट करते हैं कि प्रभु का प्रेम सहज में अहं भाव का नाश कर देता है। प्रियतम से मिलन होने पर अपनी सुध-बुध खो जाती है। यह गूँगे द्वारा गुड़ खाने की अवस्था है जो इसका स्वाद नहीं बता सकता। इस अवस्था में आँखें पल-पल प्रियतम का दर्शन करना चाहती हैं और उसको देखकर विस्मय में डूब जाती हैं।

इस बात के साथ-साथ काफ़ी में दो अन्य भाव भी प्रकट किये गये हैं। पहला यह कि प्रेम का मार्ग सरल या सुगम नहीं है। इसमें लोक-लाज को भी छोड़ना पड़ता है और हर प्रकार का त्याग करना पड़ता है। दूसरा भाव यह प्रकट किया गया है कि जिस आत्मारूपी हीर का प्यार प्रबल हो जाता

* **ग़फ़लत**=लापरवाही, अज्ञानता।

† **सिध पुरखा**=पूर्ण पुरुष प्रभु; **लग्गियां...चाटां**=परन्तु ख़ुदी और विकारों के नशे (चाटां) के कारण वह अन्दर दिखायी नहीं देता।

‡ अज्ञान छोड़कर नाम जप ले। यह न हो कि तुझे मुकाली अर्थात् निर्लज्ज कहा जाये।

§ संसार के व्यर्थ के धन्धे छोड़ दे। यह प्रियतम से मिलाप का अवसर है।

¶ **दूती**=विरोधी; **वेहड़े**=संसार के लोग; **आफ़ातां**=मुसीबतें। तू अहं में फँस गयी है। इसी कारण तू मन (माया) और विषयों-विकारों के प्रभाव के नीचे है।

है उसको अपने साथ मिलाने के लिए राँझा, योगी अर्थात् सतगुरु का रूप धारण करके स्वयं संसार में आता है:

मैं विच मैं ना रह गई राई, जब की पिया संग प्रीत लगाई।*
जद वसल वसाल बणाएगा, तद गूंगे दा गुड़ खाएगा।
सिर पैर न आपणा पाएगा, मैं एह होर न किसे बणाई।†

होए नैण नैणां दे बरदे, दर्शन सै कोहां ते करदे।‡
पल पल दौड़न मारे डर दे, तैं कोई लालच घत्त भरमाई।§

हुण असां वहदत विच घर पाया, वासा हैरत दे संग आया।¶
जीवन जंमण मरन वंजाया, आपणी सुध-बुध रही न काई।**

मैं जाता सी इश्क़ सुखाला, चौंह नदीआं दा वहण उछाला।††
कदी ते अग्ग भड़के कदी पाला, नित बिरहों अग्ग लगाई।

डउं डउं इश्क़ नक़्क़ारे वजदे, आशिक़ वेख उत्ते वल भजदे।
तड़ तड़ तिड़क गए लड़ लज्ज दे, लग गया नेहों तां शर्म सिधाई।‡‡

प्यारे बस कर बहुती होई, तेरा इश्क़ मेरी दिलजोई।
तैं बिन मेरा सका न कोई, अंमा बाबल भैण न भाई।

कदी जा असमानी बैह्न्दे हो, कदी इस जग दा दु:ख सैह्न्दे हो।
कदी पीरे-मुग़ां बण बैह्न्दे हो, मैं तां इकसे नाच नचाई।§§

* प्रियतम की प्रीति ने अहं का नाश कर दिया।

† प्रियतम से मिलाप की अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। इस दशा में अपनी सुध-बुध नहीं रहती

‡ **बरदे**=नौकर।

§ 'मारे डर दे' के स्थान पर पाठ 'मूल ना डरदे' मिलता है। **घत्त**=पाकर।

¶ **वहदत**=अद्वैत; भाव परमात्मा से मिलाप हो गया; **हैरत**=हैरानी; यह अद्भुत अवस्था है।

** **जीवन...वंजाया**=आवागमन का नाश हो गया।

†† प्रेम चारों नदियों के बहने की तरह प्रबल है।

‡‡ **लग...सिधाई**=प्रेम ने लोक-लाज समाप्त कर दी।

§§ **पीरे-मुग़ां**=साक़ी अर्थात् सतगुरु।

तेरे हिजरे विच मेरा हुजरा ए, दुःख डाढा मैं पर गुज़रा ए।*
कदे हो मायल मेरा मुजरा ए, मैं तैथों घोल घुमाई।†

तुध कारन मैं ऐसा होया, नौ दरवाज़े बंद कर सोया।
दर दसवें ते आण खलोया, कदे मंन मेरी अशनाई।‡

बुल्ला शौह मैं तेरे वारे हां, मुख वेखण दे वणजारे हां।
कुझ असीं वी तैनूं प्यारे हां, कि मैं ऐवें घोल घुमाई हां।§

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 34)

मैं वैसां जोगी दे नाल

हीर का राँझा के साथ प्रेम था परन्तु माँ-बाप ने उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी शादी सैदे खेड़े के साथ कर दी। हीर ने सैदे को अंगीकार नहीं किया और राँझा को सन्देश भेजा। राँझा योगी का वेष धारण करके खेड़ों के गाँव पहुँचा और वहाँ से हीर को लेकर चम्पत हो गया। यह प्रतीकमय वर्णन है। राँझा से भाव प्रभु, योगी से सतगुरु, खेड़े से मन और हीर से आत्मा है। इस काफ़ी में हीर कहती है कि मैं माथे पर प्रेम का तिलक लगाकर योगी के साथ जाऊँगी। मैं किसी के रोकने से रुक नहीं सकती। यह योगी नहीं है। यह मेरे मन का मीत है। खेद है कि मैने पहले प्रेम क्यों नहीं किया। अब उसका दर्शन करके मेरी सुध-बुध खो गयी है। योगी ने प्रेम की मीठी बातें सुनाकर मेरा मन हर लिया है। यह योगी स्वयं प्रभु का रूप है जिसने अनहद की मुरली के जादू से हीर का मन लूट लिया है।

---

* **हिजरे**=हिजर अर्थात् वियोग; **हुजरा**=मन्दिर; मेरा ठिकाना तेरे हिजर में है अर्थात् मेरे अन्दर तेरा वियोग समा गया है।

† **मायल**=दयालु; **मुजरा**=नाच अर्थात् बिनती।

‡ **अशनाई**=प्रेम।

§ 'मैं ऐवें घोल घुमाई' का पाठ 'कि महियों घोल गुमाई हां' भी मिलता है।

हीर कहती है कि यह योगी केवल आज ही नहीं आया है। मूसा के साथ तूर पर्वत पर बातें करनेवाला भी यही था, प्रभु का सन्देशवाहक (आबदा रसूल) कहलानेवाला भी यही था, सोहनी को नदी में डुबोनेवाला और महिवाल बनकर उससे स्नेह करनेवाला भी वही था। इसी प्रकार जब खेड़े हीर से शादी करके उसे ले जाने लगे तो अपने सिर पर ढोल रखकर बजानेवाला भी वही था। यह बहुत सुन्दर संकेत है। इससे पता चलता है कि प्रभु किसी एक समय में नहीं बल्कि समय-समय पर सतगुरु का रूप धारण करके संसार में आता रहता है। साईं बुल्लेशाह ने कहीं सतगुरु को राँझा कहा है तो कहीं पुन्नू, महीवाल और ढोला कहा है। इसी तरह आपने उसको राम, कान्ह, ईसा और मुहम्मद भी कहा है। इसके साथ ही उसे मंसूर, ज़करीया, याय्या, शम्स तब्रेज़ आदि का रूप धारण करके आनेवाला भी कहा है। यह सब अलग-अलग देशों, राष्ट्रों, कालों और जातियों में हुए हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रभु के सतगुरु का रूप धारण करके आने को किसी विशेष समय, स्थान, राष्ट्र या जाति से नहीं बाँधा जा सकता। वह प्रभु जब चाहे और जहाँ चाहे प्रेमी आत्माओं को चिताने के लिए संसार में आ सकता है:

मैं वैसां जोगी दे नाल मत्थे तिलक लगा के।*
मैं वैसां न रहसां होड़े, कौण कोई मैं जांदी नू मोड़े।†
मैनूं मुड़ना होया मुहाल, सिर ते मेह्णा चा के।‡

जोगी नहीं एह दिल दा मीता, भुल गई मैं प्यार न कीता।
मैंनूं रही न कुझ संभाल, उस दा दर्शन पा के।§

एस जोगी मैंनूं कहीआं लाइयां, हेठ कलेजे कुंडीआं पाईआं।
इश्क़ दा पाया जाल, मिट्ठी बात सुणा के।¶

---

* **वैसां**=जाऊँगी।

† **न रहसां**=न रहूँगी।

‡ **मुहाल**=मुश्किल; **चा के**=उठाकर

§ **संभाल**=होश।

¶ प्यार में फँसा लिया।

मैं जोगी नूं ख़ूब पछाता, लोकां मैंनूं कमली जाता।
लुट्टी झंग सयाल, कंनीं मुंदरां पा के।

जे जोगी घर आवे मेरे, मुक जावण सब झगड़े झेड़े।
लां सीने दे नाल, लक्ख लक्ख शगन मना के।

माए नी इक जोगी आया, दर साडे उस धूआं पाया।*
मंगदा हीर सयाल, बैठा भेस वटा के।

ताअने ना दे फुफ्फी ताई, एथे जोगी नूं किसमत लियाई।
हुण होया फ़ज़ल कमाल, आया है जोग सिधा के।†

माही नहीं कोई नूर इलाही, अनहद दी जिस मुरली वाही।
मुठिओस सु हीर सयाल, डाहडे कामण पा के।

लक्खां गए हज़ारां आए , उस दे भेत किसे न पाए।
गल्लां तां मूसे नाल, पर कोह तूर चढ़ा के।‡

आबदा रसूल कहाया, विच मअराज बुराक मंगाया।§
जबराईल पकड़ लै आया, हूरां मंगल गा के।¶

एस जोगी दे सुणो अखाड़े, हसन-हुसैन नबी दे प्यारे।**
मारओस विच जद्दाल, पाणी बिन तरसा के।††

एस जोगी दी सुणो कहाणी, सोहणी डुब्बी डूंघे पाणी।
फिर रलया महींवाल, सारा रख़त लुटा के।‡‡

---

* **दर...पाया**=द्वार पर धूनी रमाई।

† **फ़ज़ल कमाल**=पूर्ण दया; **जोग...के**=पूर्ण योगी बनकर।

‡ परमात्मा ने मूसा से कोहतूर पर बातें कीं।

§ **आबदा रसूल**=परमात्मा का सन्देश लानेवाला; **मअराज**=ऊपर की रूहानी चढ़ाई; **बुराक**=घोड़ा जिस पर हज़रत मुहम्मद ने अन्दर सवारी की। यह सारा सांकेतिक वर्णन है।

¶ **जबराईल**=परमात्मा का पैग़ाम लानेवाला फ़रिश्ता; **हूरां**=परियाँ; **मंगल...के**=मंगल गीत गाकर; संकेत रूहानी मण्डलों के शब्द की ओर है।

** **अखाड़े**=लड़ाई के मैदान; **हसन-हुसैन**=हज़रत मुहम्मद के दोहते।

†† **मारओस**=उसको मार दिया; **जद्दाल**=युद्ध।

‡‡ **रख़त**=दौलत।

डावां डोली लै चल्ले खेड़े, मुढ कदीमी दुश्मन जेहड़े।*
रांझा तां होया नाल, सिर ते टंमक बचा के।†

जोगी नहीं कोई जादू साया, भर भर प्याला ज़ौक पलाया।‡
मैं पी पी होई निहाल, अंग बिभूत रमा के।§

जोगी नाल करेंदे झेड़े, केहे पा बैठे काज़ी घेरे।
विच कैदो पाई मुकाल, कूड़ा दोष लगा के।¶

बुल्ला मैं जोगी नाल व्याही, लोकां कमलयां खबर न काई।
मैं जोगी दा माल, पंजे पीर मना के।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 65)

रौह रौह वे इश्क़ा मारया ई

इस काफ़ी में परमात्मा और प्रेम को एक मानकर सम्बोधित किया गया है। आपने एक अन्य स्थान पर भी लिखा है: 'इश्क़ अल्ला दी ज़ात लोकां दा मेहणा।' यहाँ आप परमात्मा को प्रेम और उलाहने से ताने देते हैं और उसकी बेपरवाही के गुण भी गाते हैं। आप कहते हैं कि परमात्मा प्रेम के अनेक नाटक रचता है। हर नाटक में अनोखी झलक होती है। इश्क़े-हक़ीक़ी का आधार वही है और इश्क़े-मजाज़ी का भी। इसी प्रकार केवल ईसा, मूसा, सुलेमान, लैला-मजनूँ, हीर-राँझा, सस्सी-पुन्नू, राम, कृष्ण आदि गुण सम्पन्न व्यक्तियों में ही नहीं, कौरवों, फ़रऔन, नमरूद, हिरण्यकश्यप, रावण आदि गुण-विहीन व्यक्तियों में भी वही प्रभु विद्यमान है।

---

* **कदीमी**=पुराने।

† **टंमक**=ढोल।

‡ **साया**=प्रेत; **ज़ौक**=शौक़, प्रेम।

§ **बिभूत**=राख।

¶ **कैदो**=हीर का चाचा जिसने उसके विरुद्ध चुग़ली की थी; **मुकाल**=बदनामी; **कूड़ा**=झूठा।

आप प्रभु की बेपरवाही और विचित्र लीलाओं की ओर संकेत करते हुए कहते हैं: हे प्रियतम, तूने स्वयं ही आदम को स्वर्ग लोक में गेहूँ खाने से मना किया, स्वयं ही शैतान को उसके पीछे लगाकर गेहूँ खाने के लिए प्रलोभन दिया और स्वयं ही धरती के दु:ख सहने के लिए उसे देव-लोक से निकाल दिया। तूने स्वयं बिना पिता के ईसा का जन्म होने दिया, स्वयं ही हज़रत नूह को प्रलय में घेर लिया और उसका अपने पुत्र से विवाद खड़ा करा दिया। तूने स्वयं मूसा के अन्दर अपना प्रकाश देखने की आकांक्षा पैदा की और फिर स्वयं ही तूर पर्वत, जिस पर मूसा तेरा प्रकाश देखने के लिए खड़ा था, जलाकर राख कर दिया। तूने ही स्वयं हज़रत इब्राहीम के बेटे इस्माइल का वध कर दिया और तेरी इच्छा से ही महात्मा यूनुस को मछली हड़प गयी।

यह तेरी ही विचित्र लीला थी कि हज़रत याक़ूब के सुन्दर बेटे यूसुफ़ को उसके ईर्ष्यालु भाइयों ने कुएँ में फेंक दिया। वही यूसुफ़ एक कौड़ी अथवा सूत की एक अट्टी के मूल्य बिक गया। उसी यूसुफ़ को मिस्र की प्रसिद्ध तथा अति सुन्दर रानी ज़ुलैख़ा ने स्वप्न में देखा। वह उस पर मोहित हो गयी परन्तु यूसुफ़ ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। यह तेरा नाटक है।

हे प्रियतम, तूने सुलेमान जैसे गुणसम्पन्न और बुद्धिमान सम्राट को भट्ठी झोंकने पर लगा दिया, तूने यहूदियों के पितामह हज़रत इब्राहीम को चिता पर चढ़ा दिया। तूने साबर जैसे सच्चे प्रेमी के शरीर में कीड़े पैदा कर दिये और तूने ही हज़रत मुहम्मद के दोहते और इमाम अली के सुपुत्र हसन को विष दिलाकर मरवा दिया। तूने स्वयं मंसूर को सत्य का ज्ञान दिया, स्वयं उससे 'मैं सत्य हूँ' का नारा लगवाया और स्वयं ही उसे अपराधी घोषित करवाकर सूली पर चढ़वा दिया। तूने ही प्रेम में मस्त राहब का पित्ता निकलवा लिया और तूने ही ज़करीया के सिर पर आरा चलवा दिया।

हे अलबेले प्रियतम, तूने आरमीनिया से आकर भारत में बसे प्रसिद्ध सूफ़ी सरमद का गला कटवा दिया। तूने ही शम्स तब्रेज़ के मुख से मुर्दे को यह हुक्म दिलवाया, "तू ख़ुदा के हुक्म से खड़ा हो जा।" मुर्दा इस हुक्म से न खड़ा हुआ। फिर शम्स ने यह हुक्म दिया, "तू मेरे हुक्म से खड़ा

हो जा।" इस पर मुर्दा खड़ा हो गया और शम्स तब्रेज़ पर परमात्मा की बराबरी करने का दोष लगाकर उसकी खाल उतरवा दी गयी। ये सब कुछ तेरी अपनी मरज़ी से हुआ।

आप प्रभु को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तेरी विडम्बना आश्चर्यमय है। शाह शरफ़ ने बारह वर्ष तक नदी में खड़े होकर प्रेम के हठ का पालन किया। लैला और मजनूँ को प्रेम में क्या-क्या दु:ख सहन करने पड़े! हीर-राँझा को प्रेम के काँटों-भरे मार्ग पर चलना पड़ा और साहिबा के प्रेम के कारण उसके भाइयों ने उसके प्रेमी मिर्ज़ा को मार डाला। यह तेरी ही लीला है कि सस्सी पुन्नू की खोज में मरुस्थल में झुलसकर मर गयी, सोहनी महिवाल के लिए कच्चे घड़े पर नदी पार करती हुई डूब गयी और रोडा को जलाली से प्रेम करने के दोष में उसके क़साई पिता ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

आप फिर प्रभु को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तूने कर्बला की लड़ाई में हसन-हुसैन नामक भाइयों को जो हज़रत अली के सुपुत्र और पैग़म्बर मुहम्मद के दोहते थे, की सेना को पानी न मिलने के कारण शत्रुओं से मरवा डाला। हसन-हुसैन की पानी की मश्कों को चूहों ने कुतर दिया और पानी न मिलने के कारण उनकी सेना कर्बला के मैदान में कट मरी।

यह तेरी ही लीला है कि कौरवों और पांडवों में, जो एक ही वंश के थे, युद्ध हुआ और अठारह अक्षौहिणी सेना नष्ट हो गयी। यह भी तेरी ही लीला थी कि नमरूद, फ़रऔन, रावण, हिरण्यकश्यप तथा कंस के हृदय में अहंकार उत्पन्न हो गया और उन्होंने अपने आपको प्रभु कहना शुरू कर दिया। तूने स्वयं उनमें नीच भावना उत्पन्न की और स्वयं ही नमरूद को मच्छर से मरवा दिया, फ़रऔन को नील नदी में डुबो दिया, रावण को श्री राम द्वारा, हिरण्यकश्यप को नरसिंह और कंस को श्रीकृष्ण द्वारा मरवा डाला।

इसी प्रकार तूने स्वयं हसन को इमाम अर्थात् मुखिया बनवाया और स्वयं ही दमिश्क के ख़लीफ़ा से युद्ध करवाकर उसे मरवा डाला।

आप काफ़ी के अन्त में कहते हैं कि यह भी उस प्रियतम की विडम्बना है कि भारत में मुग़ल सम्राट नष्ट होते जा रहे हैं और उनके स्थान पर लोई

पहननेवाले ख़ालसा उन्नत हो रहे हैं। अपने आपको कुलीन (अशराफ़) समझनेवाले दुर्गति को प्राप्त हो रहे हैं। आप नम्रतापूर्वक कहते हैं कि मैं उस प्रभु का तुच्छ फ़क़ीर हूँ परन्तु मेरा नाम संसार में सदैव जगमगाता रहेगा क्योंकि उस प्रभु ने अपने पवित्र प्रकाश से मेरा सृजन किया है:

रौह रौह वे इश्क़ा मारया ई, कहु किस नूं पार उतारया ई।
आदम कणकों मन्हां कराया, आपे मगर शैतान दुड़ाया।
कढ बहिश्तों ज़मीन रूलाया, केड पसार पसारया ई।

ईसा नूं बिन बाप जंमाया, नूहे पर तूफ़ान मंगाया।
नाल पिओ दे पुत्तर लड़ाया, डोब ओहनां नूं मारया ई।

मूसा नूं कोह-तूर चढ़ायो, अस्माइल नूं ज़िब्हा करायो।
यूनस मच्छी तों निगलायो, की ओहनां नूं रुतबे चाढ़या ई।

खवाब ज़ुलैखा नूं दिखलायो, यूसफ़ खूह दे विच पवायो।
भाइआं नूं इलज़ाम दिवायो, तां मरातब चाढ़या ई।

भट्ठ सुलेमान तों झुकायो, इब्राहिम चिखा विच पायो।
साबर दे तन कीड़े पायो, हसन ज़हर दे मारया ई।

मनसूर नूं चा सूली दित्ता, राहब दा कढवायो पित्ता।
ज़करीआ सिर कलवत्तर दित्ता, फेर ओहनां कंम की सारया ई।

शाह सरमद दा गला कटायो, शमस ते जां सुखन अलायो।
कुम-ब-इज़नी आप कहायो, सिर पैरो खल्ल उतारया ई।

एस इश्क़ दे बड़े अडंबर, इश्क़ न छुपदा बाहर अंदर।
इश्क़ कीता शाह शरफ़ कलंदर, बारां वरे दरिया विच ठारया ई।

इश्क़ लैला दे धुंमां पाइंयां, तां मजनू ने अक्खियां लाईंयां।
ओहनूं धारां इश्क़ चुंघाइंया, खूहे बरस गुज़ारया ई।

इश्क़ होरीं हीर वल धाए, तांहीएं रांझे कंन पड़वाए।
साहिबां नू जद वयाहुण आए, सिर मिरज़े दा वारया ई।

सस्सी थलां दे विच रुलाई, सोहणी कच्चे घड़े रुढ़ाई।
रोडे पिच्छे गल्ल गवाई, टुकड़े कर कर मारया ई।

फ़ौजां कतल कराईयां भाइयां, मश्कां चूहयां तों कटवाईयां।
डिट्ठी कुदरत तेरी साईआं, सिर तैथों बलहारया ई।

कौरों पांडों करन लड़ाइयां, अठारां खूहणीया तदों खपाइया।
मारन भाई सक्यां भाइयां, की ओथे नयां नितारिया ई।

नमरूद ने वी ख़ुदा सदाया, उस ने रब नूं तीर चलाया।
मच्छर तों नमरूद मरवाया, कारूं ज़मीं निघारया ई।

फ़रऔन ने जदों ख़ुदा कहाया, नील नदी दे विच आया।
ओसे नाल अशटंड जगाया, ख़ुदियों कर तन मारया ई।

लंका चढ़ के नाद बजायो, लंका राम कोलों लुटवायो।
हरनाकश कित्ता बहिश्त बनायो, ओह विच दरवाज़े मारया ई।

सीता दहसर लई बेचारी, तद हनुवंत ने लंका साड़ी।
रावण दी सभ ढाह अटारी, ओड़क रावण मारया ई।

गोपियां नाल की चज्ज कमाया, मक्खण कान्ह तों लुटवाया।
राजे कंस नूं पकड़ मंगाया, बोदियों पकड़ पछाड़या ई।

आपे चा इमाम बणाया, उस दे नाल यज़ीद लड़ाया।
चौधीं तबकीं शोर मचाया, सिर नेज़े ते चाढ़या ई।

मुग़लां ज़हर प्याले पीते, भूरयां वाले राजे कीते।
सभ अशराफ़ फिरन चुप्प कीते, भला ओन्हा नूं झाड़या ई।

बुल्ला शाह फ़कीर विचारा, कर कर चलया कूच नगारा।
रोशन जग विच नाम हमारा, नूरों सिरज उतारया ई।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 65)

रातीं जागें करें इबादत

यह काफ़ी जितनी छोटी है उतनी भावपूर्ण है। इसमें साईं बुल्लेशाह की नम्रता और कुल-मालिक की आस में रहते हुए उसकी भक्ति करने की आवश्यकता का संक्षिप्त परन्तु भावमय वर्णन मिलता है। आप स्वान या कुत्ते का उदाहरण देते हैं जो रात भर अपने मालिक की चौकीदारी करता है, रात भर मालिक के द्वार पर भौंकता रहता है और दिन में गन्दगी के ढेर पर सोया रहता है। उस बेचारे को चाहे सैकड़ों जूते पड़ें और मालिक भी दुत्कार दे, वह मालिक का द्वार छोड़कर नहीं जाता। आप मालिक की भक्ति, सेवा और आज्ञा में रहने की महत्ता दर्शाते हैं। 'बंदगी' के शाब्दिक अर्थ आज्ञाकारिता, अधीनता और राज़ी-बर-रज़ा हैं। सूफ़ी साहित्य में एक दास और उसके स्वामी में हुए प्रश्नोत्तर का संक्षिप्त उल्लेख मिलता है:

मालिक: तेरा नाम क्या है?
सेवक: जिस नाम से तू मुझे पुकारे, मेरा नाम हो जायेगा।
मालिक: तेरा भोजन क्या है?
सेवक: जो तू मुझे खाने के लिए दे, वही मेरा भोजन है।
मालिक: तू कैसे वस्त्र पहनेगा?
सेवक: जैसे तू मुझे देगा।
मालिक: तू क्या काम करेगा?
सेवक: जो काम करने के लिए तू हुक्म देगा।
मालिक: तेरी क्या इच्छा है?
सेवक: दास की कोई इच्छा नहीं होती। जो मालिक की इच्छा है, वही दास की होती है।

डॉ. इकबाल कहते हैं कि स्वामी बनने से दास बनने में अधिक शान है क्योंकि भक्ति जैसी बहुमूल्य वस्तु कोई नहीं और इसकी तड़प जैसी बड़ी कोई सौगात नहीं:

मुकामे बंदगी दे कर ना लूं शाने खुदाबंदी।
मत आए बे-बहा है दरदे सोज़े आरज़ू मंदी।

भक्ति की यह बड़ाई कैसे मिले? साईं बुल्लेशाह कहते हैं: 'बुल्ले शाह कोई वसत विहाज लै। नहीं ते बाज़ी लै गए कुत्ते, तैत्थों उत्ते।' व्यापार करनेवाली वस्तु परमात्मा का नाम या कलमा है जो मनुष्य को दुनिया की भक्ति से छुड़ाकर परमात्मा की भक्ति में ले आता है।

गुरु तेग़ बहादुर ने स्वान (कुत्ता) के उदाहरण द्वारा यही भाव इस प्रकार प्रकट किया है:

सुआमी को ग्रिहु जिउ सदा सुआन तजत नही नित॥
नानक इह बिधि हरि भजउ इकि मनि हुइ इक चिति॥
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1428)

रातीं जागें करें इबादत।
रातीं जागण कुत्ते, तैथों उत्ते।
भौंकणौ बंद मूल न हुंदे।
जा रूड़ी ते सुत्ते, तैत्थों उत्ते।
ख़सम आपणे दा दर न छड्डदे।
भावें वज्जण जुत्ते, तैत्थों उत्ते।
बुल्ले शाह कोई वसत विहाज लै।
नहीं ते बाज़ी लै गए कुत्ते, तैत्थों उत्ते।
(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 63)

वत्त न करसां माण

इस काफ़ी में भी उस अलबेले प्रियतम की बेपरवाही का वर्णन करते हैं। प्रेमिका प्रियतम से शिकायत करती है कि मैं तुम पर जान न्योछावर करती हूँ परन्तु तू मेरी ओर ध्यान नहीं देता और अपना भेद नहीं बताता। वह कहती

है कि तुझ पर विश्वास नहीं किया जा सकता। तू अहंकार करनेवालों को तार देता है और जो कीचड़ (पापों) में लथपथ हैं उनके साथ नाचता है। मैंने हर प्रकार का शृंगार किया है और मैं तेरे पीछे व्याकुल फिर रही हूँ परन्तु तू मेरी परवाह नहीं करता। प्रेमिका प्रार्थना करती है कि अब काफ़ी समय बीत चुका है, तू आकर मुझे अपने दर्शन दे:

वत्त न करसां माण रंझेटे यार दा वे अड़या। टेक।
इश्क़ अल्ला दी ज़ात लोकां दा मेहणा।
किहनूं करां पुकार किसे नहीं रैहणा।
ओसे दी गल्ल ओहो जाणे।
कौण कोई दम मारदा वे अड़या।*

अज अजोकड़ी रात मेरे घर वस्स खां वे अड़या।
दिल दीआं घुंडीआं खोल असां नाल हस्स खां वे अड़या।
दिलबर यार इकरार कीतोई।
की इतबार सोहणे यार दा वे अड़या।

जान करां कुरबान भेत नाहीं दस्सना एं वे अड़या।
ढूंडां कई कई वार मैत्थों उठ नस्सना एं वे अड़या।
रल मिल सईयां पुछदीआं फिरदीआं।
वकत होया भंडार दा वे अड़या।†

हिक करदियां खुदी हंकार, ओहनां नूं तारनै एं वे अड़या।‡
इक पिच्छे फिरन खुआर, सड़ीआं नूं साड़नैं एं वे अड़या।
मैंडे सोहणे यार वे अड़या।
की इतबार तेरे प्यार दा वे अड़या।

* कोई अहंकार नहीं कर सकता।
† **वकत...भंडार**=त्रिंजण अर्थात् सत्संग का समय हो गया है।
‡ **हिक**=एक; **खुदी**=अहंकार।

चिक्कड़ भरीआं दे नाल नित झुंबर घत्तनां एं वे अड़या।*
लाया मैं हार शिंगार मैत्थों उठ नसना एं वे अड़या।
बुल्ला शौह घर आओ प्यारे।
वक्त होया दीदार दा वे अड़या।

(अनवर अली रोहतकी: *क़ानूने इश्क़*, 154)

वेखो नी की कर गया माही

इस काफ़ी में सतगुरु के मिलन के बाद आत्मा में प्रकट होनेवाले आश्चर्यजनक परिवर्तन का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। आत्मा प्रेमिका के रूप में कहती है कि यह प्रियतम मेरा दिल चुराकर परदेस चला गया है। मुझे घर-बार की सुध-बुध नहीं रही है। माता-पिता मुझे फटकारते हैं, भाई-बहनें ताने देते हैं। मैं कहती हूँ कि मैं सचमुच बुरी हूँ तो तुम मुझे प्रियतम की ओर ही धक्का दे दो। प्रियतम ने हृदय-द्वार पर अनहद का वह अद्भुत नाद बजाया है जिससे मेरी सुध-बुध खो गयी है। मैंने हँसते-हँसते उससे प्रीति लगायी परन्तु अब वही प्रेम मेरे गले की फाँसी बन गया है। मंसूर ने प्रेम में आकर 'मैं सत्य हूँ' का नारा लगाया जिसके कारण उसे सूली पर चढ़ा दिया गया। मुझ पर भी प्रेम का ऐसा ही जोश चढ़ गया है। मैंने सारी लोक-लाज को त्याग दिया है। मैं प्रेम से पीछे नहीं मुड़ सकती जो होना हो, सो हो:

वेखो नी की कर गया माही, लै दे के दिल हो गया राही। टेक।
अंमां झिड़के बाबल मारे, ताने देंदे वीर प्यारे।
जे मैं बुरी बुरयार वे लोका, मैंनूं दिओ उत्ते वल त्राही।†
बूहे ते उस नाद बजाया, अकल फ़िकर सभ चा गवाया।‡

* पापियों को प्यार करता है।
† **बुरी बुरयार**=बुरी से बुरी; **त्राही**=धक्का दे दो।
‡ सतगुरु ने अनहद शब्द का भेद दिया और संसार की सुध-बुध समाप्त हो गयी।

अल्ला दी सौंह अल्ला जाणे, हसदयां गल विच पै गई फाही।
रौह वे इश्क़ा की करें अखाड़े, मनसूर जेहे सूली ते चाढ़े।*
आण बणी जद नाल असाडे, बुल्ला मूँह तों लोई लाही।†
वेखो नी की कर गया माही, लै दे के दिल हो गया राही।

(अनवर अली रोहतकी: *क़ानूने इश्क़*, 19)

वेखो नी शौह इनायत साईं

साईं बुल्लेशाह सतगुरु के प्रेम में मस्त हुई प्रेमिका के रूप में कहते हैं: वह प्रियतम मेरे साथ अजीब प्रकार के नख़रे करता है। वह कभी आकर दर्शन देता है तो मन प्रसन्नता से खिल जाता है, परन्तु जब वह दूर चला जाता है तो हृदय में विरह की अग्नि भड़क उठती है। मैं उससे विनती करती हूँ कि तू मुझे अधिक न तरसा, क्योंकि मैं तेरा मुख देखने के लिए व्याकुल हूँ। पता नहीं उसने मेरे अन्दर कैसी प्रीति जगा दी है कि मैं आधी रात को नदी की ओर दौड़ती हूँ – भाव जैसे सोहनी महिवाल को मिलने के लिए आधी रात को नदी को पार करती थी उसी तरह मैं भी नदी को पार करके प्रियतम से मिलना चाहती हूँ। आश्चर्य की बात है कि जिन दु:खों से लोग डरकर भागते हैं, मैं ख़ुशी-ख़ुशी प्रेम के उन दु:खों को बुलावा देती हूँ:

वेखो नी शौह इनायत साईं, मैं नाल करदा किवें अदाईं।‡
कदी आवे कदी आवे नाहीं, त्यों त्यों मैनूं भड़कण भाहीं।§
नाम अल्ला पैग़ाम सुणाईं, मुख वेखण नूं न तरसाईं।

* **अखाड़े**=लड़ाइयाँ, झगड़े।
† **बुल्ला...लाही**=मुँह से लोई उतारना, भाव यह है कि लोक-लाज त्याग दी।
‡ **अदाईं**=नख़रे।
§ **भाहीं**=अग्नि।

बुल्ले शौह केही लाई मैंनूं, रात हनेरे उठ टुरदी नैं नूं।*
जिस औझड़ तों सभ कोई डरदा, सो मैं ढूंडां चाईं चाईं।†

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 149)

सब इक्को रंग कपाहीं दा

इस काफ़ी में अद्वैत का भाव प्रकट किया गया है। आप कहते हैं कि अनेक प्रकार के वस्त्र एक ही कपास से बनते हैं, अनेक प्रकार के आभूषण एक ही चाँदी से गढ़े जाते हैं। इसी प्रकार संसार के भिन्न-भिन्न रूपों के पीछे एक ही प्रभु का प्रकाश है:

सब इक्को रंग कपाहीं दा। टेक।
ताणी ताणा पेटा नलियां, पीठ नड़ा ते छब्बां छल्लियां।
आपो आपणे नाम जतावण, वक्खो वक्खी जाहीं दा।‡

चौंसी पैंसी खद्दर धोतर, मलमल खाशा इक्का सूत्तर।§
पूणी विच्चों बाहर आवे, भगवा भेस गोसाईं दा।¶

कुड़ीआं हत्थीं छापां छल्ले, आपो आपणे नाम सवल्ले।
सब्भा हिक्का चांदी आखो, कंगन चूड़ा बाहीं दा।

भेड़ा बकरियां चारन वाला, ऊंठ मझीआं दा करे संभाला।**
रूड़ी उत्ते गद्दों चारे, ओह भी वागी गाईं दा।††

* **नैं**=नदी; प्रियतम ने मेरे अन्दर प्रेम की ज्वाला जला दी है जिस कारण मैं सोहनी की भाँति रात को (प्रेम की) नदी पार करने को तैयार हो जाती हूँ।
† पाठान्तर '**औझड़**' के स्थान पर 'उड़क' भी हो सकता है।
‡ ताणे, पेटे और नलकियाँ आदि सब अपने अलग-अलग नाम रखाकर अभिमान करते हैं।
§ अनेक प्रकार के कपड़े एक ही सूत से बुने जाते हैं।
¶ साधु का भगवे रंग का पहरावा कपास की उसी पूनी से काते गये सूत से बना है।
** एक ही चरवाहा अनेक पशु चराता है।
†† **गद्दों**=गधे।

बुल्ला शौह दी ज़ात की पुछनैं, शाकर हो रज़ाई दा।*
जे तूं लोड़े बाग़ बहारां, चाकर रहो अराइयां दा।†
(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 70)

साईं छप तमाशे नूं आया

इस काफ़ी में यह भाव प्रकट किया गया है कि प्रभु दूर नहीं है। वह शरीर के अन्दर है और शब्द अथवा नाम द्वारा अन्तर में ही उससे मिलन हो सकता है। इसलिए सदैव उस प्रभु के नाम में लीन रहना चाहिये:

साईं छप तमाशे नूं आया, तुसीं रल मिल नाम ध्याओ। टेक।
लटक सज्जण दी नाहीं छपदी, सारी खलकत सिकदी तपदी।‡
तुसीं दूर न ढूंडण जाओ, तुसीं रल मिल नाम ध्याओ।

रल मिल सईओ आतण पाओ, इक बंने विच जा समाओ।§
नाले गीत सज्जण दा गाओ, तुसीं रल मिल नाम ध्याओ।

बुल्ला बात अनोखी एहा, नच्चण लगी तां घुंघट केहा।¶
तुसीं परदा अख्खीं थीं लाहो, तुसीं रल मिल नाम ध्याओ।**
(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 68)

---

* **शाकर**=ईश्वर का शुक्र करनेवाला; परमात्मा की ज़ात न पूछ, उसकी रज़ा में राज़ी रहो।

† यदि आनन्द लूटना चाहता है तो अराईं अर्थात् हज़रत इनायत शाह का दास (**चाकर**) बन जा।

‡ उस सज्जन की प्रीति नहीं छिप सकती। सारा संसार उसके लिए तड़प रहा है।

§ **आतण**=त्रिंत्रण; तात्पर्य यह है कि मिलकर सत्संग करो, उसके नाम का ध्यान करो और उस प्यारे प्रियतम में समा जाओ।

¶ प्रीति लगाकर शर्म मत करो, खुलकर प्रेम करो।

** **तुसीं...लाहो**=आन्तरिक आँख खोलो।

साडे वल्ल मुखड़ा मोड़ वे

प्रस्तुत काफ़ी जितनी छोटी है उतनी ही भावपूर्ण है। आप अपने प्रियतम से प्रार्थना करते हैं कि तू हमारी ओर निहार। आप कहते हैं कि वह प्रियतम स्वयं ही प्रेम का जाल फेंकता है और स्वयं ही डोर खींचता है। आपका कथन है कि जब हज़रत मुहम्मद साहिब ने गगन-मण्डल में अनहद शब्द की ध्वनि सुनी तो मक्के में उसके रहस्य को प्रकट किया। आप यह भी कहते हैं कि प्रभु से मिलाप करनेवाले साधक की आत्मा अमर हो जाती है। साधारण लोग जन्म-मरण के बन्धन में बँधे हुए हैं पर प्रभु का प्रेमी इससे मुक्त हो जाता है:

साडे वल्ल मुखड़ा मोड़ वे प्यारया,
साडे वल्ल मुखड़ा मोड़। टेक।

आपे पाईयां कुंडीयां तैं,
ते आपे खिचदा हैं डोर।
साडे वल्ल मुखड़ा मोड़ वे प्यारया,
साडे वल्ल मुखड़ा मोड़।

अरश कुरसी ते बांगां मिलियां,
मक्के पै गया शोर।
साडे वल्ल मुखड़ा मोड़ वे प्यारया,
साडे वल्ल मुखड़ा मोड़।

बुल्ला शौह असां मरना नाहीं,
मर जावे कोई होर।
साडे वल्ल मुखड़ा मोड़ वे प्यारया,
साडे वल्ल मुखड़ा मोड़।

(नज़ीर अहमद: *कलाम बुल्लेशाह*, 5)

सानूं आ मिल यार प्यारया

यह काफ़ी उस समय की याद दिलाती है जब साईं बुल्लेशाह का मुर्शिद उससे रूठ गया था। आप मुर्शिद को बड़े परिवार वाला (वड परवारिया) कहते हैं जिसके अनेक शिष्य हैं। आप मुर्शिद से प्रार्थना करते हैं कि तू मेरे विरह के दुःख को समझने का प्रयत्न कर और मुझे अपने दर्शन दे। केवल इस तरह ही मेरे हृदय में लगी अग्नि शान्त हो सकती है।

आप काफ़ी में बहादुरशाह दुर्रानी के आक्रमण से हुई पंजाब की दुर्दशा की ओर भी संकेत करते हैं। आप कहते हैं कि सदाचार का पतन हो चुका है। सब लोग स्वार्थी हो गये हैं। दशा यहाँ तक पहुँच गयी है कि बेटी माता को लूट रही है। पंजाब की दशा जलते हुए नरक के समान हो गयी है:

सानूं आ मिल यार प्यारया। टेक।
दूर दूर असाथों गयों, असलाते आ के बह रहयों।*
की कसर कसूर विसारया, सानूं आ मिल यार प्यारया।†

मेरा इक अनोखा यार है, मेरा ओसे नाल प्यार है।
कदे समझें वड परवारया, सानूं आ मिल यार प्यारया।‡

जदों आपणी आपणी पै गई, धी मां नूं लुट के लै गई।
मूँह बारहवीं सदी पसारया, सानूं आ मिल यार प्यारया।

दर खुल्ला हशर-अज़ाब दा, बुरा हाल होया पंजाब दा।§
डर हावीए दोज़ख़ मारया, सानूं आ मिल यार प्यारया।¶

---

* **दूर...गयों**=तू हमसे दूर जाकर क्यों छिपकर बैठ गया है?

† **कसर**=कमी; **विसारया**=भुलाया; **की...विसारया**=हममें क्या कमी है जो तूने हमें भुला दिया है?

‡ मुर्शिद को बड़े परिवार वाला कह रहे हैं।

§ **दर**=द्वार; **हशर**=क़यामत का दिन; **अज़ाब**=दुःख।

¶ **डर...दोज़ख़**=नरक के दुःखों का भय; ऐसी बुरी दशा जैसे क़यामत के दुःखों का द्वार खुल गया हो। इस नरक के दुःखों से हृदय डरता है।

बुल्ला शौह मेरे घर आवसी, मेरी बलदी भा बुझावसी।*
इनाइत दम दम नाल चितारया, सानूं आ मिल यार प्यारया।†

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 69)

सुनो तुम इश्क़ की बाज़ी

इस काफ़ी में सच्ची प्रेमिका के हृदय की वेदना और प्रियतम से मिलन की उसकी दृढ़ लगन का वर्णन किया गया है। वह कहती है कि मैं प्रियतम की खोज में संसार की मर्यादा को तिलांजलि दे चुकी हूँ: 'नच्चे हम लाह कर लोई।' विरहिणी कहती है कि मेरी आँखों से रक्त के आँसू बह रहे हैं और मैं उस शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा कर रही हूँ जब मैं प्रियतम से मिल सकूँगी। प्रेम की तलवार ने मेरे द्वैत या अहं भाव को काट डाला है। मैं प्रियतम में लीन होकर उसी का रूप हो गयी हूँ। प्रियतम की खोज में मैंने अपना शीश न्योछावर कर दिया है, अपने हाथों अपना कफ़न सी लिया है और मैं प्रसन्नतापूर्वक क़ब्र में पाँव रखने के लिए तैयार हो गयी हूँ:

सुनो तुम इश्क़ की बाज़ी, मलायक हों कहां राज़ी।‡
यहां बिरहों पर होगा जी, वेखां फिर कौन हारेगा।§

साजन की भाल हुण होई, मैं लहू नैण भर रोई।¶
नच्चे हम लाह कर लोई, हैरत के पत्थर मारेगा।**

---

* **भा**=आग; मेरा मुर्शिद इनायत शाह दर्शन देकर मेरे तपते हुए हृदय को ठण्डक पहुँचायेगा।

† **इनाइत...चितारया**=मैं पल-पल उनका ध्यान करती हूँ।

‡ **मलायक**=मलक का बहुवचन अर्थात् फ़रिश्ते; **मलायक...राज़ी**=हम फ़रिश्तों को कैसे प्रसन्न करेंगे?

§ **यहां...जी**=हमारा जी तो प्यारे पर क़ुर्बान है।

¶ **भाल**=खोज; **लहू नैण**=ख़ून के आँसू बहाये।

** लोक-लाज त्यागकर प्रेम का नाच किया। लोग इस प्रेम के नाच से हैरान होकर हमें पत्थर मारेंगे।

महूरत पूछ कर जाऊं, साजन को देखने पाऊं।
उसे मैं ले गले लाऊं, नहीं फिर ख़ुद गुजारेगा।

इश्क़ की तेग़ से मूई, नहीं वोह ज़ात की दुई।*
और पिया पिया कर मूई, मोयां फिर रूह चितारेगा।

साजन की भाल सर दीआ, लहू मध अपना पीआ।
कफ़न बाहों से सी लिया, लहद में पा उतारेगा।†

बुल्ला शौह इश्क़ है तेरा, उसी ने जी लिया मेरा।
मेरे घर-बार कर फेरा, वेखां सिर कौण वारेगा।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 23)

से वणजारे आए नी माए

वणजारे (व्यापारी) नामरूपी हीरों का व्यापार करनेवाले सन्त-महात्मा और कामिल मुर्शिद हैं। उनका ढिंढोरा सुनकर जीव के मन में लालों का व्यापार करने की इच्छा पैदा हो जाती है, परन्तु जीव दिखावे के लिए (लोकां नूं दिखलावां) यह लाल ख़रीदना चाहते हैं। जब व्यापारी मूल्य बताते हैं तो लोग पीछे हट जाते हैं। मूल्य क्या है? 'जे तूं आई हैं लाल खरीदण, धड़ तों सीस लुहाईं।' मूल्य शीश है। तात्पर्य यह है कि ख़ुदी या अहं का त्याग करना पड़ता है मनमत को छोड़कर मुर्शिद की आज्ञानुसार चलना पड़ता है। जिन्होंने कभी सूई की चुभन न सही हो अर्थात् प्रेम के लिए साधारण दु:ख न सहे हों और मामूली सी क़ुर्बानी भी न की हो, वे सिर देने के लिए अर्थात् तन, मन और धन कैसे क़ुर्बान कर सकते हैं? यही कारण है कि वे नाम या भक्ति के हीरे नहीं ख़रीद पाते:

* प्रेम की तेग़ ने द्वैत का आवरण नष्ट कर दिया।
† **लहद**=क़ब्र; **पा**=पैर, पाँव।

से वणजारे आए नी माए, से वणजारे आए।
लालां दा ओह वणज करेंदे, होका आख सुणाए।*

लाल ने गहणे सोने साथी, माए नाल लै जावां।†
सुणया होका मैं दिल गुज़री, मैं भी लाल ल्यावां।‡

इक न इक कंना विच पा के, लोकां नूं दिखलावां।§
लोक जानण एह लालां वाली, लईयां मैं भरमाए।

ओड़क जा खलोती ओहनां ते, मैं मनो सधराइयां।¶
"भाई वे लालां वालयो मैं भी, लाल लैवन नूं आइयां।"

ओहनां भरे संदूक विखाले, मैंनूं रीझां आइयां।
वेखे लाल सुहाने सारे, इक तों इक सवाए।

"भाई वे लालां वालया वीरा, इन्हां दा मुल दसाईं?"
"जे तूं आई हैं लाल ख़रीदण, धड़ तों सीस लुहाईं।"

डम्म कदी सूई दा न सहया, सिर कित्थों दिता जाई।**
नदामी हो के मुड़ घर आई, पुछण गवांढी आए।††

तूं जो गई सैं लाल ख़रीदण, उच्ची अड्डी चाई नी।‡‡
केहड़ी मोहर ओथों रंने तूं, लै के घर आई नी।§§

"लाल सी भारे मैं सां हलकी खाली कंनी साई नी।¶¶
भारा लाल अनमुल्ला ओथों, मैत्थों चुकया ना जाए।"

* **वणज**=व्यापार।
† **लाल...साथी**=लाल सुन्दर साथी हैं।
‡ **दिल गुज़री**=दिल में आया, जी किया।
§ **लोकां...दिखलावां**=लाल लाकर दिखावा करूँ।
¶ **ओड़क**=अन्ततः; **सधराइयां**=बड़े चाव से वहाँ गयी।
** जिसने सूई की चुभन न सही हो, सिर कैसे कटाये?
†† **नदामी**=शर्मिन्दा होकर।
‡‡ **उच्ची...नी**=ऐड़ी उठाकर अर्थात् शेख़ी और चाव से।
§§ **मोहर**=अशर्फ़ी; भाव यह है कि हे नारी, तू वहाँ से कौन-सी विशेष वस्तु ख़रीदकर लायी है?
¶¶ लाल महँगे मूल्य के थे, मैं कम मूल्य की थी।

कच्ची कच्च विहाजण जाणा, लाल विहाजण चल्ली।*
पल्ले ख़रच न साख न काई, हत्थों हारन चल्ली।†

मैं मोटी मुशटंडी दिस्सां, लाल नूं चारन चल्ली।‡
जिस शाह ने मुल लै के देणा, सो शाह मुँह न लाय।§

गलियां दे विच फिरें दीवानी, नी कूड़ीए मुटयारे।¶
लाल चुगेंदी नाज़क होई, एह गल्ल कौन नितारे।**

जां मैं मुल ओन्हां नूं पुच्छया, मुल करन ओह भारे।
डम्म सुई दा कदे न खाधा, ओह आखण सिर वारे।

जेहड़ीआं गइयां लाल विहाजण ओहनां सीस लुहाए।††
से वणजारे आए नी माए, से वणजारे आए।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 74)

हजाब करें दरवेशी कोलों

दरवेशी का अर्थ फ़क़ीरी या प्रभु-भक्ति है। हजाब का अर्थ शर्म करना है। प्रस्तुत काफ़ी में आप मनुष्य को सावधान करते हैं कि तू मोह-माया में फँसकर प्रभु की भक्ति की ओर ध्यान नहीं देता। तुझे अन्त समय अपने अज्ञान के कारण लज्जित होना पड़ेगा। तू संसार में लोगों को लूटता है। तू यह समझने का प्रयत्न नहीं करता कि संसार में कर्म और फल का नियम

* सांसारिक वृत्ति वाले कच्चे लोग माया (कच्च) की तृष्णा रखते हैं।
† **साख**=उनका कोई विश्वास या भरोसा नहीं होता, कोई उनकी गवाही या शहादत नहीं दे सकता।
‡ मैं अवगुणोंवाली थी, प्रियतम (**लाल**) को धोखा देना चाहती थी।
§ जिस मुर्शिद (**शाह**) ने (नामरूपी) लाल ख़रीदकर देना था, वह मुझसे प्रसन्न नहीं था।
¶ **कूड़ीए**=कूड़; कच्च या माया का व्यापार करनेवाला जीव।
** **नितारे**=न्याय करे।
†† लाल उनको ही मिले जिन्होंने हँस-हँसकर सिर वार दिया।

लागू है: 'जैसी करनी वैसी भरनी, प्रेम नगर वरतारा ए।' जो लोग यहाँ अन्याय करते हैं और दूसरों को दु:खी करते हैं, उन्हें अपने कर्मों का लेखा देना पड़ता है। साईं जी कहते हैं कि संसार में आकर प्रभु के प्रेम का पाठ पढ़ना चाहिये और उसके नाम की आराधना करनी चाहिये। नाम के बिना यहाँ से चलते समय कोई वस्तु साथ नहीं जाती। परलोक में काम आनेवाली वस्तु केवल नाम है और नाम की कमाई केवल जीते-जी हो सकती है। इस संसार में रहते हुए परलोक के लिए नाम का धन बटोर लेना चाहिये क्योंकि वहाँ पर जाकर यह वस्तु नहीं मिल सकती। सारा संसार नश्वर है परन्तु नाम की आराधना करनेवाला प्रभु का सच्चा प्रेमी अमर हो जाता है।

साईं जी जीव को कहते हैं कि मैं तुम्हें यह नसीहत देता हूँ कि तू जीते-जी मरने की युक्ति सीख ले जिससे तेरा परलोक सुधर जायेगा। आप मनुष्य को विश्वास दिलाते हैं कि यदि तू हमारे (सन्तों के) उपदेशानुसार चलेगा तो हम तुम्हें उस प्रभु से मिला देंगे जिसकी सारे संसार को तलाश है। आप कहते हैं कि तूने अपनी पिछली आयु तो संसार के प्रेम में व्यर्थ खो दी है। यदि अब भी हमारे बताये हुए मार्ग पर चलेगा तो तू परमात्मा का सच्चा प्रेमी कहलायेगा। तू दुविधा में पड़कर अपना समय व्यर्थ न खो, क्योंकि जब प्रभु के दरबार से तुम्हारा संसार से जाने का हुक्म आ जायेगा तो तू उस समय कुछ नहीं कर पायेगा:

हजाब करें दरवेशी कोलों, कद तक हुकम चलावेंगा।*
गल अलफ़ी सिर पा बरहना, भलके रूप वटावेंगा।†

इस लालच नफ़सानी कोलों, ओड़क मूड मनावेंगा।‡
घाट ज़कात मंगणगे पयादे, कौह की अमल विखावेंगा।§
आण बणी जद सिर पर भारी, अग्गों की बतलावेंगा।

* **हजाब**=शर्म; **दरवेशी**=फ़क़ीरी; तू फ़क़ीरी से शर्म करता है, कब तक संसार में हुक्म चला सकेगा? तात्पर्य है कि संसार में सदा नहीं रहना।
† **अलफ़ी**=फ़क़ीरोंवाली क़मीज़ अर्थात् कफ़न; **सिर...बरहना**=सिर और पाँव से नंगा होना।
‡ नफ़स या इन्द्रियों के भोगों के लालच में फँसकर अपना सिर मुँड़ा लेगा।
§ **घाट**=दरगाह के रास्ते में; **ज़कात**=टैक्स; **पयादे**=यमदूत।

हक पराया जातो नाहीं, खा कर भार उठावेंगा।
फेर न आ कर बदला देसें, लाखी खेत लुटावेंगा।
दाअ ला के विच जग दे जूए, जित्ते दम हरावेंगा।

जैसी करनी वैसी भरनी, प्रेम नगर वरतारा ए।
एथे दोज़ख़ कट तूं दिलबर, अग्गे खुल बहारां ए।
केसर बीज जो केसर जंमें, लसण बीज ठगावेंगा।

करो कमाई मेरे भाई, एहो वकत कमावण दा।
पौं सतारां पैंदे ने हुण, दाअ न बाज़ी हारन दा।*
उजड़ी खेड छपणगीआं नरदां, झाड़ दुकान उठावेंगा।

खावें मास चबावें बीड़े, अंग पुशाक लगाइया ई।
टेडी पगड़ी आकड़ चल्लें, जुत्ती पैर अड़ाइया ई।
पलदा है तूं जम दा बकरा, आपणा आप कुहावेंगा।

पल दा वासा वस्सण एथे, रहण नूं अग्गे डेरा ए।
लै लै तोहफ़े घर नूं घल्लीं, एहो वेला तेरा ए।
ओथे हत्थ न लगदा कुझ वी, एथों ही लै जावेंगा।

पढ़ सबक मुहब्बत ओसे दा तूं, बेमूजब क्यों डुबणा एं।
पढ़ पढ़ किस्से मग़ज़ खपावें, क्यों खुब्भण विच खुभणा एं।†
हरफ़ इश्क़ दा इक्को नुकता, काह को ऊठ लदावेंगा।‡

भुक्ख मरेंदेआं नाम अल्ला दा, एहो बात चंगेरी ए।
दोवें थोक पत्थर थीं भारे, औखी जही एह फेरी ए।
आण बणी जद सिर पर भारी, अग्गों की बतलावेंगा।

---

* **पौं सतारां**=सौभाग्यशाली दाँव

† तू प्रेम का पाठ पढ़, शेष लंबी-चौड़ी कथाएँ पढ़कर दिमाग़ ख़राब करने का कोई लाभ नहीं।

‡ प्रेम का एक अक्षर पढ़ने की आवश्यकता है, ऊँटों के ऊँट लदी हुई पुस्तकें पढ़ने से कोई लाभ नहीं।

अंमां बाबा बेटी बेटा, पुच्छ वेखां क्यों रोंदे नी।*
रंनां कंजकां भैणां भाई, वारस आण खलोंदे नी।
एह जो लुटदे तूं नहीं लुटदा, मर के आप लुटावेंगा।

इक इकल्लयां जाणा ई तैं, नाल न कोई जावेगा।
ख़वेश कबीला रोंदा पिटदा, राहों ही मुड़ आवेगा।†
शहरों बाहर जंगल विच वासा, ओथे डेरा पावेंगा।

करां नसीहत वड्डी जे कोई, सुण कर दिल ते लावेंगा।
मोए तां रोज़-हशर नूं उट्ठण, आशिक़ ना मर जावेगा।
जे तूं मरें मरन तों अग्गे, मरने दा मुल पावेंगा।

जां राह शरा दा पकडेंगा, तां ओट मुहम्मदी होवेगी।‡
कैह्न्दी है पर करदी नाहीं, एहो ख़लकत रोवेगी।§
हुण सुत्तयां तैनूं कौण जगाए, जागदयां पछतावेंगा।

जे तूं साडे आखे लग्गें, तैनूं तख़त बहावांगे।
जिस नूं सारा आलम ढूंडे, तैनूं आण मिलावांगे।
ज़ुहदी हो के ज़ुहद कमावें, लै पिया गल लावेंगा।¶

ऐवें उमर गवाइआ औगत, आकबत चा रुढ़ाइआ ई।**
लालच कर कर दुनिया उत्ते, मुख सफ़ैदी आइया ई।††

---

* अन्त समय रिश्तेदार रोते और चिल्लाते हैं और सम्पत्ति के उत्तराधिकारी बन जाते हैं।

† **ख़वेश कबीला**=संबंधी रिश्तेदार; ये तेरे साथ नहीं जा सकते।

‡ लोग कहते हैं कि धार्मिक क़ानून पर अमल करोगे तो हज़रत मुहम्मद तुम्हारी रखवाली करेंगे।

§ लोग कहने को ये बातें कह देते हैं, परन्तु उनके असल उपदेश पर अमल नहीं करते। ऐसे लोगों को अन्त समय पछताना पड़ता है। गुरु नानक साहिब ने भी लिखा है, 'गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 141)

¶ **ज़ुहदी**=भक्ति करनेवाला।

** **औगत**=व्यर्थ; **आकबत**= आगे, परमार्थ; तूने आयु व्यर्थ गँवा दी है और परलोक ख़राब कर लिया है।

†† सांसारिक लोभ व लालच के कारण तेरे चेहरे का नूर समाप्त हो गया है और तुझे बुढ़ापे ने घेर लिया है।

अजे वी सुण जे तायब होवे, तां आशना सदावेंगा।*

बुल्ला शौह दे चलना एं तां चल, केहा चिर लाया ई।
जक्को तक्को की करने, जां वतनों दफ़तर आया ई।†
वाचदयां खत अकल गयो ई, रो रो हाल वंञावेंगा।
हजाब करें दरवेशी कोलों, कद तक हुकम चलावेंगा।

(डॉ. गुरदेवसिंह: *कलाम बुल्लेशाह,* 57)

हाजी लोक मक्के नूं जांदे

प्रभु के सच्चे प्रेमी की चाल संसार से न्यारी होती है। सांसारिक प्राणी उसे कमला या मूर्ख समझते हैं। इस काफ़ी में साईं जी प्रेमी के रूप में कहते हैं कि मेरी चाल संसार से उलटी है। लोग मक्का हज के लिए जाते हैं, परन्तु मेरे लिए मेरा राँझा (सतगुरु) ही असल मक्का है। हज़रत सुलतान बाहू ने भी कहा है: 'मुरशद दा दीदार है बाहू मैनूं लक्ख करोड़ां हज्जां हू।' आप कहते हैं कि जिस मक्के में वह सच्चा प्रियतम मिलता है वह मेरे अपने शरीर के अन्दर है। मन के अन्दर ही नीच वृत्ति या विषय-विकार हैं: 'विच्चे चोर उचक्का।' मन के अन्दर ही इनको जीतनेवाले गुण (हाजी और ग़ाज़ी) हैं। मुक़ामे-हक़ (तख़्त हज़ारा) भी अपने अन्दर है और आशिक़ अपने अन्दर से ही मक्का का हज ख़त्म करके प्रियतम से मिलाप करते हैं। आत्मा का पाँव के तलों से सिमटकर सिर की चोटी पर पहुँचना, हज पूरा करके तख़्त हज़ारे (सचखण्ड) पहुँचना है। चाहे सब धर्म-ग्रन्थों की साक्षी ले लें कि सच्चा काबा वह है जहाँ वह प्रभु रहता है। प्रभु अन्दर रहता है। इसलिए सच्चा काबा अपने अन्दर है।

---

* **तायब**=तोबा करनेवाला; **आशना**=आशिक़ या प्रेमी; यदि अब भी गुनाहों से तोबा करे तो परमात्मा का आशिक़ बन सकता है।

† **जक्को तक्को**=बहाना, सोच-विचार; **वतनों**=दरगाह से; **दफ़तर**=बुलावा, निमन्त्रण।

हाजी लोक मक्के नूं जांदे, मेरा रांझा माही मक्का।
नी मैं कमली हां।

मैं तां मंग रांझे दी होईआं, मेरा बाबल करदा धक्का।*
नी मैं कमली हां।

हाजी लोक मक्के नूं जांदे, मेरे घर विच नौशौह मक्का।
नी मैं कमली हां।

विच्चे हाजी विच्चे ग़ाज़ी, विच्चे चोर उचक्का।
नी मैं कमली हां।

हाजी लोक मक्के नूं जांदे, असां जाणा तख़्त-हज़ारे।
नी मैं कमली हां।

जित वल यार उते वल काअबा, भावें फोल किताबां चारे।†
नी मैं कमली हां।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात,* 56)

हिंदू नहीं न मुसलमान

पहली दो पंक्तियों को काफ़ी की अन्तिम दो पंक्तियों से मिलाकर पढ़ने से काफ़ी का भाव स्पष्ट होगा कि जो आत्मा, परमात्मा में समाकर परमात्मा का रूप हो जाती है, उसकी हर प्रकार का द्वैत भाव समाप्त हो जाता है। हज़रत बुल्लेशाह का संकेत उस उच्च रूहानी अवस्था की ओर है, जिसमें आत्मा मन और माया के सब परदे उतारकर अपने निर्मल रूहानी मूल में चमक उठती है। जिस प्रकार आत्मा की न कोई जात-पाँत है, न क़ौम, मज़हब, मुल्क या नस्ल, उसी प्रकार मन और इन्द्रियों से निर्लिप्त हुई आत्मा भी इन सब बन्धनों और मतभेदों से ऊपर है:

---

* मेरी राँझा के साथ सगाई (**मंग**) हुई है, जब कि लोग मुझे खेड़े के साथ भेजना चाहते हैं।

† **किताबां चारे**=तौरेत, ज़बूर, इंजील और क़ुरान – ये चार पवित्र पुस्तकें हैं।

हिंदू नहीं न मुसलमान, बहीए त्रिंञण तज अभिमान। टेक।*
सुंनी ना नहीं हम शिया, सुल्हा कुल का मारग लीआ।†

भुक्खे ना नहीं हम रज्जे, नंगे ना नहीं हम कज्जे।
रोंदे ना नहीं हम हसदे, उजड़े ना नहीं हम वसदे।

पापी ना सुधरमी ना, पाप पुंन की राह ना जां।‡
बुल्ले शाह जो हरि चित लागे, हिंदू तुरक दूजन त्यागे।§

(नज़ीर अहमद: *कलाम बुल्लेशाह*, 83)

हुण किस थीं आप छुपाइदा

साईं जी कहते हैं कि मैंने अनेकता के परदे के पीछे छिपे प्रभु के प्रकाश की एकता को पहचान लिया है। मेरे सब भ्रम दूर हो गये हैं। बाहर देखने में अलग-अलग प्रतीत होनेवाले रूपों के पीछे एक ही दयालु प्रभु का प्रकाश विद्यमान है। वह एक प्रभु ही मुल्ला, राम, आदम आदि रूपों में प्रकट होता है; वृन्दावन का ग्वाला कृष्ण भी तू ही है; लंका पर आक्रमण करनेवाला राम भी तू ही है और मक्का में हज़रत मुहम्मद बनकर पहुँचनेवाला भी तू है। आप कहते हैं कि गुरु तेग़ बहादुर के रूप में धर्म-रक्षक बनकर आनेवाले भी तुम हो, यूसुफ़, यूनुस और साबर आदि प्रभु-भक्तों को दुःख देनेवाले भी तुम स्वयं हो। मंसूर में अपना प्रेम पैदा करनेवाले और फिर उसे सूली पर चढ़वानेवाले भी तुम ही हो। तुम मुझे हर जगह, हर हाल में नज़र आते हो। जिस किसी पर तुम्हारी दया हो जाती है वह भी तुम्हारा ही रूप हो जाता है परन्तु जो कोई तुम्हारी खोज करना चाहता है, उसे जीते-जी मरने की युक्ति

* **त्रिंञण**=जहाँ स्त्रियाँ इकट्ठी बैठकर सूत कातती हैं। यहाँ अभिप्राय सत्संग से है। अहं भाव को दूर करके सन्तों के सत्संग में जाना चाहिये।

† सुन्नी और शिया मुसलमानों के दो फ़िरक़े हैं; **सुल्हा कुल**=जिनकी हरएक से सहमति है, हरएक से प्यार है।

‡ **पाप...जां**=पाप पुण्य की द्वैत से ऊपर हो गया हूँ।

§ **दूजन**=द्वैत।

सीखनी पड़ती है। जब वह इस युक्ति द्वारा अन्तर में अपने आपको पहचान लेता है तो हर रूप में तुम ही समाये हुए दिखायी देते हो:

हुण किस थीं आप छुपाइदा। टेक।
किते मुल्ला हो बुलेंदे हो, किते सुंनत फ़रज़ दसेंदे हो।*
किते राम दुहाई देंदे हो, किते मत्थे तिलक लगाइदा।

मैं मेरी है कि तेरी है, पर अंत भसम दी ढेरी है।†
ढेरी नूं हुण केरी है, ढेरी नूं नाच नचाइदा।

किते बेसिर चूड़ा पाओगे, किते जोड़ा शान हंढाओगे।‡
किते आदम हव्वा बण आओगे, कदी मैत्थों भी भुल जाइदा।§

बाहर ज़ाहर डेरा पायो, आपे डौं डौं ढोल बजाइओ।
जग ते आपणा आप लखायो, फिर अब्दुल्ला दे घर धाइदा।¶

जो भाल तुसाडी करदा है, ओह मोयां तों अग्गे मरदा है।**
ओह मोयां वी तैत्थों डरदा है, मत मोयां नूं मार कुहाइदा।††

बिंदराबन में गऊआं चरावें, लंका चढ़ के नाद वजावें।
मक्के दा बण हाजी आवें, वाह वाह रंग वटाइदा।

मनसूर तुसां ते आया ए, तुसां सूली पकड़ चढ़ाया ए।
मेरा वीरनां बाबल जाया ए, खून तुसीं दिओ मेरे भाई दा।

* **सुंनत**=इसलामी रहनी या संयम को सुन्नत का नाम दिया जाता है।

† शरीर और अहं नाशवान है परन्तु नश्वर शरीर में एक अमर तत्त्व है जो इस मिट्टी की ढेरी को अपने हुक्म के अनुसार नचाता है।

‡ **बेसिर**=जिसका सिर न हो अर्थात् गोल।

§ मैं कभी तुम्हारी पहचान नहीं भूल सकता, तुम्हें झट पहचान लूँगा।

¶ **अब्दुल्ला**=हज़रत मुहम्मद साहिब के आदरणीय पिता का नाम अर्थात् तू स्वयं ही हज़रत मुहम्मद बनकर आ गया।

** परमात्मा का सच्चा आशिक़ जीते-जी मरने का अभ्यास करता है।

†† **कुहाइदा**=छुरी से धीरे-धीरे मारना।

तुसीं सभनी भेसीं थींदे हो, आपे मध हो आपे पींदे हो।*
मैंनूं हर जा तुसीं दसींदे हो, आपे आप को आप चुकाइदा।

हुण पास तुसाडे वस्सांगी, न बेदिल हो के नस्सांगी।
सभ भेत तुसाडे दस्सांगी, क्यों मैनूं अंग न लाइदा।

वाह जिस पर करम अवेहा है, तसदीक ओह भी तैं जेहा है।
सच सही रवायत एहा है, तेरी नज़र मेहर तर जाइदा।

विच भांबड़ बाग़ लवाईदा, जेहड़ा विच्चों आप खवाइदा।†
जां अलफ़ों अहद बणाईदा, तां बातन क्या बतलाइदा।‡

बेली अल्ला वाली मालक हो, तुसीं आपणे आप सालक हो।§
आपे खलकत आपे ख़ालिक हो, आपे अमर मअरूफ़ कराइदा।¶

किधरे चोर ते किधरे काज़ी हो, किते मंबर ते बह वाअज़ी हो।**
किते तेग़ बहादर ग़ाज़ी हो, आपे आपणा कटक चढ़ाइदा।††

आपे यूसफ़ कैद करायो, यूनस मछली तों निगलायो।
साबर कीड़े घत बहायो, फेर ओह्नां तख़त चढ़ाइदा।‡‡

---

* **मध**=शराब; **आपे...हो**=शराब भी तू है और शराबी भी तू है।

† हमारे अन्दर विषय-विकारों की अग्नि जल रही है, परन्तु साथ ही रूहानियत के बाग़ भी खिले हुए हैं। अपने अन्दर से ही उस गुलज़ार के दर्शन होते हैं।

‡ तू स्वयं ही निराकार या निर्गुण (अलिफ़) से साकार या सगुण होकर सब जगह समा गया है। अन्दर-बाहर दो परमात्मा नहीं हैं।

§ **सालक**=खोजी; **तुसीं...हो**=अपनी खोज करनेवाले यात्री भी तुम स्वयं ही हो।

¶ आप ही रचना है और आप ही रचनाकार है। आप ही हुक्म (अमर) और आप ही सेवक है।

** **मंबर**=मस्जिद में वाअज़ (उपदेश) करनेवाला स्थान; **वाअज़ी**=प्रचारक।

†† **तेग़ बहादर**=तलवार का धनी; गुरु तेग़ बहादुर साहिब की ओर भी संकेत हो सकता है। **ग़ाज़ी**=हक़ या सत्य के लिए लड़नेवाला; **कटक**=सेना; **आपे...चढ़ाइदा**=अपनी सेना चढ़ानेवाला भी तू आप है।

‡‡ यूसुफ़, यूनुस और साबर को दुःख देनेवाला भी तू है और उनके सिर पर इलाही शान का ताज रखनेवाला भी तू स्वयं है।

बुल्ला शहु हुण सही संझाते हो, हर सूरत नाल पछाते हो।*
किते आते हो किते जाते हो, हुण मैत्थों भुल न जाइदा।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 154)

हुण मैंनूं कौण पछाणे

इस काफ़ी में कहते हैं कि सतगुरु के उपदेश पर चलने से जीव की पूर्णत: कायाकल्प हो जाती है। उसके भीतर द्वैत भाव का भ्रम नाश हो जाता है और वह पूरी तरह अद्वैत में स्थित हो जाता है। उसे वह निराकार, निर्लेप प्रभु अन्दर और बाहर हर जगह समाया हुआ दिखायी देता है। वह मनमुख (कौआ) से गुरुमुख (हंस) बन जाता है। वह माया के प्रेम से मुक्त होकर प्रभु या उसके प्रेम में लीन हो जाता है और सदा इस आनन्द में मग्न रहता है:

हुण मैंनूं कौण पछाणे, हुण मैं हो गई नी कुझ होर। टेक।
हादी मैंनूं सबक पढ़ाया, ओथे ग़ैर न आया जाया।†
मुतलक ज़ात जमाल विखाया, वहदत पाया नी शोर।‡
हुण मैंनूं कौण पछाणे, हुण मैं हो गई नी कुझ होर।

अव्वल हो के लामकानी, ज़ाहर बातन दिसदा जानी।§
रिहा ना मेरा नाम निशानी, मिट गया झगड़ा शोर।¶
हुण मैंनूं कौण पछाणे, हुण मैं हो गई नी कुझ होर।

---

* **संझाते**=पहचाने।

† मुर्शिद ने मुझे अद्वैत में पहुँचा दिया, जहाँ कोई ग़ैर नहीं।

‡ **मुतलक ज़ात**=निर्लिप्त परमात्मा; परम सत्य; जब मैंने प्रभु का प्रकाश देखा तो अन्दर पूर्ण अद्वैत के नग़मे (गीत) गूँज उठे।

§ वह निर्लिप्त व निराकार प्रियतम (दिलजानी) ही अन्दर है और बाहर (**ज़ाहर बातन**) हर स्थान पर समाया हुआ है।

¶ मेरा अहं या अलग अस्तित्व समाप्त हो गया और मैं पूरी तरह परमात्मा में लीन हो गयी।

प्यारा आप जमाल विखाले, मस्त क़लंदर होण मतवाले।*
हंसां दे हुण वेख लै चाले, बुल्ला कागां दी भुल गई टोर।†
हुण मैंनूं कौण पछाणे, हुण मैं हो गई नी कुझ होर।

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 155)

हुण मैं लखया सोहणा यार

इस काफ़ी में प्रभु को 'सोहणा यार' और उसकी सृजन की गयी रचना को उसके 'हुसन दा गरम बज़ार' कहा गया है। साईं जी कहते हैं कि मैंने उस सुन्दर प्रियतम को पहचान लिया है जिसने ये सारी रंग-बिरंगी रचना की है। रचना करने से पूर्व उस प्रभु के बिना कुछ भी नहीं था। उस समय केवल एक प्रभु था। न उसका प्रकाश प्रकट हुआ था और न ही कोई पीर-पैग़म्बर प्रकट हुआ था। वह प्रभु निर्लेप और निराकार था। उसका कोई रंग-रूप न था। फिर वह स्वयं ही संसार के रंग-बिरंगे रूपों में प्रकट हो गया। उस एक प्रियतम ने अनेक वेष धारण कर लिये। उसके हुक्म से ही रचना हुई और वह स्वयं ही पीरों-पैग़म्बरों का सरदार बनकर संसार में आ गया। मनुष्य, देवता और पीर-पैग़म्बर उसके सेवक हैं। सब उसके चरणों पर शीश झुकाते हैं क्योंकि वह सबसे बड़ी सरकार है। आप काफ़ी के अन्त में कहते हैं कि यदि कोई अपने आप उसका रहस्य पाना चाहे तो कदापि सफल नहीं हो सकता। केवल सतगुरु के द्वारा ही उसका भेद पाया जा सकता है:

हुण मैं लखया सोहणा यार,
जिस दे हुसन दा गरम बज़ार। टेक।

---

* वह प्यारा स्वयं फ़क़ीरों-क़लन्दरों को दर्शन देकर उनको मस्त बना रहा है।

† गुरुमुखोंवाले गुण ग्रहण करके हंसोंवाली (गुरुमुखोंवाली) गति प्राप्त हो गयी और कौओंवाली (मनमुखोंवाली) वृत्ति छूट गयी।

जद अहद इक इकल्ला सी, ना ज़ाहर कोई तजल्ला सी।*
ना रब्ब रसूल ना अल्ला सी, ना जब्बार ते ना कहार।†

बेचून व बेचूगूना सी, बेशबीया बेनमूना सी।‡
न कोई रंग न नमूना सी, हुण गूनां-गूं हज़ार।§

प्यारा पहन पोशाकां आया, आदम अपना नाम धराया।
अहद तों बण अहमद आया, नबीयां दा सरदार।¶

कुन किहा फ़यीकून कहाया, बेचूनी से चून बणाया।
अहद दे विच मीम रलाया, तां कीता ऐड पसार।**

तजूं मसीत, तजूं बुतख़ाना, बरती रहां ना रोज़ा जाणा।††
भुल गया वुज़ू नमाज़ दुगाना, तैं पर जान करां बलहार।‡‡

पीर पैग़म्बर इसदे बरदे, इनस मलायक सजदे करदे।§§
सर कदमां दे उत्ते धरदे, सभ तों वड्डी ओह सरकार।

जो कोई उस नूं लखया चाहे, बाझ वसीले लखया न जाए।¶¶
शाह इनाइत भेत बताए, तां खुल्ले सभ इसरार।***

(फ़क़ीर मुहम्मद: *कुल्लियात*, 152)

---

* **अहद**=प्रभु; **ज़ाहर**=प्रकट; **तजल्ला**=प्रकाश।

† **जब्बार**=सर्वशक्तिमान्।

‡ **बेचून**=मायारहित; **बेशबीया बेनमूना**=जिसका कोई आकार न हो, जिस जैसा कोई दूसरा न हो।

§ अब वह हज़ारों रंगों और रूपों में प्रकट हो गया है।

¶ वह प्रभु (**अहद**) सतगुरु (**अहमद**) और सब पैग़म्बरों का सरदार (**नबीयां दा सरदार**) बनकर आ गया।

** देखिये पृ. 229

†† मैंने मस्जिद और मन्दिर (**बुतख़ाना**) त्याग दिया है। मैं न रोज़ा रखता हूँ न व्रत।

‡‡ **भुल...दुगाना**=मैंने हाथ, पाँव, मुँह धोना (**वुज़ू**), नमाज़ पढ़ना त्याग दिया है।

§§ **बरदे**=सेवक; **इनस**=इनसान; **मलायक**=मलक का बहुवचन है जिसका अर्थ है देवतागण।

¶¶ **वसीले**=साधक अर्थात् सतगुरु।

*** **इसरार**=रहस्य, भेद।

चीना ईं छड़ींदा यार

साईं बुल्लेशाह की यह काफ़ी पुस्तक के कई संस्करण छप जाने के बाद हमें प्राप्त हुई है। यह पाकिस्तान के प्रसिद्ध क़व्वाल पठाना खाँ की गायी हुई है। यह आध्यात्मिक रहस्यों से भरपूर है और विचार करने की दृष्टि से विशेष ध्यान देने के योग्य है।

इस काफ़ी की बोली और बोलने के लहज़े पर मुल्तानी भाषा का विशेष प्रभाव दिखायी देता है। इसकी बोली कई स्थानों पर बुल्लेशाह की आम काफ़ियों की बोली से कुछ भिन्न है पर इसका ज़ोर और बोलने का लहज़ा बुल्लेशाह का ही है तथा इसमें वर्णन किया गया रूहानी अनुभव भी बुल्लेशाह जैसे कामिल सूफ़ी दरवेश का है। ऐसा लगता है कि समय के बीतने पर मुल्तान के क़व्वालों ने काफ़ी के शब्दों और अदायगी को मुल्तानी रंग दे दिया, पर मूल कथन साईं बुल्लेशाह का ही प्रतीत होता है।

काफ़ी से प्रकट अनुभव पर ध्यान देना आवश्यक है। टेक के बाद के पहले पद्यांश में आत्मा परमात्मा से कहती है कि जब तूने अपने हुक्म से संसार की रचना की तो मैं तेरे पास थी। मेरे अन्दर जो बुराई पैदा हुई है, वह रचना में आकर मन का साथ लेने के कारण हुई है, अन्यथा तेरी जाति और लिंग में से होने के कारण मेरे अन्तर में वास्तव में कोई मैल न था। आपका अभिप्राय है कि आत्मा परमात्मा की अंश है। यह परमात्मा की भाँति ही निर्मल, चेतन और आनन्द-रूप है। मन का साथ लेने के कारण आत्मा मलिन हो चुकी है।

टेक यह भाव प्रकट करती है कि मन की मलिनता दूर करने का एकमात्र तरीक़ा यह है कि जीव प्रभु के नाम का सिमरन करे और मुर्शिद (सतगुरु) के स्वरूप का ध्यान करे। इस प्रकार परमात्मा की इबादत या भक्ति का चीना (एक प्रकार का अनाज) फटकने (साफ़ करने) से आत्मा नफ़्स (मन) की मलिनता दूर करके, पुन: पवित्र होकर, परमात्मा से मिलने के योग्य हो जायेगी। प्रत्येक पद्यांश के बाद टेक इसी भाव पर ज़ोर दे रही है, क्योंकि इसके बिना जीव बन्धन-मुक्त नहीं हो सकता।

दूसरे पद्यांश में यह सुझाव दिया गया है कि परमात्मा की भक्ति का चीना कूटने के लिए हृदय की ओखली को काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, आशा-तृष्णा आदि की मिट्टी और कंकर-पत्थर से साफ़ करना आवश्यक है। यह कार्य धैर्यपूर्वक करना है, 'छज्ज सबर दा रक्खीं त्यार।'

तीसरे पद्यांश में जीवात्मा खेद प्रकट करती है कि मनरूपी कौआ भक्ति के कार्य में विघ्न डालता है। मन या नफ़्स को यहाँ कौआ कहा गया है क्योंकि इसका झुकाव इन्द्रियों के भोगों की गन्दगी की ओर रहता है। यह 'हरामी' शैतान या काल का रूप है और सदा आत्मा को परमात्मा से दूर रखने के कार्य में लगा रहता है।

चौथे अंश में जीवात्मा अपनी एक अन्य मजबूरी का वर्णन करती है। चीना कूटते समय अँगुलियों में छल्ले चुभते हैं और भारी मूसल उठायी नहीं जाती अर्थात् संसार के ऐश्वर्य या भोगों में लिप्त जीवात्मा को परमात्मा की भक्ति का चीना कूटना बहुत कठिन लगता है। पर उसे इस बात का पता है कि अगर मैंने भक्ति का चीना न कूटा तो मार पड़ेंगी। 'ओह ना रखदा मूल उधार' का अभिप्राय है कि धुर-दरगाह में पूरा हिसाब होता है। परमात्मा की भक्ति भुलानेवालों को सज़ा मिलती है और परमात्मा के सच्चे प्रेमियों को उससे मिलाप का आनन्द प्राप्त होता है।

पाँचवें पद्यांश में यह भाव प्रकट किया गया है कि यद्यपि सभी आत्माएँ संसार में आकर परमात्मा से दूर हो चुकी हैं पर जिन जीवों के अन्दर परमात्मा के मिलाप की सच्ची तड़प होती है, वे बाहर से परमात्मा से दूर होने के बावजूद अन्दर से परमात्मा के निकट हैं। जिसके हृदय में परमात्मा के वियोग की कटार चुभ चुकी है और मन में उसके मिलाप की सच्ची तड़प जाग उठी है, वह हमेशा उस प्रियतम की खोज में व्याकुल रहता है। वास्तव में ऐसी आत्मा उस प्रियतम से दूर नहीं है। उसे अपने प्रिय के दीदार की दात अवश्य मिलती है और उसका उस सच्चे परमात्मा से जो नूर का अथाह स्रोत है, मिलाप अवश्य होता है। उसकी आन्तरिक आँख सदा उसका जलवा देखती है।

छठे पद्यांश में परमात्मा के सच्चे प्रेमियों के बारे में बहुत सूक्ष्म और महत्त्वपूर्ण संकेत दिये गये हैं। परमात्मा के सच्चे प्रेमी अन्तर में ऐसी नमाज़

अदा करते हैं, जिसमें लफ़्ज़ों की ज़रूरत नहीं। यह प्रभु के भक्तों का अन्तर में शब्द या नाम की बाँगे-आसमानी या निदाए-सुलतानी से जुड़े होने की ओर संकेत है जिसकी दिव्य ध्वनि बिना बजाये हरएक के अन्दर दिन-रात बज रही है। वे ध्वनि आँखों, कानों या ज़बान का विषय नहीं है। उस ध्वनि को सुनकर वह, दृश्यमान संसार की अनेकता से प्रभु-एकता में पहुँच जाते हैं। फिर उनको अपनी आन्तरिक चुप में एक दिव्य दीपक (चराग सकूत) जलता दिखायी देता है। वे अन्तर में शब्द की ध्वनि को सुनकर और शब्द के प्रकाश को देखकर अन्दर ही अन्दर स्वत: सिद्ध परमात्मा का गुप्त रूप से सजदा करते हैं और यही गुप्त या सोया हुआ (ख़ुफ़िया) खाना खाते हैं। तात्पर्य यह है कि शब्द की धुनी और शब्द का प्रकाश उनकी आत्मा की असल ख़ुराक बन जाता है। परमात्मा के कलमे की ध्वनि और प्रकाश में लीन होकर ही उनको परमात्मा के सच्चे प्रेम की समझ आती है। तब उनको (यकसूई) एकाग्रता या समाधि की अवस्था में इस सच्चे प्रेम की सुध-बुध नहीं रहती, 'वल वल दी ख़बर ना काई।'

काफ़ी के सातवें और अन्तिम भाग में परमात्मा के सच्चे प्रेम से परिचित हो चुकी आत्मा प्रभु की बड़ाई करती हुई कहती है: हे मेरे मालिक, तू ऊँचे से ऊँचा है, मुक़ामे-हक़ या सचखण्ड का रहनेवाला है। तेरी जाति भी ऊँची है और तेरा मुक़ाम (रहने का स्थान) भी ऊँचा है। मैं संसार की वासी बन चुकी हूँ। मैं भी नीची हूँ और संसाररूपी घर भी नीचा है। तू बुराइयों, पापों से बिलकुल पवित्र और साफ़ है, पर मैं मोह-माया के संसार में फँसी होने के कारण अनेक प्रकार की बुराइयों व पापों (कसूरों) से लिप्त हो चुकी हूँ। मैं केवल तेरी दया-मेहर से ही इन दोषों से भरी (मन-माया की) घाटी को पार करके तेरी ऊँची, निर्मल अथवा बेक़सूर घाटी में वापस पहुँच सकती हूँ।

स्पष्ट है कि काफ़ी में आत्मा के मूल, आत्मा और परमात्मा के रिश्ते, आत्मा और परमात्मा के मध्य नफ़्स (मन) की रुकावट, आत्मा को लगी काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की मैलों, इनको दूर करने के लिए परमात्मा की सच्ची भक्ति के चीने को फटकने (साफ़ करने) की ज़रूरत,

इस भक्ति में परमात्मा के नाम के सिमरन और मुर्शिद के ध्यान की आवश्यकता, सिमरन और ध्यान से प्राप्त होनेवाली पूर्ण एकाग्रता की अवस्था और इस अवस्था में अन्दर सुनायी देनेवाली शब्द की ध्वनि और दिखायी देनेवाले शब्द के प्रकाश आदि के बारे में अनेक संकेत दिये गये हैं। इसमें परमात्मा को नूर का चश्मा कहा गया है और आत्मा के अन्तर में शब्द की धुनी और शब्द के प्रकाश में लीन करने को ही परमात्मा की सच्ची भक्ति या सच्चे प्रेम का दर्जा दिया गया है। नि:सन्देह इस काफ़ी में न केवल साईं बुल्लेशाह के विशुद्ध आध्यात्मिक अनुभव का, बल्कि सभी पूर्ण सन्तों के आध्यात्मिक दर्शन का अति सुन्दर सार मिल जाता है:

चीना ईं छड़ींदा यार। चीना ईं ...*
वज्जे अल्ला वाली तार। वज्जे मुरशद वाली तार।
वज्जे साईंआं वाली तार, चीना ईं ...

कुन फ़यकून फ़रमाया जदां, असां कोल तुसाडे हासे।
नफ़स पलीत पलीत कीता, असां असल पलीत न हासे।
फ़ुरकत ख़ैर ख़राब कीता, ना तां ज़ाती हासे खासे।
चीना ईं छड़ींदा यार। वज्जे ...

पहले उखली साफ़ कराईं, रोड़ा, मिट्टी, धूड़ हटाईं।
फिर उखली विच चीना पाईं, छज्ज सबर दा रक्खीं त्यार।
चीना ईं छड़ींदा यार। वज्जे ...

कां हरामी छड़न न दिंदा, उडदा पिच्छां झाट मरेंदा।
कीता कंम ख़राब करेंदा, उड जा कावां विच पलकार।
चीना ईं छड़ींदा यार। वज्जे ...

उंगलियां दे विच चुब्भण छल्ले, भारी मोहली मूल न हल्ले।
जे न छड़सें लगसण खल्ले, ओह ना रखदा मूल उधार।
चीना ईं छड़ींदा यार। वज्जे ...

---

* **चीना**=एक प्रकार का अनाज।

इक हज़ूरों दूर थीए, कई दूरों रहण हज़ूरे।
तांघ लग्गी दिल सांग मिसल, दिल भाले ओह नित ज़रूरे।
जो दिल भाले तिस दा माही, ओह नहीं अक्खियां तों दूरे।
सिकदे ख़ैर कूं ख़ैर मिलया, फिर ख़ुद ख़ैर माही ओह नूरे।
चीना ईं छड़ींदा यार। वज्जे ...

आशक इश्क़ नमाज़ हमेशा, ला हरफों करन अदाईं।
सुन्नत नफ़ल फ़रज़ वाजब, उन्नां समझ गिद्धी यकताई।
चराग सकूत ते सजदा ख़ुफ़िया, एहो ख़ुफ़िया खाणा चाही।
ख़बर इश्क़ दी खैर मिली, वल वल दी ख़बर ना काई।
चीना ईं छड़ींदा यार। वज्जे ...

तुसीं वी उच्चे तुहाडी ज़ात वी उच्ची, तुसीं विच उच्च दे रैह्न्दे।
असीं कसूरी साडी ज़ात कसूरी, असीं विच कसूर दे रैह्न्दे।
बुल्लेशाह तां सच...*

* जिस टेप से इस काफ़ी को लिया गया है, उस पर यह पंक्ति इतनी ही सुनी जा सकी है। इस काफ़ी का एक रूपान्तर पुस्तक के पृ. 27 पर दिया गया है जो हुज़ूर महाराज सावन सिंह जी की प्रसिद्ध पुस्तक *परमार्थी साखियाँ* में से लिया गया है।

बारहमाह

बारहमाह पंजाबी लोक-काव्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। हिन्दी में इसका प्रचलन पहली बार मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी प्रसिद्ध कृति *पदमावत* में किया था। बारहमाह से भाव वर्ष के बारह महीनों से है। विभिन्न कवियों एवं सन्तों ने इस काव्य-विधा को अपनाया है। इसमें प्राय: विरहिणी अपने प्रियतम से मिलाप के लिए वियोग के समय की विरह-व्यथा का वर्णन करती है। हर महीने की ऋतु और स्थिति के अनुसार वियोग की दशा का चित्रण करना ही कवि का प्रमुख लक्ष्य रहा है।

साईं बुल्लेशाह ने भी बारहमाह की रचना की है। वे आश्विन मास से बारहमाह शुरू करते हैं। व्याकुल विरहिणी अपने प्रियतम को सन्देश भेजती है। वह विरह-व्यथा से ग्रस्त है और प्रेम नगर की उलटी चालों को ही अपने वियोग का कारण बताती है। प्रत्येक महीने के प्रारम्भ में एक दोहा है। उसके बाद की पंक्तियाँ उसी भाव की पुष्टि के लिए उदाहरण स्वरूप दी गयी हैं:

आश्विन

अस्सू लिखूं संदेसड़ा वाचे मेरा पी।*
गमन किया तुम काहे को जो कल मल आया जी।†
अस्सू असां तुसाडी आस, साडी जिंद तुसाडे पास।
जिगर मुढ प्रेम दी लास, दुक्खां हड्ड सुकाए मास,
सूलां साड़ियां।‡

* मेरा सन्देश (**संदेसड़ा**) मेरा प्रियतम ही पढ़े।
† **गमन किया**=चले गये।
‡ **जिगर**=दिल

सूलां साड़ी रही बेहाल, मुट्ठी तदों न गइयां नाल।*
उलटी प्रेम नगर दी चाल, बुल्ला शौह दी करसां भाल,
प्यारे मारियां।

कार्तिक

कहो कतक कैसी जो बणयो कठन से भोग।†
सीस कप्पर हत्थ जोड़ के मांगूं भीख संजोग।‡
कत्तक क्या तुंबण कत्तण, लग्गी चाट तां होया अत्तण।§
दर दर लगे धंमा घत्तन, औखी घाट पुचाए पत्तण,
शाम वास्ते।¶
हुण मैं मोई बेदरद लोका, कोई देओ उच्ची चढ़ के होका।
मेरा उन संग नेहों चरोका, बुल्ला शौह बिन जीवन औखा,
जांदा पास ते।**

मार्गशीष

मग्घर मैं कर रहीआं सोध के सभ ऊचे नीचे वेख।
पढ़ पंडत पोथी भाल रहे हर हर से रहे अलेख।††
मग्घर मैं घर किद्धर जांदा, राकश नेहों हड्डां नूं खांदा।‡‡
सड़ सड़ जीअ पया कुरलांदा, आवे लाल किसे दा आंदा,
बांदी हो रहां।§§

---

* **मुट्ठी**=लूटी।
† कार्तिक में सिर पर आयी मुसीबत को भोगना पड़ेगा।
‡ हाथ में सिर का प्याला लेकर मिलाप की भीख माँग रही हूँ।
§ **अत्तण**=दु:ख; विरह की सतायी हुई को कातना, तुँबना अच्छा नहीं लगता।
¶ **औखी...वास्ते**=प्रियतम (श्याम) से आग्रह करती हूँ कि पार उतार दे।
** प्रियतम से धुर का प्रेम है। उसके बिना जीवन असम्भव है।
†† **हर...अलेख**=हरि सबसे निर्लिप्त है।
‡‡ **राकश...खांदा**=प्रेम (**नेहों**) रूपी जिन्न (**राकश**) हड्डियों को खाता है।
§§ **बांदी**=दासी, सेविका।

जो कोई सानूं यार मिलावे, सोज़े अलम थीं सरद करावें।*
चिखा तों बैठी सती उठावे, बुल्ला शौह बिन नींद न आवे,
भावें सो रहां।

पौष

पोह हुण पूछूं जा के तुम न्यारे क्यों मीत।
किस मोहन मन मोह लिया जो पत्थर कीनो चीत।†
पानी पोह पवन भट्ठ पइआं, लद्दे होत तां उघड़ गइआं।‡
न संग मापे सज्जन सइआं, प्यारे इश्क चवाती लइआं,
दुखां रोलिआं।
कड़ कड़ कप्पर कड़क डराए, मारू थल विच बेड़े पाए।§
जिउंदी मोई नी मेरी माए, बुल्ला शौह क्यों अजे न आए,
हंझू डोहलिआं।

माघ

माघी नहावन मैं चली जो तीरथ कर सामान।¶
गज गज बरसे मेघला मैं रो रो करां स्नान।**
माघ महीने गए उलांघ, नवीं मुहब्बत बहुती तांघ,
इश्क़ मुअज़्ज़न दित्ती बांग, पढ़ां निमाज़ पिया दी तांघ,
दुआई की करां।††

---

* **सोज़े अलम**=चिन्ता का दु:ख; **सरद करावें**=शान्त करे, छुड़ाना।
† तेरा मन किसने मोह लिया है जो तू हमारी ओर से पत्थर-दिल हो गया है और कोई ध्यान नहीं देता।
‡ **होत**=पून्नू; **उघड़ गइआं**=वास्तविकता प्रकट हो गयी है। जब पुन्नूँ को ऊँटों पर लादकर ले गये तो प्रेम की वास्तविकता प्रकट हो गयी।
§ मरुस्थल में बेड़ा अटक गया, पार उतारे का कोई साधन ही न रहा।
¶ हिन्दू लोग माघ के महीने में तीर्थों, कुओं और सरोवरों में स्नान करने को शुभ समझते हैं।
** **मेघला**=बादल।
†† **मुअज़्ज़न**=बाँग देनेवाला मौलवी; प्रेमरूपी मौलवी ने बाँग दी है अर्थात् अन्दर प्रेम शोर मचा रहा है; **दुआई**=प्रार्थनाएँ, विनतियाँ।

आखां प्यारे मैं वल आ, तेरे मुख वेखण दा चाअ।
भावें होर तत्ती नूं ताअ, बुल्ला शौह नूं आण मिला,
तेरी हो रहां।

फाल्गुण

फग्गण फूले खेत ज्यों वण तिण फूल शिंगार।
हर डाली फुल पत्तियां गल फूलन के हार।
होरी खेलन सइआं फग्गन, मेरे नैन झलारीं वग्गन।*
औखे जीउंदयां दे दिन तग्गन, सीने बाण प्रेम दे लग्गन,
होरी हो रही।†
जो कुझ रोज़े-अज़ल थीं होई, लिखी कलम ना मेटे कोई।‡
दुक्खां सूलां दित्ती ढोई, बुल्ला शौह नूं आखो कोई,
जिस नूं रो रही।

चैत्र

चेत चमन विच कोयलां, नित कू कू करन पुकार।§
मैं सुण सुण झुर झुर मर रही, कब घर आवे यार।
हुण की करां जो आया चेत, बण तिणण फूल रहे खेत।
देंदे अपणा अन्त न भेत, साडी हार तुसाडी जेत,
हुण मैं हारियां।
हुण मैं हारियां अपणा आप, तुहाडा इश्क़ असाडा खाप।
तेरे नेहों दा शूकया ताप, बुल्ला शौह की लाया पाप,
कारे हारियां।

---

* **झलारीं**=धार।
† **औखे...तग्गन**=दिन कठिनाई से व्यतीत होते हैं।
‡ **रोज़े-अज़ल**=जिस दिन संसार का सृजन किया गया; **कलम**=लेख; अर्थात् विधाता या कर्मों का लिखा कोई मिटा नहीं सकता।
§ **चमन**=बाग़।

बैशाख

बिसाखी दा दिन कठिन है जे संग मीत न हो।
मैं किस के आगे जा कहूं इक मंडी भा दो।
तां मन भावे सुख बसाख गुच्छीआं पइआं पक्की दाख।*
लाखी लै घर आया लाख तां मैं बात सकां आख,
कौंतां वालियां।†
कौंतां वालियां डाहडा ज़ोर, हुण मैं झुर झुर होई आं मोर।
कंडे पुड़े कलेजे ज़ोर, बुल्ला शौह बिन कोई न होर,
जिन घत्त गालियां।

ज्येष्ठ

जेठ जेही मोहे अगन है जब के बिछड़े मीत।
सुण सुण घुण घुण झुर मरों जो तुमरी ये प्रीत।
लोआं धुप्पां पैंदीआं जेठ, मजलिस बैह्न्दी बागां हेठ।‡
तत्ती ठंडी वग्गे पेठ, दफ़्तर कद्ढ पुराणे सेठ,
महुरा खानी आं।§
अज्ज कल्ह सद्द होई अलबत्ता, हुण मैं आह कलेजा तत्ता।¶
ना घर कौंत ना दाणा भत्ता, बुल्ला शौह होरां संग रत्ता,
सीने कानी आं।**

आषाढ़

हाढ़ सोहे मोहे झट पटे जो लग्गी प्रेम की आग।
जिस लागे तिस जल बुझे ज्यों भौर जलावे भाग।

---

* **गुच्छीआं...दाख**=अंगूरों के गुच्छे पक चुके हैं।
† **कौंतां**=कन्त।
‡ लोग इकट्ठे होकर वृक्ष की छाया के नीचे बैठते हैं।
§ **पेठ**=हवा; **महुरा...आं**=विष खाती हूँ।
¶ दुःखी; दशा ख़राब हो गयी है।
** **सीने...आं**=कलेजे में तीर लगते हैं।

हुण की करां जो आया हाड़, तन विच इश्क़ तपाया भाड़।*
तेरे इश्क़ ने दित्ता साड़, रोवन अक्खियां करन पुकार,
तेरे हावड़े।†
हाड़े घत्तां शामी अग्गे, कासद लै के पत्तर वग्गे।‡
काले गए ते आए बग्गे, बुल्ला शौह बिन ज़रां न तग्गे,
शामी बहवड़े।§

श्रावण

सावण सोहे मेघला घट सोहे करतार।
ठौर ठौर इनायत बस्से पपीहा करे पुकार।
सोहन मलहारां सारे सावन, दूती दुःख लगे उठ जावण।
नींगर खेडण कुड़ियां गावण, मैं घर रंग रंगीले आवण,
आसां पुंनीआं।¶
मेरियां आसां रब्ब पुचाइयां, मैं तां उन संग अक्खियां लाइयां।
सईआं देण मुबारक आइयां, शाह इनायत आखां साइयां,
आसां पुंनीआं।

भाद्रपद

भादों भावे तब सखी जो पल पल होवे मिलाप।
जो घट देखूं खोल के घट घट दे विच आप।
आ हुण भादों भाग जगाया, साहिब कुदरत सेती आया।
हर हर दे विच आप समाया, शाह इनायत आप लखाया,
तां मैं लखया।

---

* **भाड़**=भट्ठी।
† **हावड़े**=विछोड़े।
‡ **कासद**=सन्देशवाहक; **पत्तर**=चिट्ठी, पत्र।
§ **काले...बग्गे**=काले बालों के स्थान पर सफ़ेद बाल आ गये हैं; **बुल्ला...तग्गे**=प्यार के बिना बल नहीं है; **शामी**=ज़िन्दगी की शाम; **बहवड़े**=आ पहुँचे।
¶ **नींगर**=लड़के; **आसां पुंनीआं**=आशाएँ पूरी हुईं।

आखर उमरे होई तसल्ला, पल पल मंगण नैन तजल्ला।*
जो कुझ होसी करसी अल्ला, बुल्ला शौह बिन कुझ ना भल्ला,
प्रेम रस चखया।†

---

* **तसल्ला**=सांत्वना, तसल्ली, सहारा; **तजल्ला**=नूर, प्रकाश भाव दीदार।
† मैंने परमात्मा के प्यार का रस चखकर देख लिया है कि परमात्मा के बिना कुछ अच्छा (**भल्ला**) या मन को ख़ुश करनेवाला नहीं है।

सीहरफ़ी

सीहरफ़ी काव्य का एक रूप है। जिस प्रकार हिन्दी में बावन अक्षरी लिखने की प्रथा थी, उसी प्रकार उर्दू और फ़ारसी में तीस अक्षरों के अनुसार सीहरफ़ी लिखने का रिवाज रहा है। बाद में पंजाबी में भी यह प्रयोग प्रचलित हो गया। बुल्लेशाह ने भी सीहरफ़ी की रचना की। साईं जी की तीन सीहरफ़ियाँ मिलती हैं। काव्य की दृष्टि से इन तीनों में अन्तर पाया जाता है। सीहरफ़ी का मुख्य विषय सूफ़ीमत है। यहाँ एक सीहरफ़ी का कुछ भाग दिया गया है:

लागी रे लागी बल बल जावे।*
इस लागी को कौन बुझावे।

अलिफ़ – अल्ला जिस दिल पर होवे, मुँह ज़रदी अक्खीं लहू भर रोवे।†
जीवन आपणे तों हत्थ धोवे, जिस नूं बिरहों अग्ग लगावे।
लागी रे लागी बल बल जावे।

बे – बालण मैं तेरा होई, इश्क़ नज़ारे आण वगोई।‡
रोंदे नैण ना लैंदे ढोई, लूण फट्टां ते कीकर लावे।
लागी रे लागी बल बल जावे।

ते – तेरे संग प्रीत लगाई, जीव ज़ामे दी कीती साई।§
मैं बकरी तुध कोल कसाई, कट कट मास हड्डां नू खावे।
लागी रे लागी बल बल जावे।

---

* प्रेम की आग लग गयी।
† **मुँह ज़रदी**=मुँह पीला पड़ जाता है।
‡ प्रेमी के दर्शन ने मेरी सुध-बुध छीन ली है।
§ **जीव**=आत्मा; **ज़ामे**=शरीर; **जीव...साई**=प्रेम के लिए तन व मन न्योछावर करने के लिए तैयार हूँ।

से – साबत नेहों लाया मैनूं, दूजा कूक सुणावां कीहनूं।*
रात अद्धी उठ ठिलदी नैं नूं कूंजां वांग पई कुरलावे।†
इस लागी को कौण बुझावे।

जीम – जहानों होई सां न्यारी, लगा नेहों ता होए भिकारी।
नाल सरों दे बणे पसारी, दूजा दे मेह्णे जग तावे।‡
इस लागी को कौण बुझावे।

हे – हैरत विच शांत नाहीं, ज़ाहर बातन मारन ढाही।§
झात घत्तण नू लावण वाहीं, सीने सूल प्रेम की धावे।¶
इस लागी को कौण बुझावे।

खे – खूबी हुण ओह न रहिया, जब की सांग कलेजे सहिया।**
आहीं नाल पुकारां कहिया, "तुध बिन कौण जो आण बुझावे"।
इस लागी को कौण बुझावे।

दाल – दूरों दुःख दूर ना होवे, फ़क़्क़र फ़र्राक़ो बहुता रोवे।††
तन भट्ठी दिल खिल्लां धनोवे, इश्क़ अक्खां विच मिरचां लावे।‡‡
इस लागी को कौण बुझावे।

ज़ाल – ज़ौक दुनिया ते इत ना करना, खौफ़ हशर दे थीं डरना।§§
चलना नबी साहिब दे सरना, ओड़क जा हिसाब करावे।
इस लागी को कौण बुझावे।

---

* **साबत**=पूरा।
† **नैं**=नदी; अर्थात् सोहनी की भाँति प्रेम-नदी को तरने का प्रयत्न करती है।
‡ **तावे**=जलाये।
§ मैं परेशान (**हैरत विच**) हूँ, मुझे ठण्ड नहीं लगती।
¶ **झात**=दर्शन; **वाही**=ज़ोर; **झात...वाहीं**=उसका दीदार करने के लिए ज़ोर लगाते हैं।
** **सांग**=बरछी, कटार।
†† **फ़र्राक़ो**=वियोग, विछोड़ा; **फ़क़्क़र...रोवे**=प्रेमी (फ़क़ीर) को विछोड़ा दुःखी करता है।
‡‡ **तन...धनोवे**=तन की भट्टी में दिल के दाने भुनते हैं।
§§ संसार से इतना प्यार न करना, मौत से डरना।

रो – रोज़ हशर कोई कहे ना खाली, लए हिसाब दो जग्ग दा वाली।
ज़ेर ज़बर सब भुल्लण वाली, तिस दिन हज़रत आप छुड़ावे।*
इस लागी को कौण बुझावे।

ज़े – ज़ुहद कमाई चंगी करीए, जेकर मरन तों अग्गे मरीए।†
फिर मोए भी उस तों डरीए, मत मोयां नूं पकड़ मंगावे।
इस लागी को कौण बुझावे।

सीन – साईं बिन जा ना कोई, जित्त वल वेखां ओही ओही।
होर किते वल मिले न ढोई, मुर्शिद मेरा पार लंघावे।
इस लागी को कौण बुझावे।

* **ज़ेर, ज़बर**=छोटा, बड़ा।
† **ज़ुहद**=तप, भक्ति; **ज़ुहद...करीए**=नेक कमाई करते हुए भक्ति करो।

गंढाँ

प्राचीन काल में विशेष रूप से पंजाब में जब लड़की के विवाह का मुहूर्त निकाला जाता था तो लड़केवाले लग्न को पक्का करने के लिए लड़कीवालों के घर एक रेशमी धागे को उतनी गाँठें डालकर भेजते थे, जितने दिन विवाह में शेष रहते थे।

वास्तव में 'गंढाँ' भी काव्य का एक प्रचलित रूप रहा है। बुल्लेशाह ने परमात्मा से अपने मिलाप की घड़ी की तुलना विवाह के मुहूर्त से की है। 'सुरती' से भाव जीवात्मा से है और 'काज' से अभिप्राय परलोक जाने की लग्न से है। ये सब वर्णन सांकेतिक हैं। यहाँ साईं बुल्लेशाह की चालीस गंढों में से कुछ उदाहरण के रूप दी गयी हैं:

कहो सुरती गल्ल काज दी मैं गंढां केतीआं पाऊं।*
साहे ते जंज आवसी हुण चाह्ली गंढ घताऊं''।†
बाबल आखया आण के, ''तै साहवरया घर जाणा।
रीत ओथों दी और है मुड़ पैर न एथे पाणा''।

गंढ पहली नूं खोल्ह के मैं बैठी बरलावां।‡
ओड़क जावण जावणा हुण मैं दाज रंगावां।
देखूं तरफ बाजार दी सभ रस्ते लागे।
पल्ले नाहीं रोकड़ी सभ मुझ से भागें।

* **सुरती**=आत्मा।
† **साहे**=लग्न, विवाह का दिन; **घताऊं**=डालना।
‡ **बरलावां**=बिलखना।

दूजी खोलूं क्या कहूं दिन थोड़े रैह्न्दे।
सूल सब्भे रल आंवदे सीने विच बैह्न्दे।
झल्ल वलल्ली मैं होई तुंब कत्त न जाणा।
जंज़ ऐंवें रल आवसी ज्यों चढ़दा ठाणा।

तीजी खोहलूं दुख से रोंदे नैण ना हटदे।
किस नूं पुच्छां जाय के दिन जांदे घटदे।
गुण वालियां सभ प्यारियां मैं को गुण नाहीं।
हत्थ मले मल सिर धरां मैं रोवां ढाईं।

पंजवीं खोहलूं कूक के कर सोज पुकारां।
पहली रात डरावणी क्यों दिलों विसारां।
मुद्दत थोहड़ी आ रही किवें दाज बणावां।
जा आखो घर साहवरे गंढ लाग वधावां।

याहरां गंढां खोहलियां मैं हिजरे मारी।
गइआं सइआं साहवरे हुण मेरी वारी।
बांह सरहाने दे कदी असीं मूल न सौंदे।
फट्टां उत्ते लूण है फट्ट सिंमदे लौंदे।

सोल्हां गंढीं खोहलियां मैं होई निमाणी।
एथे पेश किसे ना जासीआ ना अग्गे जाणी।
एथे आवण केहा ए होया जोगी दा फेरा।
अग्गे जा के मारना विच कल्लर डेरा।

बाईं खोहलूं पहुंच के सभ मीरां मलकां।*
ओहना डेरा कूच है मैं खोहलां पलकां।
अपणा रहणा की करां केहड़े बाग दी मूली।
खाली जग विच आयके सुपने पर भूली।

* **मलकां**=शासक, राजा सदा नहीं रहे।

सताई खोल्ह सहेलियो सभ जतन सिधाया।
दो नैणां ने रोंदयां मींह सावण लाया।
इक इक साइत दुःख दी सौ जतन गुज़ारी।*
अग्गे जाणा दूर है सिर गठड़ी भारी।

बुल्ला पैंती खोहलदी शौह नेड़े आए।
बदले इस अज़ाब दे मत मुख दिखलाए।†
अग्गे थोड़ी पीड़ सी नेहों कीता दीवानी।
पी गली असाडी आ वड़े तां होग आसानी।

सैंती गंढीं खोहलियां, मैं मेहंदी लाई।
मलायम देही मैं करां मत गले लगाई।
उहा घड़ी सुलक्खणी जा मैं वल आवे।
ता मैं गावां सोहले जे मैनूं रावे।

अठत्ती गंढीं खोहलियां केह करने लेखे।
ना होवे काज सुहावना बिन तेरे वेखे।
तेरा भेत सुहाग है मैं उस केह करसां।
लैसां गले लगायके पर मूल न डरसां।

उनताली गंढी खोहलियां सभ सइआं रल के।
'इनायत' सेज ते आवसी हुण मैं वल फुल के।‡
चूड़ा बाहीं सिर धड़ी हत्थ सोहे कंगणा।
रंगण चढ़ी शौह वसल दी मैं तन मन रंगणा।§

* **साइत**=घड़ी।
† **अज़ाब**=दुःख।
‡ **इनायत**=हज़रत इनायत शाह।
§ तन व मन प्रेम और मिलाप की ख़ुशी के रंग में रँग गया।

कर बिसमिल्लाह खोहलियां मैं गंढां चाली।*
जिस आपणा आप वंजाया सो सुरजन वाली।†
जंज सोहनी मैं भाउंदी लटकेंदा आवे।
जिस नूं इश्क़ है लाल दा सो लाल हो जावे।
अकल फिकर सभ छोड़ के शौह नाल सिधाए।
बिन काहणों गल्ल ग़ैर दी असां याद न काए।
हुण इंना-लिलाह आख के तुम करो दुआईं।‡
पिया ही सब हो गया अब्दुल्ला नाहीं।§

* परमात्मा का नाम लेकर गाँठें खोल रही हूँ, भाव विवाह के लिए तैयार हो रही हूँ।
† **वंजाया**=दूर किया; सुरजन=देवता; भाव तेरा प्रियतम अहं मिटाकर सिद्ध पुरुष बन चुका है।
‡ **इंना-लिलाह**=हम परमात्मा के बन्दे हैं। पाठ इंना-लिलाह के स्थान पर 'इक अलाह' भी मिलता है।
§ **अब्दुल्ला**=बुल्लेशाह का असली नाम अब्दुल्ला था।

अठवारा

प्राचीनकाल में बारहमाह की भाँति 'अठवारा' भी लिखने की प्रथा थी। इसमें सप्ताह के दिनों के माध्यम से काव्य-रचना की जाती है। साईं बुल्लेशाह ने अठवारा का आरम्भ शनिवार (छनिछरवार) से किया है, जिसका अन्तिम दिन जुम्मा (शुक्रवार) है। मुसलमानों में इस दिन का विशेष महत्त्व है। यह एक धार्मिक पूजा का दिन माना जाता है और इस दिन नमाज़ पढ़ने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। साईं बुल्लेशाह के इस अठवारा का विषय सतगुरु के वियोग में विरहिणी के हृदय की तड़प का वर्णन है। सात दिनों को अठवारा बनाने के लिए इस रचना के अन्त में 'जुम्मा' की महिमा में एक काफ़ी 'जुम्मे दी होवे बहार' देकर साईं जी ने मिलाप के क्षणों पर प्रसन्नता प्रकट की है:

छनिछरवार उतावले वेख सज्जण दी सो।*
असां मुड़ घर फेर न आवणा जो होग सो हो।†
वाह वाह छनिछरवार वहेले दुःख सज्जण दे मैं वल पेले।‡
ढूंढा औझड़ जंगल बेले, ओहड़ां रैण कवल्लड़े वेले,
बिरहों घेरियां।§
खड़ी तांघ तुसाडियां तांघां, रातीं सुतड़े शेर उलांघां।¶
उच्ची चढ़ के कूकां चांघां, सीने अंदर रड़कण सांगां,
प्यारे तेरियां।**

* **उतावले**=व्याकुल; **सो**=समाचार, सन्देश।
† बार-बार मनुष्य-जन्म नहीं मिलता। जो कुछ करना है, अब कर लेना चाहिए।
‡ **वहेले**=विष-भरे; **पेले**=भेजे।
§ **औझड़**=जंगल; **बेले**=सुनसान।
¶ **तांघ**=प्रतीक्षा; **उलांघां**=गुज़रती हूँ।
** **चांघां**=चीख़ती है; **सीने...सांगां**=हृदय में बरछी चलती है।

ऐतवार सुनैत है जो जो कदम धरे।*
ओह वी आशिक़ ना कहो सिर देंदा उज़र करे।†
ऐत ऐतवार भायत, विच्चों जाय हिजर दी सायत।‡
मेरे दुख दी सुणे हकायत, आ इनाइत करे हदायत,
तां मैं तारियां।§
तेरी यारी जही ना यारी, तेरे पकड़ विछोड़े मारी।
इश्क़ तुसाडा कयामत सारी, तां मैं होई आं वेदन भारी,
कर कुझ कारियां।

बुल्ला रोज़ सोमवार दे क्या चल चल करे पुकार।
अग्गे लक्ख करोड़ सहेलियां मैं किस दी पाणीहार।
मैं दुखयारी दुःख सवार, रोणा अक्खियां दा रुज़गार।¶
मेरी ख़बर ना लैंदा यार, हुण मैं जाता मुरदे मार,
मोयां नूं मारदा।**
मेरी ओसे नाल लड़ाई, जिसने मैनूं बरछी लाई।
सीने अन्दर भाह भड़काई, कट्ट-कट्ट खाय बिरहों कसाई,
पछाया यार दा।††

मंगल मैं गल पानी आ गया, लबां ते आवणहार।‡‡
मैं घुम्मन घेरां घेरियां, ओह वेखे खला किनार।§§

* **सुनैत**=खोपड़ी।
† **उज़र**=इनकार।
‡ इतवार अच्छा लगने लगे यदि विछोड़े की घड़ी दूर हो जाये।
§ **हकायत**=कहानी।
¶ **रुज़गार**=ख़ुराक अर्थात् आदत।
** **मुरदे मार**=मरे हुए को मारनेवाला।
†† **भाह भड़काई**=आग लगा दी; **पछाया**=घायल।
‡‡ **लबां**=होंठ।
§§ वह किनारे खड़ा मुझ डूबती हुई को देख रहा है।

मंगल बंदीवान दिलां दे, छट्टे शौह दरयावां पांदे।*
कप्पर कड़क दुपहरी खांदे, वल वल गोतयां दे मुंह आंदे,
मेरे यार दे।†
कंढे वेखे खला तमाशा, साडी मरग ओह्ना दा हासा।‡
दिल मेरे विच आई सू आसा, वेखां देसी कदों दिलासा,
नाल प्यार दे।

बुध सुध रही महबूब दी, सुध आपणी रही न होर।
मैं बलहारी ओस दे, जो खिचदा मेरी डोर।
बुध सुध आ गया बुधवार, मेरी ख़बर न लए दिलदार।
सुख दुक्खां तों घत्तां वार, दुक्खां आण मिलाया यार,
प्यारे तारियां।
प्यारे चल्लण ना देसां चलया, लै के नाल ज़ुलफ़ दे वलया।
जां ओह चलयां तां मैं छलया, तां मैं रखसां दिल विच रलया,
लैसां वारियां।

जुम्मेरात सुहावणी दुःख दरद न आहा पाप।§
ओह जामा साडा पहन के आया तमाशे आप।
अग्गों आ गई जुम्मेरात, शराबों गागर मिली बरात।¶
लग्ग गया मस्त प्याला हाथ, मैनूं भुल्ल गई ज़ात-सफ़ात,
दीवानी हो रही।**

* **बंदीवान**=बन्दी।
† **कप्पर**=लहरें।
‡ **मरग**=मृत्यु।
§ **जुम्मेरात**=बृहस्पतिवार
¶ **बरात**=दौलत; **शराबों...बरात**=अमृत का स्रोत मिल गया।
** **ज़ात-सफ़ात**=अपना आप और गुण।

ऐसी ज़हमत लोक न पावण, मुल्लां घोल तवीज़ पिलावण।*
पढ़ना अज़ीमत जिंन बुलावण, सइआं शाह मद्दार खिडावण,
मैं चुप्प हो रही।†

रोज़ जुम्मे दे बख्शियां मैं जेहियां औगुनहार।‡
फिर ओह क्यों न बख्शसी जेहड़ी पंज-मुकीम-गुज़ार।§
जुम्मे दी होरो होर बहार, हुण मैं जाता सही सत्तार।¶
बीबी बांदी बेड़ा पार, सिर ते कदम धरेंदा यार,
सुहागण हो रही।
आशिक़ हो ही गल्लां दस्सें, छोड़ मशूकां कैं वल्ल नस्सें।
बुल्ला शौह असाडे वस्सें, नित्त उठ्ठ खेडें नाले हस्सें,
गल लग्ग सो रही।

जुम्मा

जुम्मे दी होरो होर बहार।
पीर असानूं पीड़ां लाइयां, मंगल मूल न सुरतां आइयां।
इश्क़ छनिछर घोल घुमाइयां, बुध सुध लैंदा नहियों यार।
जुम्मे दी होरो होर बहार।

पीर वार रौज़े ते जावां, सभ पैग़ंबर पीर मनावां।**
जद पिया दा दरशन पावां, करदी हार शृंगार।
जुम्मे दी होरो होर बहार।

---

* **ज़हमत**=मुसीबत।
† **पढ़ना अज़ीमत**=मन्त्र पढ़कर; **शाह मद्दार**=एक करामाती फ़क़ीर।
‡ **जुम्मे**=शुक्रवार।
§ **पंज-मुकीम-गुज़ार**=पाँच पड़ाव पार कर चुकी।
¶ **सत्तार**=परदा डालनेवाला।
** **पीर वार**=वीरवार जिसको बृहस्पतिवार या गुरुवार भी कहते हैं; **रौज़ा**=मज़ार, क़ब्र या समाधि; दर्शन करने की ओर संकेत कर रहे हैं।

मनतक मान्हें पढां ना असलां, वाजब फ़रज न सुन्नत नफ़लां।*
कंम किस आइयां शरआ दीआं अकलां, कुझ नहीं बाझों दीदार।†
जुम्मे दी होरो होर बहार।

शाह इनायत दीन असाडा, दीन दुनी मकबूल असाडा।‡
खुत्थी मींडी दसत परांदा, फिरां उजाड़ उजाड़।§
जुम्मे दी होरो होर बहार।

भुली हीर सलेटी मरदी, बेले माही माही करदी।¶
कोई न मिलदा दिल दा दरदी, मैं मिलसां रांझण नाल।
जुम्में दी होरो होर बहार।

बुल्ला भुल्ला नमाज दुगाना, जद दा सुणया तान तराना।**
अकल कहे मैं ज़रा न मानां, इश्क़ कूकेंदा तारो तार।††
जुम्मे दी होरो होर बहार।

---

* **मनतक**=तर्क से रूहानी समस्या को हल करना; **मान्हें**=*क़ुरान शरीफ़* का शब्दार्थ और व्याख्या; **असलां**=बिलकुल; **वाजब**=वे इसलामी नियम जिन पर चलना आवश्यक है; **फ़रज**=जिन नियमों को आवश्यकता अनुसार छोड़ा जा सकता है; **सुन्नत**=जिन नियमों पर हज़रत मुहमद स्वयं चलते थे; **नफ़लां**=नमाज़।
† परमात्मा के दर्शन न हों तो इन सबका क्या लाभ है?
‡ सतगुरु दीन और दुनिया दोनों को परवान चढ़ानेवाला है।
§ खुले बालों से परांदा हाथ में लिये मैं राँझा के लिए पागल हुई फिरती हूँ।
¶ **सलेटी**=हीर को सलेटी भी कहा जाता है।
** **दुगाना**=शुक्राने की नमाज़; **तान तराना**=अनहद शब्द।
†† मैं बुद्धि का थोड़ा भी कहना नहीं मानती, मेरा रोम-रोम प्रेम ही प्रेम पुकार रहा है।

दोहे

अन्य सन्त कवियों की भाँति सूफ़ी फ़क़ीरों ने भी दोहे लिखे हैं। दो पंक्तियों में ही रचनाकार एक गूढ़ रहस्य छिपा देता है जिससे प्रभु-भक्त रस का आनन्द प्राप्त करते है। साईं बुल्लेशाह के दोहे कई प्रकार के हैं। कुछ में विशुद्ध आध्यात्मिकता का स्वरूप दिखायी देता है और कुछ में सूफ़ी विचारधारा की प्रत्यक्ष झलक मिलती है। इनके बहुत-से दोहे तो लोकोक्तियों के रूप में प्रचलित हैं। यहाँ कुछ प्रसिद्ध दोहे दिये गये है:

आई रुत्त शगूफ़यां वाली, चिड़ियां चुगण आइयां।*
इकना नूं जुर्रयां फड़ खाधा, इकना फाहीआं लाइयां।†

इकना आस मुड़न दी आहे, इक सीख कबाब चढ़ाइयां।‡
बुल्लेशाह की वस्स ओनां, जो मार तकदीर फसाइयां।§

होर ने सभों गल्लड़ियां, अल्लाह अल्लाह दी गल्ल।
कुझ रौला पाया आलमां, कुझ काग़ज़ां पाया झल्ल।

---

* यहाँ होनी या भाग्य का और संसार में हर ओर फैले मौत और काल के जाल का वर्णन किया गया है। संसाररूपी बाग़ में मनुष्य-जन्म शगूफ़ियोंवाली ऋतु है। जीव (**चिड़ियां**) संसार में कार्यशील होने के लिए उतरते हैं।

† **जुर्रयां**=बाज़; कुछ चिड़ियों को बाज़ (यमदूत) खा गये, कुछ (माया और भोगों की) फाँसी में फँस गयीं।

‡ कुछ जीवों के अन्दर निज-घर वापस पहुँचने की आशा है और कुछ (किये हुए कर्मों के कारण) दुःख भोग रहे हैं।

§ जिनको (किये हुए कर्मों से उत्पन्न) तक़दीर ने मार दिया, उनके कुछ भी वश में नहीं।

बुल्लया मैं मिट्टी घुमयार दी, गल्ल आख न सकदी एक।
ततड़ मेरा क्यों घड़या, मत जाए अलेक-सलेक।*

बुल्ला कसर नाम कसूर है, ओथे मूँहों ना सकण बोल।
ओथे सच्चे गरदन-मारीए, ओथे झूठे करन कलोल।

बुल्लया कसूर बेदस्तूर, ओथे जाणा बणया ज़रूर।
ना कोई पुंन दान है, ना कोई लाग दस्तूर।

बुल्लया औंदा साजन वेख के, जांदा मूल ना वेख।
मरी दरद फ़राक दे, बण बैठे बाहमण शेख।

बुल्लया अच्छे दिन तो पिच्छे गए, जब हर से किया न हेत।†
अब पछतावा क्या करे, जब चिड़ियां चुग गईं खेत।

बुल्लया कनक कौडी कामनी, तीनों की तलवार।
आए थे नाम जपन को, और विच्चे लीते मार।

कनक कौड़ी कामनी, तीनों की तलवार।
आया सैं जिस बात को, भूल गई वोह बात।

उस दा मुख इक जोत है, घुंघट है संसार।
घुंघट में वह छिप गया,मुख पर आंचल डार।

उन को मुख दिखलाए हैं, जिन से उस की प्रीत।
उनको ही मिलता है वोह, जो उस के हैं मीत।

मुँह दिखलावे और छपे, छल बल है जगदीस।
पास रहे हर न मिले, इस को बिसवे बीस।‡

---

* **अलेक-सलेक**=जान-पहचान।

† **हेत**=प्यार।

‡ यह सही बात है कि जिसको वह दर्शन नहीं देना चाहता, उसे नहीं देता, चाहे वह उसके निकट ही क्यों न रहता हो।

ना ख़ुदा मसीते लभदा, ना ख़ुदा विच काअबे।*
ना ख़ुदा कुरान किताबां, ना ख़ुदा निमाज़े।

ना ख़ुदा मैं तीरथ डिट्ठा, ऐवें पैंडे झागे।
बुल्ला शौह जद मुरशद मिल गया, छुट्टे सब तगादे।

अरबा-अनासर महल बणायो, विच वड़ बैठा आपे।†
आपे कुड़ियां आपे नींगर, आपे बनना एं मापे।‡

आपे मरें ते आपे जीवें, आपे करें सयापे।
बुल्लया जो कुझ कुदरत रब्ब दी, आपे आप संञापे।§

बुल्लया धरमसाला धड़वाई रैह्न्दे, ठाकर-द्वारे ठग।¶
विच मसीतां कुसत्तीए रैह्न्दे, आशिक़ रहण अलग।**

बुल्लया ग़ैन ग़रूरत साड़ सुट, ते मान खूहे विच पा।††
तन मन दी सूरत गवा दे, घर आप मिलेगा आ।

बुल्लया वारे जाइए ओन्हां तों, जेहड़े गल्लीं देण परचा।
सूई सलाई दान करन, ते अहरण लैण छुपा।

बुल्लया वारे जाइए ओहनां तों, जेहड़े मारन गप-शड़प्प।
कौडी लब्भी देन चा, ते बुगचा घाऊं-घप्प।

बुल्लया परसों काफ़र थी गयों, बुत्त पूजा कीती कल।
अर्सी जा बैठे घर आपणे, ओथे करन न मिलिया गल।

---

* **लभदा**=मिलता।
† **अरबा-अनासर**=पाँच तत्त्व; पाँच तत्त्वों से शरीररूपी महल बना है।
‡ **कुड़ियां**=लड़की, दुलहन; **नींगर**=लड़का, दूल्हा।
§ **संञापे**=पहचानना।
¶ **धड़वाई**=डाकू, लुटेरे।
** **कुसत्तीए**=झूठे, नीच।
†† **ग़रूरत**=अहंकार; अहं को मारने से अपने आप परमात्मा मिल जायेगा।

भट्ठ नमाज़ां ते चिक्कड़ रोज़े, कलमे ते फिर गई सयाही।
बुल्ले शाह शौह अंदरों मिलया, भुल्ली फिरे लोकाई।

बुल्ले नूँ लोकीं मत्तीं देंदे, बुल्लया तू जा बहो विच मसीती।
विच मसीतां की कुझ हुंदा, जे दिलों नमाज़ ना कीती।

बाहरों पाक कीते की हुंदा, जे अंदरों ना गई पलीती।*
बिन मुर्शिद कामल बुल्लया, तेरी ऐवें गई इबादत कीती।

बुल्लया हरिमंदर में आए के, कहो लेखा दियो बता।
पढ़े पंडित पांधे दूर कीए, अहमक लिए बुला।†

वहदत दे दरिया दसेंदे, मेरी वहदत कित वल्ल धाई।
मुर्शिद कामिल पार लंघाया, बाझ तुल्हे सरनाही।‡

बुल्ले जाह चल ओत्थे चल्लिए, जित्थे सारे होवण अन्हें।§
ना कोई साडी कदर पहचाने, ना कोई सानूं मंने।

बुल्लया धरमसाला विच ना रहीं, जित्थे मोमन भोग पवाए।
विच मसीतां धक्के मिलदे, मुल्लां तिओड़ी पाए।

दौलतमंदा ने बूहयां उत्ते, चोबदार बहाए।
पकड़ दरवाज़ा हरि सच्चे दा, जित्थों दुःख दिल दा मिट जाए।

आपणे तन दी ख़बर न काई, साजन दी ख़बर लयावे कौण।
न हूं ख़ाकी न हूं आतिश, न हूं पाणी पौण।¶

---

* **पाक**=सफ़ाई; **पलीती**=गन्दगी।
† **अहमक**=मूर्ख; परमात्मा की दरगाह में कर्म देखे जाते हैं, विद्या नहीं।
‡ **तुल्हे**=बेड़ी; **सरनाही**=मश्क; मुर्शिद ने बिना किसी साधन के पार कर दिया।
§ **जित्थे...अन्हें**=हमें कोई न पहचाने।
¶ आत्मा तत्त्वों से ऊपर है।

कुप्पे दे विच रोड़ खड़कदा, मूरख आखण बोले कौण।*
बुल्ला साईं घट घट रवया, ज्यों आटे विच लौण।

बुल्ले शाह ओह कौण है, उत्तम तेरा यार।
ओसे दे हत्थ क़ुरान है, ओसे गल जुनार।†

बुल्लया जैसी सूरत ऐन दी, तैसी ग़ैन पछान।
इक नुक़ते दा फेर है, भुल्ला फिरे जहान।

बुल्लया खा हराम ते पढ़ शुकराना, कर तौबा तरक सवाबों।‡
छोड़ मसीत ते पकड़ किनारा, तेरी छुटसी जान अज़ाबों।§

बुल्लया जे तूं ग़ाज़ी बनना ए, लक्क बन्ह तलवार।¶
पहलों रंघड़ मार के, पिच्छों काफ़र मार।**

बुल्लया सभ मजाज़ी पौड़िआं, तूं हाल हक़ीक़त वेख।††
जो कोई ओत्थे पहुंचया, चाहे भुल्ल जाए सलाम अलेक।‡‡

बुल्लया काज़ी राज़ी रिश्वते, मुल्लां राज़ी मौत।§§
आशिक़ राज़ी राम ते, न परतीत घट होत।

ठाकुर-द्वारे ठग्ग बसें, भाईद्वार मसीत।
हरि के द्वारे भिक्ख बसें, हमरी एह परतीत।¶¶

---

* शरीररूपी कुप्पे में आत्मारूपी '**रोड़**' सार वस्तु है, परन्तु अज्ञानी को इसका ज्ञान नहीं।

† **जुनार**=यज्ञोपवीत।

‡ **तरक**=छोड़ दे; **सवाबों**=पुण्य।

§ **अज़ाबों**=दुःखों से; न करनेवाले कर्म अर्थात् कर्मकाण्ड त्यागकर प्रेम के रास्ते पर चल।

¶ **ग़ाज़ी**=धर्मयुद्ध करनेवाला।

** **रंघड़**=नफ़्स; **काफ़र**=मन; भाव नफ़्स को मारनेवाला सच्चा ग़ाज़ी है।

†† **मजाज़ी**=देह की; **तूं...वेख**=तू अपने अन्दर जाकर उस सत्य का दीदार कर।

‡‡ **सलाम अलेक**=मुसलमान आपस में मिलते समय आदर से सलाम कहते हैं। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि हक़ीक़त में पहुँचा हुआ इनसान सांसारिक रिवाजों से ऊपर उठ जाता है।

§§ **रिश्वते**=रिश्वत पर।

¶¶ **भिक्ख**=भिखारी; **परतीत**=विश्वास।